युग-युगीन राजस्थान

सपादक

सुखवीरसिंह गहलोत

हिन्दी साहित्य मन्दिर
जगदीशसिंह गहलोत मार्ग, जोधपुर

प्रकाशक —
हिन्दी साहित्य मन्दिर
जगदीशसिंह गहलोत मार्ग, जोधपुर

प्रकाशन वर्ष — 1991

मूल्य — 60.00 रुपये

मुद्रक —
सन-साईन प्रिण्टर्स,
सिवांची गेट के अन्दर, जोधपुर

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

यद्यपि राजस्थान मे इतिहास लेखन की परम्परा अत्यन्त ही समृद्ध है किन्तु प्रारम्भ में इतिहासकारो का दृष्टिकोण आज से सर्वथा भिन्न था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तक राजस्थान के इतिहास को मध्यकालीन शौर्य बलिदान तक सीमित रखा गया। अतः जहां अन्य क्षेत्रो मे इतिहास के पुन लेखन की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है वहां राजस्थान के समग्र इतिहास के लेखन की आवश्यकता का अनुभव किया जाता रहा है। प्रस्तुत पुस्तक मे राजस्थान के लगभग एक लाख वर्ष के इतिहास को समाहित करने का प्रयत्न किया गया।

पूर्णिमा नवीनलाल ने न केवल आज तक के इतिहास लेखन का ही विवेचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया है बल्कि पद्मनाभ जैसे इतिहासकारों का मूल्यांकन किया है जिनके सबध मे अभी तक कुछ भी नहीं लिखा गया। अद्योपान्त प्रकाशित समस्त ग्रन्थों की सूची के समावेश से निःसन्देह प्रस्तुत विवरण अत्यधिक मूल्यवान हो गया।

अब तक प्रागैतिहासिक और आद्यैतिहासिक इतिहास को लिखने के प्रयास नगण्य ही हुए हैं। राजस्थान के सभी अचलों की प्रागैतिहासिक एव आद्य तिहासिक सभ्यताओं का वर्णन प्रस्तुत कर इस क्षेत्र मे राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित एक कमी को पूरा करने का प्रयास किया है।

राजस्थान के समूचे इतिहास को सक्षेप मे प्रस्तुत करने का कठिन कार्य प्रसिद्ध साहित्यविद् एव इतिहासकार जहूरखा मेहर द्वारा किया गया है। मडोर के प्रतिहार, पद्मिनी कथा की ऐतिहासिकता, राव जोधा, 1857 का स्वतन्त्रता सग्राम तथा राजस्थान मे स्वतन्त्रता आदोलन का इतिहास साधारण पाठकों व गहन अध्येताओं के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध होंगे।

डॉ० रामसिंह सोलकी ने गहरी राजनीतिक सूझ से राजनैतिक गतिविधियो व राजस्थान के एकीकरण का वर्णन प्रस्तुत किया है। एकीकरण के विभिन्न चरण राजनीतिक ऊहापोह का प्रमाणिक विवरण, राजस्थान के विभिन्न रजवाडों को स्वीकृत किए गए प्रिवीपर्स आदि के वर्णन से प्रस्तुत विवरण भी अत्यन्त ही महत्वपूर्ण बन गया है।

आशा है समग्र रूप से यह पुस्तक सभी अध्ययेताओं के लिए एक समान रुचिकर सिद्ध होगी।

जगदीशसिंह गहलोत मार्ग,
जोधपुर (राज)
14 जनवरी, 1991

सुखवीरसिंह गहलोत

राजस्थान-इतिहास लेखन का इतिहास

तुम कौन थे, कसे रहे, अरु क्या तुम्हारा ज्ञान था ?
इतिहास बतलाता नही, कैसा तुम्हारा मान था ?

इतिहास शब्द इति+ह+आस से बना है, जिसका अर्थ है, ऐसा ही हुआ। इतिहास मे घटनाओ का क्रमिक वर्णन तथा निश्चयात्मकता होती है। इसमे अतीतकालीन तत्वो की खोज तथा उनके आधार पर लिखे गये विवरणो का लेखा होता है। इतिहास बोध और इतिहास की जानकारी उस देश की सस्कृति का अभिन्न अग होता है लेकिन हमारे देश मे इतिहास रचना की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। हमारे देश मे प्राचीन काल से ही यही धारणा रही है कि "मनुष्य का जीवन क्षण भगुर है और हमे आगामी जन्म और परलोक को सुधारने की ओर ध्यान देना चाहिये। हमे इस जीवन और बीते दिनो मे रुचि लेने मे कोई लाभ नही है।" यो भारतीय प्राचीन साहित्य मे इतिहास आख्यान, पुराण आदि शब्द मिलते है तथा रामायण, महाभारत आदि मे इतिहास के तत्व मिलते है लेकिन उन्हे इतिहास ग्रथ नही माना जा सकता है। आज जिन अर्थो मे इतिहास को लिया जाता है उन अर्थो मे भारत मे इतिहास बहुत बाद मे लिखा जाने लगा। मध्यकाल मे जो भी इतिहास लिखे गये वे इतिहास कम और प्रशस्तियाँ ज्यादा थी। उनमे राजा, दरबार, युद्धो, षडयत्रो आदि का ज्यादा वर्णन मिलता है। सामान्य आदमियो के जीवन, उस समय की सामाजिक व आर्थिक दशा का नाममात्र का जिक्र हुआ है।

अठारहवी शताब्दी के अतिम वर्षो मे जब यहा अग्रेजो का प्रभुत्व जमने लगा तथा अधिक सख्या मे अग्रेज विद्वान यहा आने लगे तब उन्होने यहा के इतिहास को नये दृष्टिकोण से लिखना आरम्भ किया। इसमे कोई सन्देह नही कि इसमे उनका उद्देश्य स्वय को उच्च आदर्शवान बतलाना, पूववर्ती शासको को हीन बतलाना, हिन्दू-मुसलमानो के बीच भेदभाव लाना, आदि था। फिर भी उन विदेशी इतिहासकारो ने भारतीय इतिहास तथा पुरातत्व की खोज मे एक नये युग का सूत्रपात किया। सन् 1784 मे कलकत्ता मे एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल की स्थापना, एशिया के इतिहास, पुरातत्व, प्राचीन कला व साहित्य की खोज हेतु की गई। तब से ही राजस्थान के इतिहास, पुरातत्व आदि पर भी विस्तृत खोज आरम्भ हो गई।

कर्नल जेम्स टॉड ने मेवाड मे 1818 मे पोलिटिकल एजेण्ट के रूप मे नियुक्ति पाकर यहा के इतिहास के विषय मे खोज आरम्भ कर दी थी। बाद मे हाडौती, मारवाड, सिरोही व जैसलमेर का भी पोलिटिकल एजेण्ट के रूप मे काम 1822

तक वह देखते रहे । इस बीच उन्होने राजस्थान के इतिहास के विषय मे काफी सामग्री इकट्ठी कर ली और इसके फलस्वरूप 1829 मे उन्होने राजस्थान के इतिहास के रूप मे 'अनाल्स एण्ड ऐण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' का पहला भाग 1829 मे व दूसरा भाग 1832 मे प्रकाशित किया । उन्होने उदयपुर से बम्बई जाते समय रास्ते के स्थानो का वर्णन डायरी के रूप मे 'ट्रावल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' लिखा जिसका प्रकाशन उनके स्वर्गवास के बाद 1839 मे हुआ । इसमे उनके द्वारा देखे स्थानो व स्मारको का सजीव चित्रण है । 'अनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान,' म उनके द्वारा सग्रहित अभिलेखो, सिक्को, वहियो, ख्यातो आदि के आधार पर लिख। मेवाड, मारवाड, बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, जयपुर व कोटा का इतिहास है । इस इतिहास के प्रकाशन पर राजपूतो के शौय, बलिदान और त्याग की ख्याति अन्य प्रान्तो व विदेशो मे फैल गई । इस ग्रथ के प्रकाशन से राजस्थान के इतिहास मे और अधिकशोध होने लगी । इस ग्रथ के आधार पर कई देशी व विदेशी इतिहास-कारो ने अपने इतिहास ग्रथ लिखे और लिखते जा रहे है ।

उत्खनन कार्य

इतिहास के विनिर्माण के लिये आवश्यक है कि पृथ्वी की विभिन्न परतो या तहो मे प्राप्त ध्वसावशेषो, ककालो, जीवाश्मो, उपकरणो, स्मारको, पुरालेखो, सिक्को आदि का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन और अनुसधान करना । बीसवी शताब्दी के तीसरे दशक मे (1921-22) सिन्धु सभ्यता के मोहनजोदडो, हडप्पा आदि प्राचीन स्थलो को खोजा जा चुका था और तब भारत के इतिहास की ई पूव 2000 तक की जानकारी हो गई थी । अब यह अनुमान किया जाने लगा कि सिन्धु नदी के पूववर्ती क्षेत्र— राजस्थान मे भी ऐसी ही सभ्यता पनपी होगी और ऐसी सभ्यता के स्थलो की खोज होनी चाहिये ।

सन् 1937 मे के एन दीक्षित (भारतीय पुरातत्व विभाग के महानिदेशक) ने जगदीशसिंह गहलोत की पुस्तक राजपूताने का इतिहास की प्रस्तावना मे लिखा था— "भारत के इतिहास मे राजपूताने का एक महत्पूर्ण स्थान रहा है । मेरा यह विश्वास है कि भारत के इस परम चिताकर्षक भू-भाग मे प्रागइतिहास काल की प्रचुर सामग्री विद्यमान है, जिसकी ओर इतिहास रसिको का अभी तक ध्यान नही गया है । मुझे अपना यह विचार पूर्णरूप से युक्तिसगत प्रतीत होता है कि राजपूताने के अनेक भागो मे विशेषत जोधपुर, बीकानेर तथा जैसलमेर की मरुभूमि मे, हडप्पा एव मोहनजोदडो के समकालीन प्रागैतिहासिक प्राचीन मानव सभ्यता तथा प्राचीन नगरो के अवशेष खोजने से अवश्य मिल सकते हैं ।" दीक्षित ने इसी कारण जयपुर के शक्तिधर शर्मा तथा जोधपुर के जगदीशसिंह गहलोत को, जब अहीछत्रा (जिला बरेली, उत्तर प्रदेश) मे खुदाई बडे पैमाने पर करवाई, तब उनको भी प्रशिक्षण दिया ताकि वे भी अपने राज्यो मे जाकर खुदवाई करवा कर वहा के प्राचीन वैभव को, प्रकाश मे ला सके । जगदीशसिंह गहलोत की सेवाओ का लाभ, जोधपुर रियासत उठा नही सकी लेकिन राजस्थान के निर्माण के बाद 1950 मे

उनकी सेवाओ का उपयोग, जोधपुर-बीकानेर मण्डल के सग्रहालय व पुरातत्व विभाग के अधीक्षक के पद पर नियुक्त कर लिया गया।

डा वीलर ने 1944-48 तक महानिदेशक पद पर काम किया। तब उन्होने खुदाई के काम के नये तरीके अपनाये। उन्होने तब कई विश्वविद्यालयो के छात्रो को उत्खनन्त कार्य मे प्रशिक्षण दिया। तब ही जोधपुर के महावीरसिंह गहलोत ने भी तक्षशीला (अब पाकिस्तान मे) प्रशिक्षण प्राप्त किया। महावीरसिंह गहलोत प्रशिक्षित होते हुए भी, तत्कालीन सामन्ती शासन के कारण, पुरातत्व विभाग मे कोई पद नही पा सके लेकिन उनके पुरातत्व ज्ञान का लाभ सभी जिज्ञासुओ को आज तक बराबर मिलता रहा है। रत्नचन्द्र अग्रवाल ने भी तब ही तक्षशीला मे प्रशिक्षण प्राप्त किया था। बाद मे वह राजस्थान के पुरातत्व विभाग मे नियुक्त होकर निदेशक पद से काम कर सेवा निवृत हुए। उन्होने राजस्थान के कई क्षेत्रो— आहाड जोधपुरा, गणेश्वर, नोह आदि मे उत्खनन काय करवाया जिससे राजस्थान के प्रागतिहासिक काल पर काफी प्रकाश पडा। राजस्थान के इतिहास तथा सस्कृति पर उनके विद्वतापूण लेख भारत की सभी महत्वपूण पत्रिकाओं मे बराबर प्रकाशित होते रहे है। उनकी पुस्तक 'आर्कोलॉजीकल रिमेंस इन वेस्टर्न इण्डिया' में इनका अच्छा सग्रह है।

सन् 1947 मे भारत का विभाजन हो जाने पर लगभग सभी आद्य ऐतिहासिक स्थल पाकिस्तान मे चले गये और पाकिस्तान अपनी सभ्यता 5000 वष पुरानी बतलाने लगा। भारत मे ज्यादातर पुरातात्विक स्थल मध्य काल के ही रहे गये। अत भारत मे आद्य-ऐतिहासिक स्थलो की खोज तेजी से की जाने लगी। यो प्रागैतिहास मे अध्ययन, भारत मे उन्नीसवी सदी के अतिम वर्षो मे आरम्भ हो गया था। सन् 1867 मे बून्दी, टोक व जयपुर रियासतो मे कई फरशे व बिदारणिया जियोलोजिकल सर्वे विभाग के हाकेट को मिली थी। बाद मे कारलेइल को पाषाण सगोरा तथा स्फटिक के फलक दौसा (जयपुर राज्य) व देवली (टोक राज्य) मे मिले। दयाराम साहनी को बैराट की खुदाई मे 1937-38 मे दो चर्ट सरक तथा चट के कई कोड मिले जो सिन्धु घाटी के ताम्रपाषाणकालीन स्थलो के समान थे।

1915-16 मे लुगी पीओ तैस्सीतोरी (1888-1919) ने बीकानेर राज्य के गगानगर क्षेत्र मे कई प्राक्इतिहास काल के स्थानो की खोज की थी। तैस्सीतोरी की खोजो का अनुसरण कर 1940 मे सर ऑरेल स्टेइन ने गगानगर-भावलपुर क्षेत्र मे प्रागैतिहासिक अवशेषो की खोज सरस्वती नदी के काठे मे की थी और अपनी विस्तृत रपट 'एन आर्कोलोजिकल टूर अलाग द घग्घर हाकडा रिवर' तैयार की। इसके बाद हना रीड और अमलानन्द घोष ने कई स्थलो पर उत्खनन कार्य किये।

इन यत्रतत्र मिली सामग्री ने हसमुख धी साकलिया, मुन्नाराव, सुन्दरराजन, वी एन मिश्रा, वाकनकर, सत्यप्रकाश श्रीवास्तव, रत्नचन्द्र आदि को उत्खनन से ऐसे ही कई प्रागैतिहासिक स्थलो को खोजने को प्रेरित किया। इससे कई

प्रागैतिहासिक, आद्य ऐतिहासिक, ताम्रपाषाण व ऐतिहासिक काल के स्थान नोह, गिलुण्ड, भीनमाल, आहाड, नोहर, बागोर, तिलवाडा, गणेश्वर, जोधपुरा आदि प्रकाश मे आये। बाद मे काँटली और साहिबी नदी की उपत्यकाओ का सर्वेक्षण कर वहा 30 पुरातात्विक स्थलो की जानकारी प्राप्त कर पाषाण युग से लेकर ऐतिहासिक युग तक की सास्कृतिक गतिविधियो के सम्बन्ध मे जानकारी मिली। इससे प्रागैतिहासिक व आद्यऐतिहासिक राजस्थान का इतिहास लिखा जा सका तथा यह स्पष्ट हो गया कि राजस्थान की प्रागैतिहासिक काल मे काफी महत्वपूण भूमिका रही। दक्षिणपूर्वी राजस्थान मे मानव बस्तिया एक लाख वष पूर्व बस गई थी। राजस्थान के उत्तर पश्चिम मे कालीबगा (गगा नगर जिला) मे 2500 ई पूर्व मे जो बस्तिया थी वे सम्भवत वदिक आर्यों या ईरान मे आये आर्यों की थी। विभिन्न स्थलो का विवरण हनारीड की रगमहल—स्वीडिश आर्कियोलोजिकल एक्सपिडीशन टू इन्डिया, एच डी साकलिया की एक्सकेवेन्शन एट आहाड, व 'आर्कोलोजी आफ राजस्थान' मे पढे जा सकते है। दक्षिण पूव मे आहाड व गिलुण्ड मे भी बनास नदी के किनारे पर 2000 ई पूव मे बस्तिया बस गई थी। वे भी सम्भवत आर्यो की थी। ये लोग तत्कालीन भीलो से ज्यादा विकसित थे। इस सम्बन्ध मे वी एन मिश्रा का 'बुलेटिन ऑफ द डक्कन कॉलेज रिसर्च इन्सटीट्यूट' मे 'पेलियोलिथिक कलचर ऑफ वैस्टन राजपूताना,' अदरिस बनर्जी का 'आर्कोलोजिकल हिस्ट्री ऑफ साउथ इस्टर्न राजस्थान' तथा ह धी साकलिया की 'दी आर्कोलोजी ऑफ राजस्थान' पुस्तके महत्वपूण है।

अभिलेख

धातु पत्थर, हाथी दाँत, बतन, मोहर आदि पर उद्भूत या उभार कर बनाए गए लेख अभिलेख कहलाते हैं। केवल पत्थर पर बनाए गए लेख शिलालेख कहलाते हैं। ताबे की चद्दर का बना हुआ खण्ड या टुकडा जिस पर राजकीय अभिलेख उत्कीण हो वह ताम्रपत्र लेख कहलाता है। किसी स्तम्भ पर उत्कीर्ण अभिलेख स्तम्भ लेख कहलाता है। कई राजाओ की प्रशस्तिया अकित मिलती है। प्रशस्तियो मे राजाओ की उपलब्धियो का प्रशसायुक्त वणन होता है। कई कीर्ति स्तम्भ, विजय स्तम्भ, गोवधन स्तम्भ, सती स्तम्भ, मान प्रशस्ति, दान प्रशस्ति, मूर्ति लेख, मक्बरो और मस्जिदो पर उत्कीण आलेख भी मिलते हे। इन अभिलेखो से तत्कालीन ऐतिहासिक अध्ययन मे महत्वपूण सहायता मिलती है। राजस्थान मे ऐसे अभिलेख हजारो मे है। कुछ महत्वपूर्ण अभिलेख निम्नलिखित है—

1 बिजोलिया अभिलेख (वि स 1226) 93 श्लोको का है। इसमे चौहान शासको का वशानुक्रम तथा तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक जीवन का उल्लेख है।

2. लूणवसही प्रशस्ति (वि स 1287) मे आबू के परमार शासको और उनके मत्री वस्तुपाल और उसके अनुज तेजपाल के विषय मे जानकारी दी गई है। ऐसी ही जानकारी नेमीनाथ मन्दिर प्रशस्ति मे मिलती है।

3 सुन्धा पर्वत (जालोर जिला) प्रशस्ति वि स 1319 की है। इसमें

जालोर के शासक चाचिगदेव सोनगरा चौहान की उपलब्धियो पर प्रकाश डाला गया है।

4 रसिया की छत्री प्रशस्ति (वि स 1331) मे मेवाड के बप्पा रावल से नरवर्मा तक के गुहिल वशीय शासको का वणन है तथा उस समय की राजनैतिक, सामाजिक, व धार्मिक स्थिति के अध्ययन हेतु उपयोगी है।

5 अचलेश्वर मन्दिर (आबू) प्रशस्ति (वि स 1377) मे चन्द्रावती, अर्बुद व शाकम्भरी के शासको पर प्रकाश डाला गया है।

6 जैसलमेर के पार्श्वनाथ मन्दिर प्रशस्ति (वि स 1473) मे जैसलमेर के शासक लक्ष्मणराज के काल की जानकारी है। समधिश्वर मन्दिर (चित्तौड दुग) प्रशस्ति (वि स 1485) मे गुहिल वशीय शासको की उपलब्धियो का विवरण मिलता है। इसमे राजनीतिक व सामाजिक पहलुओ पर प्रकाश पडता है। रणकपुर चौमुखा मन्दिर प्रशस्ति (वि स 1496) मे मेवाड के शासको का महाराणा कुम्भा तक का वणन है। तत्कालीन धार्मिक व सामाजिक स्थिति की भी अच्छी जानकारी मिलती है।

कीर्ति स्तम्भ चित्तौड प्रशस्तियाँ विभिन्न शिलाओ पर उत्कीण की गई थी। इनमे मेवाड के शासको की वशावली महाराणा कुम्भा तक देकर उनकी उपलब्धियो का वणन किया गया है। तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक व सास्कृतिक पहलुओ पर भी प्रकाश डाला गया है। बीकानेर दुर्ग प्रशस्ति (वि स 1650) मे बीकानेर के सस्थापक नरेश राव बीका से महाराजा रायसिह तक की उपलब्धियो का वणन किया गया है। बीकानेर राज्य के इतिहास के अध्ययन हेतु यह प्रशस्ति बडी महत्वपूर्ण है। राजप्रशस्ति (वि स 1718) राज समुद्र तालाब पर 25 बडी बडी काले पत्थर की शिलाओ पर उत्कीण है। यह भारत का सबसे बडा शिलालेख है। इसमे कुल 1106 श्लोक है। इसमे महाराणा राजसिह द्वारा किये गये राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यो का उल्लेख है। मेवाड के इतिहास के अध्ययन हेतु यह प्रशस्ति बडी उपयोगी है। यह प्रशस्ति पुस्तक रूप मे साहित्य सस्थान उदयपुर द्वारा प्रकाशित की गई है। यो इसकी प्रतिलिपि वीरविनोद के अलावा एपीग्राफिया इण्डिका मे प्रकाशित की गई है।

सन् 1834 मे डॉ राकीन तथा सार्जेण्ट दीन ने सीकर मे हषनाथ मन्दिर शिलालेख (वि स 1030) खोज निकाला। यह चौहानो के इतिहास को जानने के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कनिघम, कारलेयल, केप्टन बट, कर्नल टॉड आदि ने कई और शिलालेख खोज निकाले। इनके मूल पाठ व इनके अध्ययन हेतु 1872 मे बर्गेस द्वारा इण्डियन ऐण्टीक्वेरी का प्रकाशन आरम्भ किया गया। सन् 1877 मे हुल्स्च द्वारा कॉर्पस इस्क्रीपनम इडीकेरम सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ जिसमे अशोक के अभिलेखो मे बैराट का अभिलेख भी था। कॉपस के तीसरे भाग मे बयाना का वि स 428 का विजयगढ यूप स्तम्भ शिलालेख तथा गगधार का वि स 480 का लेख भी प्रकाशित किया गया। इण्डियन ऐण्टीक्वेरी मे राजस्थान

ये कई महत्त्वपूर्ण शिलालेख, वि स 746 का शीतलेश्वर मन्दिर शिलालेख, 795 का कणसुग मन्दिर शिलालेख, वि स 481 का नगरी शिलालेख आदि प्रकाशित हुए। सन् 1888 मे 'इपिग्राफिया इण्डीका' का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया। इसमे अभिलेखो पर शोधपूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे। राजस्थान के कई अभिलेखो को भी इसमे महत्त्व दिया गया। राजस्थान के प्राचीन इतिहास पर इस कारण नया प्रकाश पडा। बाद के वर्षों मे कई स्थानो पर पुरातत्व सर्वेक्षण से विभिन्न राजवशो के शिलालेख मिले। ऐसे अभिलेखो की सूचि देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर द्वारा प्रकाशित 'द लिस्ट ऑफ इंस्क्रिपशस फ्राम नोदन इण्डिया' मे मिलती है।

उपरोक्त अभिलेखो के अलावा भी कई अभिलेख हैं जो एपिग्राफिया इण्डिका, इण्डियन एण्टीक्वेयरी, वरदा, शोध पत्रिका, जनरल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, जनरल ऑफ जगदीशसिंह गहलोत रिसर्च इस्टीट्यूट, आदि मे प्रकाशित हो चुके हैं। यो कई अभिलेख डॉ भगवानलाल इन्द्रजी के 'गुजरात या प्राचीन इतिहास,' भावनगर के रावल तख्तसिंह के 'भावनगर प्राचीन शोध सग्रह,' विजयधर्म सूरी का 'प्राचीन लेख सग्रह' जॉन फेथफुल फ्लीटके 'गुप्त इन्सक्रिप्शन्स, सेसिल बेडल के 'जर्नी ऑफ लिटरेरी एण्ड आर्कियोलोजिकल रिसर्च इन नेपाल एण्ड नादर्न इण्डिया' मुनि जिन विजय के 'प्राचीन जैन लेख,' पूरणचन्द नाहर के 'जैन लेख सग्रह' (तीन जिल्दें), गुमानसिंह गहलोत, सोहन कृष्ण पुरोहित व नील कमल शर्मा के 'राजस्थान के प्रमुख अभिलेख', मे दिये गये हैं। राजस्थान के प्राचीन अभिलेखों का सास्कृतिक अध्ययन श्यामप्रसाद व्यास ने अपनी इसी नाम की पुस्तक मे किया है। फारसी भाषा में उपादानर अभिलेख एपिग्राफिया इण्डो मोस्लेमिका, रिसर्च, एपिग्राफिया इण्डिका अरेबिक एण्ड पर्शियन, एन्युल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपिग्राफी मे प्रकाशित हुए हैं।

पुरावस्तु

कम से कम 100 वर्ष पूर्व के प्राचीन कलात्मक व अलकृत भवन, गुफायें, वस्तुएँ, पुरावस्तु कहलाती है। प्राचीन स्मारक, या उनके अवशेष, मूर्तिया, भग्नावशेष, पुराने खण्डहर, ऐतिहासिक महत्त्व के अवशेष आदि इतिहास जानने हेतु बड़ा सहायक सिद्ध होते हैं। राजस्थान के कलात्मक पुरावस्तुओ ने इतिहासकारों को सदैव आकर्षित किया है। यहा के कुछ स्मारको के विषय में सबसे पहले जानकारी हमे जेम्स फर्गुसन द्वारा सन् 1827 व 1847 के बीच दौरा करने के बाद लिखी रिपोर्टों से प्राप्त होती है। सन् 1861 मे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की स्थापना कनिंघम की अध्यक्षता मे की गई। तब कनिंघम ने राजस्थान का दौरा कर कई महत्त्वपूर्ण स्थानो का सर्वेक्षण किया। तब ही 1864 म वराट जैसे स्थानो की भी खोज हुई। कनिंघम के निर्देशन मे कार्लाइल ने 1871-73 म [illegible] के कई ऐतिहासिक तथा कलात्मक स्मारको तथा हैरिस ने 1892 84 मे राजस्थान के प्राचीन स्मारको, अभिलेखो, मूर्तियो, सिक्को आदि के विषय मे [illegible] यहा के प्राचीन स्मारको, अभिलेखो, मूर्तियो, सिक्को आदि का परिचय देते हुए प्रथा [illegible] मे [illegible] किया। [illegible] परिष्कार और अध्ययन का अनुमान किया जा सकता है।

भारत सरकार ने 1881 मे मेजर कॉन को प्राचीन स्मारको का सरक्षक नियुक्त किया। उसने प्राचीन स्मारको के सरक्षण के लिये काफी महत्वपूर्ण कार्य किया। उसने 22 भागो मे 'प्लिमिनेरी रिपोर्टस ग्रॉन मोनुमेण्टस' प्रकाशित की। सन् 1881 मे उसी के अन्तगत राजपूताना पर भी रिपोट प्रकाशित की जिसमे ग्राबू, ग्रजमेर, जयपुर, ग्रलवर ग्रादि के स्मारको का उल्लेख है। कई महत्वपूण इतिह सिक भवनो को सरक्षित घोषित किया गया तथा उनकी मरम्मत कराई गई। सन् 1904 मे पुरातत्व सर्वेक्षण के ग्रधिकारी के रूप मे देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर की नियुक्ति की गई। उन्होने राजस्थान के पुरातात्विक ग्रवशेषो व स्मारको का विस्तार से सर्वेक्षण किया। उनके द्वारा तैयार की गई रपटें 'प्रोग्रेस रिपोट ग्रॉफ द ग्रार्कोलोजिकल सर्वे, वेस्टन सकल, पूना' मे राजस्थान के इतिहास, सस्कृति, कला व स्मारको के ग्रध्ययन के लिये ग्रत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होने ही 1915-16 मे नगरी(प्राचीन मध्यमिका)की खुदाई कराई थी जहा से ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से सातवी शताब्दी तक के कई सिक्के, मूर्तिया, ग्रभिलेख ग्रादि मिले। जॉन मार्शल स्वय ने 1933-34 मे मण्डोर की खुदाई करवाई तब गुप्त तथा प्रतिहार काल के कई ग्रवशेप मिले। यहा ग्ररब ग्राक्रमणकारियो के 30 सिक्के भी मिले। मार्शल ने कई स्मारको के सरक्षणो हेतु भी सुझाव दिये। ऐसे स्मारक ग्रामेर के महल, कणसुग्रा का शिव मन्दिर, रामगढ का माताजी का मन्दिर, शाहबाद की मस्जिद ग्रादि है। दयाराम साहनी ने महा निदेशक पुरातत्व विभाग पद से 1935 मे सेवानिवृत होने के बाद, जयपुर राज्य के बैराट व साभर मे खुदाई का काय कराया। तब वहा कई प्राचीन मूर्तिया व ग्रवशेप मिले।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, राजस्थान मे प्राचीन स्मारक दुर्ग, राजमहल, हवेलिया, मन्दिर, छतरिया ग्रादि काफी सख्या मे है। यहाँ के कलात्मक मन्दिर तथा उनमे स्थित मूर्तियो के विपय मे फगुशन, कनिगम, कारलयल, गरिक, वर्गेस, भण्डारकर ग्रादि ने काफी लिखा। जेम्स फर्गुसन की पुस्तक 'द हिस्ट्री ग्रॉफ इण्डियन एण्ड ईस्टर्न ग्रार्किटेक्चर' (1870) कनिघम तथा उसके दो सहायको — कारलेयल तथा गैरिक ने राजस्थान के स्मारकों के विषय मे ग्रपनी रिपोर्ट (1872-1874) मे काफी प्रकाश डाला लेकिन उन्होंने ज्यादा महत्व उन स्मारको की लम्बाई चौडाई ग्रादि देने मे ही दिया। उनकी कला के विपय मे ज्यादा नही लिखा। इस कमी को देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने पूरा किया। उन्होने स्मारको की कला के साथ मूर्तिकला पर भी काफी प्रकाश डाला। उनमे लगे शिलालेखो का भी उल्लेख करके उन स्मारको से सम्बधित कथा कहानियो का भी वर्णन किया। इस से उनके निर्माताग्रो के इतिहास का भी पता चलता है। उनकी महत्वपूर्ण रपटें-'प्रोग्रेस रिपोट ग्रॉफ ग्रार्कोलोजिकल सर्वे, वेस्टर्न सकल' कई मन्दिरो को प्रकाश मे लाई है। इन मन्दिरो मे स्थित मूर्तिया, शिला पट्टो, कलात्मक स्तम्भो व वल्लरियो का भी प्रचुर मात्रा मे वर्णन किया गया है। बाद के वर्षो मे इनकी कला के विषय मे यू. पी शाह, एम. ए ढाकी, कृष्णदत्त,

रत्न चन्द्र अग्रवाल, के वी सुन्दरराजन आदि ने काफी बारिकी से अध्ययन कर लेख लिखे। इनके लेखन से ससार को पता चल गया कि राजस्थान मे स्थापत्य कला का अपूर्व भण्डार है। राजस्थान के स्मारको का विवरण जगदीशसिंह गहलोत कृत 'राजपूताना का इतिहास' मे भी मिलता है। उनकी 'स्वतत्रता-पूर्व राजस्थान' मे भी स्थापत्य कला केन्द्रो का विवरण देखा जा सकता है।

मूर्तियां — पुरावस्तुओ मे मूर्तियो का बडा महत्व है। ये मूर्तियां विभिन्न रंग के पत्थरो के अलावा तांबा, पीतल या अन्य धातु आदि से बनी मिलती हैं। कालीबंगा, आहाड आदि प्रागैतिहासिक युग की मूर्तियां पकी हुई मिट्टी की बनाई गई थी। नोह, लालसोट, आभानेरी, कामवन, कोटा आदि से गुप्त काल की मूर्तियां उपलब्ध हुई है। चन्द्रावती (झालरापाटन), नागफणी (डूंगरपुर जिला) मे भी गुप्त काल की कई मूर्तियां मिली है। गुप्तोत्तर काल के महामारु शैली के कई मन्दिर मेवाड के अलावा, जालोर मण्डोर, अमझरा (डूंगरपुर जिला) ओसिया आदि मे बना इन मदिरो की मूर्तियां शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट है। उदयपुर मे जगत मन्दिर मे उमामहेश्वर, वीणाधर शिव, कल्याणपुर की गणेशमूर्ति, पल्लू की सरस्वती प्रतिमा शिल्प के अच्छे उदाहरण है। डीडवाना से प्राप्त काले पत्थर से बनी विष्णु की मूर्ति आभानेरी की विष्णु मूर्तियां, लोदरवा के जैन मन्दिर की गणेश मूर्ति, ओसिया की सचियामाता की प्रतिमा धार्मिक सहिष्णुता को प्रदर्शित करती है। चित्तौड के कीर्ति स्तम्भ की मूर्तियां तो स्पष्ट बतलाती है कि पन्द्रहवी शताब्दी मे मूर्तिकला का विकास अपने शिखर पर था। उदयपुर के जगदीश मन्दिर की मूर्तियां भी बडी कलात्मक है। धातु की प्रतिमायें आबू, वसन्तगढ, पिण्डवाडा आदि मे देखी जा सकती है।

स्मारको व प्राचीन स्थलो की राष्ट्रीय महत्ता का विचार कर इन का आरक्षित स्मारक, 'एण्टिक्वीटीज एण्ड हिस्टोरिकल मोनुमेण्टस एण्ड आर्कोलोजिकल साईटस एण्ड रिमेन्स (डिक्लेरेशन ऑफ नेशनल इम्पोर्टेन्स) एक्ट 1951' के अन्तगत घोषित किया गया। भारत मे ऐसे स्मारक ज्यादातर राजस्थान के ही थे। इन स्मारको पर 'एशियेण्ट मोनुमेण्टस एण्ड आर्कोलोजिकल साइटस एण्ड रिमेन्स एक्ट 1959' लागू किया। राजस्थान मे ऐसे स्मारक थे – चित्तौडगढ, कुम्भलगढ, जैसलमेर व रणथम्भोर के दुर्ग, आबानेरी, हर्षनाथ, बिजोलिया, नागदा नगरी आदि के मन्दिर, जो अब केन्द्रीय सरकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण मे आ गये। प्रान्तीय महत्व के स्मारको की सुरक्षा के लिये राजस्थान सरकार ने 'राजस्थान मोनुमेण्टस एण्ड आर्कोलोजिकल साइटस एण्ड एण्टीक्वीटीज एक्ट 1961,' सन् 1964 से लागू किया।

यो कुछ रियासतो मे भी स्वतन्त्रतापूर्व काल मे ऐतिहासिक स्मारको एव पुरातत्व स्थलो के विषय मे कानून बन चुके थे। जोधपुर मे 'मारवाड एशियण्ट मोनुमेण्टस प्रिजर्वेशन आर्डिनेन्स' 1928 मे बन गया था तथा उसके अन्तर्गत 20 स्मारक ऐतिहासिक व कलात्मक महत्व के घोषित हो चुके थे। जयपुर राज्य में

जयपुर ऐंशियेण्ट मानुमेण्टस प्रिजवेशन एक्ट' 1941 मे वन गया था जिसके अन्तगत स्मारकों को सरकार ने सरक्षण तो दिया ही लेकिन वहा मे किसी कलात्मक वस्तु या पुरातत्व महत्व की वस्तु हटाना भी अपराध माना गया था। इस कारण यहा के स्मारक व उनमे लगी मूर्तिया व शिलापट्ट इतिहास लिखने मे काफी सहायक सिद्ध हुए।

चित्रकला—यहा के लोगो की प्राचीन काल से ही चित्रकला के प्रति रुचि रही है। मुकन्दरा की पहाड़ियो तथा अराव्ली पर्वत शृखला मे वी एस वाकणकर, व जगन नारायण श्रीवास्तव ने कई प्राचीन शैल चित्रो का पता लगाया है तथा अपने लेखो मे ब्यौरा दिया है। इन चित्रो मे मानव एव जानवरो की आकृतिया काफी है। ये चित्र शिकार, पूजा पाठ, टोटका आदि से सम्बन्धित है। ज्यादातर चित्र लाल, पीले और हरे रग से चित्रित किये गये है। कालीबगा, आहाड आदि की खुदाई से प्राप्त मिट्टी के वर्तनो पर भी काली व सफेद रेखाओ, फूल पत्ती, एव भोज पत्रो पर चित्रकारी बारहवी शताब्दी के सचित्र ग्रथो पर मिलती है। ऐसे सचित्र ग्रथ जैसलमेर के जन भण्डार से प्राप्त हुवे है। वहा कई चित्र पट्टिकाऐ है। इन पर जैन साधुओ, पशु पक्षी, पेड पौधे आदि चित्रित है। अजमेर, पाली, आबू, आहाड, आदि ऐसे चित्रकारो के मुख्य केन्द्र थे। ग्यारहवी पन्द्रहवीं शताब्दी तक के सचित्र ग्रथो मे निशीथचूर्णि, त्रिपष्टिशालाकापुरुष चरित्र, नेमिनाथ चरित्र, कथा महित्यगर कालक कथा, सुपासना चरियम्, रमिकाष्टक, गीत गोविन्द आदि हैं।

विभिन्न राजदरबारो मे आश्रित चित्रकारो ने अपने अपने ढग से चित्र बनाने आरम्भ किये। अत विभिन्न चित्र शलियो मेवाड शैली, जयपुर शैली, मारवाड शली, बून्दी शली, किशनगढ शैली, कोटा शैली, नाथद्वारा शली आदि का विकास हुआ। मारवाड शली का उत्तराध्ययन सूत्र, पचतत्र, शुकनासिक चरित्र, जयपुर शली के बारामासा, रागमाला, भागवत आदि के चित्र इनके उदाहरण है। नाथद्वारा की कलम में बने पुष्टि माग से प्रभावित श्रीनाथजी के चित्र तथा प्रकृति के चित्र बड़े सुन्दर हैं। इन चित्रो मे राम, कृष्ण आदि की लीलाओ के अलावा समकालीन समाज के जीवन व दशन पर काफी प्रकाश पड़ता है। राजस्थान के चित्रो का व्यवस्थित अध्ययन डा आनन्द कुमार स्वामी ने आरम्भ किया था। उनके द्वारा सन् 19॰2 मे राजपूत चित्रो पर लिखे लेख ने पश्चिम देशो मे हलचल मचा दी और तब उनकी पुस्तक 'राजपूत पेंटिग्स' (दो भाग) 1916 मे तथा 'केटलॉग ऑफ इण्डियन कलेक्शन इन द म्युजियम ऑफ फाईन आर्टस् बोस्टन (6 भाग)" 1926 मे प्रकाशित हुई। तब उनकी राजपूत चित्रो पर विद्वतापूण शोध को ससार भर मे सराहा गया। उन्होने अपनी शोध मे यह स्पष्ट कर दिया कि राजपूत शैली मुगल शैली से पूणतया भिन्न है तथा वह स्थानीय परम्परा के अनुरूप है। ओ सी गागुली ने उस शोध को आगे बढाया और उन्होने इस विषय मे 'मास्टर पीसेज ऑफ राजपूत पेंटिंग' और 'रागस एण्ड

रागनीज' पुस्तके लिखी। हरमन गोट्स ने अपनी लिखित पुस्तक, 'आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर' मे यह प्रतिपादित किया कि राजस्थानी चित्र शैली की और भी उपशैलिया—मारवाडी शैली, नागौर शैली, बीकानेर शैली आदि है। इस विषय मे उन्होने कई लेख विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पत्र-पत्रिकाओ मे लिखे। उनके लेख गुजराती शैली के चित्रो की राजस्थानी चित्र शैली की देन पर ज्यादा थे। डॉ मोतीचन्द्र ने पश्चिमी भारत के जैन लघु चित्रो के विषय मे काफी लिखा। जैसलमेर के जैन ग्रन्थ भण्डारो मे चित्रित ग्रन्थो के विषय मे एस एम नवाब ने 'द ओल्डेस्ट राजस्थानी पेण्टिंग्स फ्रॉम जैन भण्डार्स' लिखकर राजस्थान मे विभिन्न सग्रहो के विषय मे लोगो की रुचि उत्पन्न कर दी। राजस्थानी चित्र शैलियो के विषय मे राय कृष्णदास की 'भारतीय चित्र कला' तथा राम गोपाल विजयवर्गीय की 'राजस्थान चित्रकला' महत्वपूर्ण पुस्तके हैं। बाद के वर्षो मे प्रमोद चन्द्र, यू पी शाह, वासुदेव शरण अग्रवाल, कार्ल खण्डेलवाल, सत्यप्रकाश श्रीवास्तव आदि ने राजस्थानी चित्र शैलियो पर कई लेख लिखे। इसके कारण देश विदेश मे कई विद्वान राजस्थानी चित्र शैलियो की ओर आकर्षित हुए। कई पुस्तके किशनगढ पेन्टिंग्स, मेवाड पेंटिंग्स, बून्दी पेन्टिंग्स आदि पर भी लिखी गई। इस प्रकार से इन चित्रो के सम्बन्ध मे लिखी पुस्तको से राजस्थान के सास्कृतिक इतिहास को लिखने मे काफी सहायता मिली है।

भित्तिचित्र—अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे काफी भित्तिचित्र बने। या इसके पहले भी मन्दिरो और राजप्रसादो मे भित्तिचित्र बनते रहते थे। ऐसे चित्र चित्तौडगढ के प्राचीन महलो, उदयपुर के महलो, आमेर के महलो, कोटा के झालमसिह की हवेली, नाडोल के जैन मन्दिर, सूरजमल (भरतपुर) की छतरी आदि मे बने है। ये चित्र आलागीला पद्धति से बनाये गये थे। जैसलमेर, बीकानेर शेखावाटी आदि की हवेलियाँ मे भी कई भित्तिचित्र है। भित्तिचित्रो पर अचना कुलश्रेष्ठ की 'राजस्थान के भित्तिचित्र' उल्लेखनीय पुस्तक है।

सिक्के—ढला हुआ और निर्दिष्ट मूल्य का धातु का टुकडा, जिसका प्रयोग वस्तु विनिमय के लिए किया जाता है सिक्का कहलाता है। सिक्के के मूल्य वर्ग का निर्धारण और उसको जारी करने का अधिकार प्राधिकृत सघो या शासन मे निहित होता है। सिक्के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एव भौतिक जीवन पर काफी प्रकाश डालते है। इनके प्राप्ति स्थलो से काफी सीमा तक राज्यो के विस्तार का पता चलता है।

राजस्थान मे प्राचीनत्तम सिक्को मे धातु के टुकडो पर विशिष्ट चिह्न टकित होते थे और इस कारण आहत सिक्के कहलाते है।

सिक्को के ढेर राजस्थान मे काफी मात्रा मे विभिन्न स्थाना पर मिले है। सन् 1871 मे कार्लायल को नगर (उणियारा) मे लगभग 6000 मालव सिक्के मिले थे जिससे वहा मालवो के आधिपत्य तया उनकी समृद्धि का पता लगा है। सन् 1933 मे

जयपुर जिले के मिकराय गाव के निकट सम्राट चन्द्रगुप्त के 39 सोने के सिक्के मिले थे। सन् 1938-39 मे जब के एन पुरी ने रैढ (टोंक जिला) की खुदाई कराई थी तब भी यहा 3175 गधिया सिक्के मिले थे। ये सिक्के मौर्य काल के थे। इनका विवरण 'रिपोर्ट ऑन द एक्सकेवेशन एट रैढ' मे मिलता है। सन् 1948 मे बयाना मे 1921 गुप्तकालीन स्वर्ण सिक्के मिले थे। ये सिक्के चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम आदि के हैं। इन सिक्को के विषय मे ए एस अल्तेकर ने 'केटलॉग ऑफ द गुप्ता गोल्ड कॉइन्स इन द बयाना होर्ड' मे पूर्ण विवरण दिया गया है। अजमेर सग्रहालय के अधीक्षक यू सी भट्टाचार्य ने अजमेर मेरवाडा क्षेत्र मे पीपलाज गाव मे मिले 3000 गधिया सिक्को के विषय मे काफी लिखा है।

तत्कालीन राजपूताना की रियासतो के सिक्को के विषय मे ड ड वेब ने 1893 मे 'द करेंसीज ऑफ दी हिन्दू स्टेटस ऑफ राजपूताना' पुस्तक लिखी जो आज भी अद्वितीय मानी जाती है। कनिंघम ने 1894 मे 'काइन्स ऑफ मेडीवियल इण्डिया' प्रकाशित की जिसमे भी राजपूताना के सिक्को का विवरण दिया है। सिक्को के विषय मे तीन और पुस्तकें—ई थोमस की 'द क्रॉनिकल्स ऑफ द पठान किंग्स ऑफ देहली' (1871), ई जे रेपसन की 'इण्डीयन कॉइन्स' (1897) तथा वी ए स्मिथ की केटलॉग ऑफ कॉइन्स इन दि इण्डीयन म्यूजियम कलकत्ता' (1906) भी है। मारवाड के सिक्को पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक विश्वेश्वरनाथ रेऊ की 'कॉइन्स ऑफ मारवाड' (1946) है जिसमे मारवाड़ क्षेत्र मे मिले प्राचीन काल से वर्तमान काल तक के सिक्को का प्रमाणिक विवरण है। इनमें आठवी-नवी सदी के अरब सिक्को जो मण्डोर व चोहटन मे मिले थे, का विवरण है। जगदीशसिंह गहलोत ने अपने ग्रन्थ राजपूताना का इतिहास मे सभी रियासतो के सिक्को का सक्षिप्त विवरण दिया है। सिक्को पर एक और पुस्तक ब्रजमोहनसिंह परमार द्वारा लिखित "युग-युगो मे राजस्थान-सिक्को के माध्यम से" काफी महत्वपूर्ण है।

सग्रहालय — सग्रहालय वह भवन है जहा कलात्मक वस्तुओ, विशिष्ट युगीन महत्वपूर्ण उपलब्धियो से सम्बद्ध उपकरणो या स्थायी महत्व की कलाकृतियों का सुरक्षित रूप से एकत्रित किया और व्यवस्थित रूप से प्रदर्शनार्थ रखा जाता है। सामान्य भाषा मे इसे अजायबघर भी कहा जाता है क्योकि जनसाधारण की दृष्टि मे, वहा अनेकानेक विचित्र विलक्षण अद्भुत किन्तु कलात्मक वस्तुए देखने को मिलती है। सग्रहालयो को वस्तुओ के महत्व को आकने के लिए कभी कभी अनुकृतियो, चार्टो, छायाचित्रो आदि का भी प्रयोग किया जाता है। इनसे इतिहास लेखन मे काफी सहायता मिलती है। यह हमारा सौभाग्य है कि राजस्थान मे जितने सग्रहालय है उतने किसी अन्य प्रात मे नही है। इन सग्रहालयो के अध्यक्ष के रूप मे डा गौरीशकर हीराचन्द ओझा, प विश्वेश्वर नाथ रेउ, श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल, श्री जगदीशसिह गहलोत आदि जैसे इतिहासकारो ने काम किया है।

कला व पुरातत्व इतिहास के पूरक होते है। अत कलात्मक व पुरातात्विक

वस्तुओं के सग्रहालयो से इतिहास लेखन मे बडी सहायता मिली है। राजस्थान के युगयुगीन जीवन एव सस्कृति के सम्बन्ध मे इन सग्रहालयो मे काफी सामग्री सग्रहित है। इन सग्रहालयो की विवरणात्मक पुस्तिकाएं भी इतिहास शोधको के उपयोग हेतु प्रकाशित की गई है। इन मे उन सग्रहालयो की मूर्तियो, अभिलेखा, चित्रो, कलात्मक वस्तुओ व हस्त कला के नमूनो पर काफी प्रकाश डाला गया है।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षो मे जयपुर, व उदयपुर रियासतो मे सग्रहालय स्थापित हुए। अत 1886 मे अलवर्ट हॉल म्युजियम जयपुर मे तथा 1840 मे विक्टोरिया हॉल म्युजियम उदयपुर मे खोला गया। इनमे इन रियासतो के विभिन्न क्षेत्रो से मिली प्राचीन वस्तुऐ, शिलालेख, सिक्के, मूर्तिया, पोशाके, आदि, जो इतिहास व सस्कृति से सम्बन्धित थी, रखी गई। प्रातीय सग्रहालय के रूप मे 1908 मे राजपूताना सग्रहालय अजमेर मे खोला गया। इसमे राजपूताना के विभिन्न क्षेत्रो की इतिहास व सस्कृति से सम्बन्धित वस्तुऐ रखी गई है। इस सग्रहालय के अध्यक्ष गौरीशकर हीराचन्द ओझा नियुक्त किये गये जो लगभग 30 वष तक उस पद पर काम करते रहे। जोधपुर मे 1909 मे कलात्मक तथा औद्योगिक वस्तुओ की प्रदशनी लगाई गई और उनको बाद मे सुरक्षित रखने को "मारवाड औद्योगिक सग्रहालय" स्थापित किया गया जिसे 1914 मे इतिहास सम्बन्धी वस्तुओ का सग्रहालय बना दिया गया, और 1917 मे सरदार सग्रहालय नाम दे दिया गया। सन् 1914 मे इसके अध्यक्ष विश्वेश्वर नाथ रेऊ बनाये गये जो इस पद पर लगभग 30 वर्ष तक काम करते रहे। सन् 1936 मे यह उम्मेद उद्यान के भवन मे स्थानान्तरित किया गया जहा वह अब भी स्थित है। इस सग्रहालय मे रत्नचद अग्रवाल, जगदीशसिंह गहलोत आदि इतिहासज्ञ व पुरातत्वान्वेषी ने अधिक्षक के रूप मे काम करते इस सग्रहालय को काफी समृद्ध तथा आकर्षक बनाया।

लू पि तैस्सीतोरी ने 1915-16 मे बीकानेर राज्य मे कई कलात्मक तथा पुरातात्विक महत्व की वस्तुऐ इकट्ठी की जो प्रारम्भ मे बीकानेर के लालगढ राजमहल मे सुरक्षित रखी गई थी। महाराजा गगासिंह ने इनको जनता के ज्ञान-वधन हेतु 1937 मे गगा गोल्डन जुबली सग्रहालय बनवाकर स्थानान्तरित कर दिया। बाद मे एक नया भवन 1954 मे बनवाकर अन्तिम रूप मे वहा सग्रहित किया गया। इसमे कई प्रकार की मूर्तिया, कलात्मक वस्तुऐ, चित्र आदि है। सन् 1915 में ही झालावाड के महाराजराणा भवानीसिंह ने झालावाड मे एक सग्रहालय स्थापित किया जिसमे कई शिला लेख, मूर्तिया, शिलापट्ट आदि सग्रहित किये गये।

सन् 1940 में अलवर राज्य की पुस्तकशाला, सिलहखाना व तोपखाना की वस्तुए अलवर मे एक सग्रहालय बनाकर प्रदर्शित की गई। इसी वष इसी प्रकार भरतपुर मे भी सावजनिक पुस्तकालय मे राज्य मे मिले पुरावशेषो को सग्रहित किया गया। सन् 1944 मे लोहागढ दुर्ग मे अलग से राजकीय सग्रहालय स्थापित किया गया। कोटा व सीकर मे सग्रहालय 1945 मे स्थापित किए गये।

इस प्रकार राजस्थान के निर्माण तक कुल 12 संग्रहालय-अजमेर, जयपुर, आमेर अलवर, भरतपुर, कोटा, बू दी, झालावाड, उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर व सीकर मे थे। राजस्थान बनने के बाद डूंगपुर आहाड़, आबू, मण्डोर, चित्तौडगढ व पाली मे नये सग्रहालय स्थापित किये गये। निजि संस्थानो मे सागरिया (जिला, गगा-नगर) मे मर छो राम सग्रहालय तथा पिलानी जिला झू झूनू) मे बिडला सग्रहालय स्थापित किये गये।

पुरालेखागार—विशिष्ट प्रशासकीय निकाय के लिखित प्रलेख तथा उसकी प्रकाशित सामग्री जिसे अधिकृत रूप से, कार्यालय विशेष या पुरालेखागार मे अभिरक्षा और भावी सदर्भ के लिए सुरक्षित रखा जाता है, पुरालेखागार कहलाता है। पुरालेखागार मे रखे सामान्यत 40 वर्ष पुराने अभिलेखो को शोध आदि प्रयोजनो के लिए पाठक बिना किसी प्रतिबन्ध के देख व प्रयोग कर सकते हैं। विभिन्न रियासतो मे न केवल प्रशासकीय प्रलेखो को व्यवस्थित रूप मे रखा जाता था बल्कि पाण्डुलिपियो, ग्रथो आदि का भी सग्रह किया जाता था। इनके अलावा ऐसे सग्रह न केवल विद्वानो बल्कि मन्दिरो, मठो, उपासारो, हवेलियो राजमहलो आदि मे भी मिलते है। ऐसा अनुमान है कि सबसे बडी ग्रथ सम्पदा राजस्थान मे ही है। जैसलमेर का जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार, बीकानेर का अनूप सस्कृत पुस्तकालय, जयपुर का पोथीखाना, जोधपुर का महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश उदयपुर का सरस्वती भण्डार विख्यात ग्रन्थालय है।

डी आर भण्डारकर के ही बडे भाई एस आर भण्डारकर ने 1905 06 मे राजस्थान के कई राज्यो मे सग्रहित प्राचीन ग्रथो की खोज की। जैसलमेर के ज्ञान भण्डार तथा बीकानेर, नागौर, जयपुर, उदयपुर, किशनगढ, अलवर आदि मे कई महत्वपूर्ण पोथिया ढू ढ निकाली। इनका प्रकाशन उन्होने अपनी 1907 की रिपोर्ट मे किया। उन्होने ही जैसलमेर के भाटी शासको के कई शिलालेखो का उल्लेख अपनी रिपोर्ट मे किया था। बाद मे इतालवी विद्वान लुगी पिजो तेस्सितोरी ने कई प्राचीन राजस्थानी ग्रथो-राठौड पृथ्वीराज री वेलि क्रिसण रुकमणी री, छद राउ जइतसीरो वीठू सूजारोकंयो, वचनिका राठौड रतनसिंह जी री महेश दासोत री खिडिया जगा री कही, आदि को ढू ढा व उनका सम्पादन किया। इस विषय मे उनकी पुस्तक 'ए डीस्क्रपटिव कैटलॉग ऑफ बार्डिक एण्ड हिस्टोरीकल मेनुस्क्रिप्टस' बडी महत्वपूर्ण है। तेस्सितोरी ने ही सर्वप्रथम यहा की भाषा का नाम पुरानी गुजराती के स्थान पर पुरानी पश्चिमी राजस्थानी नाम दिया तथा इसकी पुष्टि मे कई लेख लिखे। उन्होन लगभग 4 वर्ष तक (1915-1919) जोधपुर व बीकानेर मे खोज कार्य क॰ अपनी खोज 'जनल ऑफ द एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल (1915-18)' मे 228 पृष्ठो मे (छपी) प्रकाशित की। जगदीशसिंह गहलोत के शब्दो मे 'तैस्सतोरी के राजस्थान के प्रति प्रेम तथा राजस्थानी के प्रति की गई सेवाऐ स्वर्णाक्षरो मे लिखी जानी चाहिए'।

दुःख की बात यह है कि वह 32 वर्ष की आयु में ही (1919 में) महाप्रयाण कर गये।

राजस्थान के अन्य बड़े ग्रंथागार हैं प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, जिसकी शाखायें जयपुर, अलवर, भरतपुर, बीकानेर, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ व कोटा में हैं। टोंक में अरबी व फारसी ग्रन्थों का ग्रंथालय है। इन ग्रंथागारों में न केवल पुस्तकें बल्कि कई प्राचीन पाण्डुलिपियां, ऐतिहासिक दस्तावेज आदि हैं। राजस्थान के बाहर ऐतिहासिक प्रलेखों का सबसे बड़ा संग्रह दिल्ली स्थित राष्ट्रीय अभिलेखागार है। मध्यप्रदेश के सीतामऊ में नटनागर शोध संस्थान में भी राजस्थान के इतिहास सम्बन्धि सामग्री डा. रघुवीर सिंह के सद्प्रयत्नों से एकत्रित है।

प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य—राजस्थान इतिहास लेखन के लिये संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, फारसी, हिन्दी आदि की कृतियां बड़ी उपयोगी हैं। इन कृतियों के रचयिता या तो राज्याश्रय प्राप्त थे या स्वान्त सुखाय लिखने वाले थे। इन कृतियों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों, सामाजिक गतिविधियों, धार्मिक मान्यताओं, युद्ध प्रणाली आदि पर काफी प्रकाश पड़ता है। यद्यपि कुछ ग्रंथों में रचयिताओं द्वारा अपने आश्रयदाता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तथा कुछ सुनी सुनाई बातों का उल्लेख कर देने से उन पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जा सकता फिर भी उनका ऐतिहासिक महत्व कम नहीं हो जाता है। आवश्यकता यह है कि इन ग्रन्थों का वैज्ञानिक ढंग से सम्पादन हो। तब ही इनका महत्व बढ़ेगा और इनका इतिहास लेखन हेतु पूर्णरूपेण उपयोग हो सकेगा।

संस्कृत काव्य ग्रंथ—इतिहास से सम्बन्धित संस्कृत की कृतियां मूलतः काव्य रूप में मिलती हैं। विभिन्न कवियों ने इतिहास विषयक काव्य ग्रंथों की रचना की। ऐसे काव्य ग्रंथ हैं—पद्मनाथ परिमल का नवसाहसांक चरित्र, कल्हण आदि का राजतरंगिणी, जयानक का पृथ्वीराज विजय, नयनचन्द्र का हम्मीर महाकाव्य, उदयराज का राजविनोद महाकाव्यम्, बिहारी का संग्रामसिंह महोदयम, रघुनाथ का जगतसिंह काव्य, मोहन भट्ट का जगतसिंहाष्टक, जीवाधर का अमरसार, गंगाराम भट्ट का हरिभूषण महाकाव्यम् सदाशिव का राजरत्नाकर, लाल भट्ट का राजसिंह प्रभोवणनम्, मुकुन्द शास्त्रि का राजसिंहाष्टक, रणछोड़ भट्ट का अमरकाव्यम्, वैकुण्ठ व्यास का अमरसिंहाभिषेक काव्य, मंगल का अमरनाम रत्न काव्य, जगजीवन भट्ट का अजितोदय महाकाव्यम्, कृष्ण भट्ट का देश्वर विलास महाकाव्यम् सीताराम भट्ट का जयवंश महाकाव्यम्, कृष्णाराम भट्ट का कच्छवंश महाकाव्यम्, यमुनादत्त शास्त्री का वीरतरंग आदि। इन काव्य ग्रन्थों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओं पर काफी लिखा गया है तथा अब इतिहास लेखन हेतु उपयोगी है।

जैन साहित्य—यह साहित्य मूलतः जैन तीर्थंकरों की महत्ता, जैन धर्म के आदर्शों की विवेचना आदि से ही सम्बन्धित है लेकिन इनसे कई ऐतिहासिक

तथ्य भी मिलते है। जैन मुनि अपने ग्रथो मे तिथिया व सवत् अवश्य देते थे अत उनके साहित्य से कई ऐतिहासिक घटनाओ की गुत्थिया खुल जाती है। ऐसी इतिहास सहायक पुस्तके है - धनपाल रचित सत्यपुरम्, जिनपाल कृत खरतरगच्छ जिनेश्वर रचित कथाकोश, विजय सूरि का मान्तुग मानवती रास, हेमरतन का गोरा बादल चरित्र, लब्धोदय का पद्मनी चरित्र चौपाई, जयचन्द्र जयविमल की सईकी आदि। इन पर समीक्षात्मक रूप मे एक अत्यन्त महत्वपूण पुस्तक कस्तुरचन्द कासलीवाल की 'राजस्थान के जैन सत व्यक्तित्व एव कृतित्व' है।

राजस्थानी साहित्य इतिहास विषयक राजस्थानी कृतिया गद्य व पद्य दोनो मे मिलती है। मध्यकाल मे यहा जो अनेकानेक युद्ध हुए उनका काफी वर्णन राजस्थानी कृतियो मे प्राप्त होता है। ज्यादातर रचनाकारो को राज्याश्रय प्राप्त था अत उन्होने अपने आश्रयदाता का अतिशयोक्तिपूर्ण यशोगान किया है लेकिन उनमे आँखोदेखा ऐतिहासिक घटनाओ का विवरण भी मिलता है। उनसे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो, सामाजिक गतिविधियो, धार्मिक मान्यताओ, युद्ध के तौर तरीको आदि पर भी प्रकाश पडता है। ऐसी ऐतिहासिक गद्य कृतिया मे ख्यात, वात, विगत, वशावली, हाल, हकीकत, याददास्त, बही आदि को ले सकते है। राजस्थानी पद्यकृतियो मे रासो, विलास, प्रकास, रुपक, वचनिका, वेलि, भमाल, झूलणा, निसाणी, दवावैत, नीसाणी, मरस्या, दूहा, छंद आदि को ले सकते हैं। राजस्थानी साहित्य की इन ऐतिहासिक रचनाओ का सम्पादन होना चाहिये ताकि शोधार्थी उपयोगी सदभ ढुढ निकाल सके। तब ये और ज्यादा महत्वपूण और उपयोगी हो सकेगी।

प्रकास—किसी वश अथवा व्यक्ति विशेष की उपलब्धियो या घटना विशेष पर प्रकाश डालने वाली कृतियो का नाम प्रकास रखा गया है। ये ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ऐसे प्रकास हैं—किशोरदास का राजप्रकास आशिया मानसिंह का महायश प्रकास, कविया करणीदान का सूरज प्रकास, रामदान लालस का भीमप्रकास, मोडा आशिया का पाबूप्रकास, किशन सिढायच का उदयप्रकास, बख्तावर का केहर प्रकास, कमजी दूधवाडिया का दीपक कुल प्रकास आदि।

ख्याते - राजस्थान के इतिहास की सामग्री न केवल पद्य बल्कि गद्य मे भी मिलती है। गद्य मे यह सामग्री सत्रहवी शताब्दी मे कलमबद्ध की गई। यह साहित्य ख्यात, विगत, वात, हाल, हकीकत, वशावली, आदि के रूप मे लिखा गया। सबसे महत्वपूण ऐतिहासिक सामग्री ख्याते है। ख्याति प्राप्त, प्रसिद्ध, एव लोकविश्रुत पुरुषो की जीवन घटनाओ का सग्रह ख्यात कहलाता है। ख्यात लेखको मे मुहणोत नैणसी, बाकीदास आशिया, दयालदास सिढायच और अजीतसिंह मेहता विशेष उल्लेखनीय है। इनमे मुहणोत नैणसी प्रमुख है

राजस्थान के मध्यकालीन इतिहासकारो मे मूहता नैणसी प्रमुख है जिसे

राजस्थान का अबुल फजल कहा जाता है। उसने अपनी 'ख्यात' मे मारवाड का राजनैतिक इतिहास काफी विस्तार से दिया है। उसकी दूसरी पुस्तक 'मारवाड रा परगना री विगत' है जिसमे मारवाड का राजनैतिक के साथ सामाजिक व आर्थिक इतिहास भी काफी मिलता है। बीकानेर के दयालदास सिंढायच (1798-1891) का नाम राजस्थानी ख्यातकारो मे महत्वपूर्ण है। उसका सम्पूर्ण जीवन इतिहास लेखन और साहित्य सृजन मे ही बीता। उसके द्वारा लिखित बीकानेर रै राठौडा री ख्यात सुप्रसिद्ध है। उनके अन्य ग्रंथ – देशदपण, बीकानेर रै पट्टारै गावो री विगत, आर्याख्यान कल्पद्रुम व जस रत्नाकर है। उन्नीसवी शती का वह अन्तिम परम्परिक ख्यातकार था। यो कुछ और भी ख्यातें लिखी गई जिससे राजस्थान का इतिहास लिखने मे काफी सहायता मिलती है। यथा मुंदियाड री ख्यात, कविराजा री ख्यात, जोधपुर राज री ख्यात आदि। सुप्रसिद्ध बाकीदास की ख्यात मे लगभग 3000 फुटकर छोटी-छोटी बातो का सग्रह है। ये याददास्त के लिये लिखी गई थी अत उसमे कोई क्रम नही है लेकिन यह सग्रह इतिहास से शोधकर्त्ताओ के लिए बडी उपयोगी।

, जैसलमेर को अजीतसिंह मेहता ने राज्य का दीवान रहते अपने पूवजो द्वारा सचित की गई इतिहास सामग्री के अनुसार ई सन् 1864 के लगभग 'जैसलमेर की ख्यात' लिखी जिसमे जैसलमेर के भाटी शासको का प्राचीन काल से ई सन 1864 तक का वृतात है। इसमें प्रत्येक शासक के समय की कुछ मुख्य घटनाओ के सवत व तिथिया अकित है। तत्कालीन लोकमान्यताओ, धारणाओ व सामाजिक आदर्शों का अच्छा चित्रण दिया है। इसी के आधार पर ई सन् 1891 मे लिखमीचन्द ने 'जसलमेर री तवारीख' लिखी थी। इस प्रकार ख्यातकारो का राजस्थान इतिहास लेखन मे महत्वपूण योगदान रहा। (ख्यातो के विशेष अध्ययन हेतु परिशिष्ट देखें।)

रासो–मध्यकालीन राजपूत शासको ने विद्वानो और कवियो को अपने दरबार मे उचित सम्मान दिया। वे राजाओ की प्रशसा मे काव्यो की रचना करते हुए उनके राजघराने का भी विवरण लिखने लगे। इससे इन काव्यो मे इतिहास की सामग्री मिलती है। ऐसे काव्यो को रासो कहा जाता है। रासो ग्रथ मे चदरदाई का पृथ्वीराज रासो, नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासो, कविया गोपालदास का "सवस यश प्रकास या लावा रासा, दयालदास ब्रह्मदत्त का राणा रासो, नवाब अलफ खा उफ कवि जान का क्यामखाँ रासो, दौलत विजय का खुमाणरासो, गिरधर आसिया का सगत रासो, राव महेशदास का बिन्हे रासो, कुम्भकण का रतन रासो डूगरसी का शत्रुसाल रासो, जोधराज का हम्मीररासो, जाचिक जीवण का प्रतापरासो, सीताराम रत्नु का जवानरासो आदि है।

(राजस्थानी ग्रन्थो मे विशेष ग्रन्थ 'कान्हडदे प्रब ध' व 'वश भास्कर' के लिये परिशिष्ट देखें।)

फारसी तवारीखें फारसी तवारीखो व दस्तावेजो का भी बड़ा महत्व है। ऐसी तवारिखो मे सदरउद्दीन हसन निजामी की ताज-उल-मासिर, अमीर खुसरो की मिफता-हुल-फुतुह व खजाइनुल व फुतुह, शम्स सिराज अफीफ की तवारीख-ए-फीरोजशाही, शरफुद्दीन अली माजदी का जफर नामा, अब्बास खा सेरवानी का तवारिख-ए-शेरशाही, जहीरूद्दीन बाबर का बाबरनामा, गुलबदन लिखित हुमायू नामा, अबुलफजल का अकबरनामा, मुहम्मद कासिम हिन्दूशाह फरिस्ता का तवारीख-ए-फरिस्ता, निजामुद्दीन का तबकात-इ-अकबरी, अब्दुल कादिर बदायूनी का मुतखब-उ-तवारिख जहांगीर का आत्मचरित्र तुजुक-ए-जहांगीरी, काजविनी का पादशाहनामा, अब्दुल हमीद लाहोरी का पादशाहनामा, मुहम्मद वारिस का पादशाहनामा, इनायतखा का शाहजहानामा खफीखा का मुन्तखब-उल-लवाब, मुहम्मद काजीम कृत आलमगीरनामा, ईश्वरदास नागर का फुतुहात इ-आलमगिरी इरादतखा का तवारीख-ए-इरादतखाना, खुशालचन्द का तवारीख ए-मुहम्मदशाही, शिवदास लखनवी का मुनव्वर कलाम, अली मुहम्मद खा का मीरात-ए-अहमदी, मुहम्मद अलीखा अन्सारी का तवारीख-ई-मुज्जफरी, हरचरनदास का चहर गुलजार-ए-शुजाई, मुन्नावरलाल का अमीरनामा, ज्वालाप्रसाद का वाकय-ए-राजपूताना, मन्नोराम कायस्थ का तवारीख-ए-राजस्थान, मुहम्मद उबेदुल्लाह फरहती का तवारीख तुहफ ए-राजस्थान, के अनुवाद हिन्दी या अग्रेजी मे उपलब्ध है। राजस्थान इतिहास लेखन हेतु ये बडी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। बादशाहो द्वारा जारी किये गये फरमानो, दरबार के अखबारो आदि से भी राजस्थान के इतिहास को जानने मे सहायता मिलती है।

नये इतिहास ग्रन्थ—उन्नीसवी शताब्दी के आरम्भ मे विदेशी विद्वानो ने राजस्थान का इतिहास लिखने का प्रयास आरम्भ कर दिया था। राजस्थान के इतिहास के विषय मे अति प्रसिद्ध ग्रथ कर्नल टॉड द्वारा लिखित 'अनाल्स ,एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' (82)-1832) के अलावा 'ट्रावल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' (1839) उन्नीसवी सदी के आरम्भ मे ही प्रकाशित हुए थे। सुनीतिकुमार चटर्जी ने टॉड के इतिहास को बगाल की स्वतन्त्रता प्रेमी जनता के लिए नया महाभारत काव्य बतलाया है जिसको पढकर स्वतन्त्रता-प्रेमियो ने भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम मे भाग लेना आरम्भ कर दिया। टॉड के इतिहास मे वर्णित महाराणा प्रताप, राजसिंह, वीर दुर्गादास राठौड आदि वीर बगालियो के स्वतन्त्रता नायक बन गये। बाद के वर्षो मे मेजर स्ट्रेटन ने 'साट हिस्ट्री ऑफ कोटा स्टेट,' जे पी स्ट्रेटन ने 'चितौड एण्ड द मेवाड फेमीली', कर्नल जेम्स ब्रुक ने 'हिस्ट्री ऑफ जयपुर' सोवस ने 'नोटस ऑन जयपुर, जनरल साबास ने 'ए मिसिंग चेप्टर ऑफ द इण्डियन म्युटिनी' आदि इतिहास ग्रथो की रचना, की जिनके कारण विभिन्न रियासतो के राजाओ को अपने अपने राज्यो का इतिहास लिखवाने की रुचि जागृत हुई। कई रियासतो ने उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षो मे इतिहास व पुरातत्व के अध्ययन हेतु इतिहास विभाग स्थापित किये। उदयपुर मे महाराणा सज्जनसिंह ने मेवाड का इतिहास लिखाने हेतु 1877 मे कवि-

राजा श्यामलदास को अपने इतिहास विभाग मे नियुक्त किया, जिन्होंने काफी परिश्रम कर 1892 मे वीरविनोद चार जिल्दो मे2(68 छो बडे पृष्ठो मे) प्रकाशित किया। इसमे न केवल मेवाड राज्य का बल्कि राजस्थान की अन्य रियासतो का भी सक्षेप मे इतिहास था। श्यामलदास के सहायको मे गौरीशकर हीराचन्द ओझा भी थे। इतने विशाल ग्रथ के तैयार हो जाने पर भी मेवाड के महाराणा ने कुछ कारणवश इस ग्रन्थ के वितरण पर रोक लगा दी और इस कारण यह ग्रथ जनता के बीच स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही आ सका।

जोधपुर राज्य मे भी 1888 मे 'मारवाड का इतिहास' लिखाये जाने के लिये अलग से महकमा तवारीख खोला गया जिसमे मुन्शी देवीप्रसाद जसे इतिहास प्रेमी विद्वान नियुक्त किये। उनका स्वगवास 1923 मे हो गया। उन्होने जयचन्द से राव तीडा तक तथा राव मालदेव व महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) के जीवन चरित्र प्रकाशित करवाये। (उन्होने आमेर के राजा पृथ्वीराज से भगवन्तदास तक का इतिहास और आमेर के महाराजा मानसिह (प्रथम) का जीवन चरित्र, मेवाड के महाराणा सागा से महाराणा प्रताप तक तथा बीकानेर के राव बीका से लेकर राव कल्याणमल तक के शासको के जीवन चरित्र छपवाये थे)। तवारीख महकमा मारवाड द्वारा काफी परिश्रम करने के बाद 6 राजाओ की जीवनिया ही 19 6 तक लिखी जा सकी। अत महकमा तवारीख बन्द कर दिया गया। एक नया इतिहास विभाग खोला गया और विश्वेश्वरनाथ रेऊ को अध्यक्ष नियुक्त किया गया जिन्होने 1934 मे राष्ट्रकूटो का इतिहास' प्रकाशित किया तथा बाद मे विस्तृत रुप से 'मारवाड का इतिहास दो भागो मे (1938 व 1940 मे) प्रकाशित हुआ। बूदी राज्य मे सरकार की ओर से सूर्यमल मिश्रण ई सन् 1840 मे इतिहास लिखने को नियुक्त किया गया जिन्होने कविता मे 'वश भास्कर' नामक ग्रथ 4 भागो मे रचा। इसमे एक लाख डिंगल पद्यो मे बून्दी राज्य का इतिहास, बून्दी राज्य की स्थापना से लेकर रावनारायणदास हाडा की मृत्यु तक है। बून्दी नरेश ने भी इस इतिहास ग्रथ के प्रचार व प्रसार की स्वीकृति नही दी क्योकि इसमे कई तथ्य राजा को उचित नही लगे। बाद मे सूर्यमल के दत्तक पुत्र मुरारीदान ने पश्चातवर्ती राजाओं का इतिहास लिखकर 'वश भास्कर' के नाम से ई सन् 1899 मे प्रकाशित किया। मुरारीदान ने जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिह द्वितीय (1873-95) के जीवन पर 'यशवत यशोभूषण' लिखा। बीकानेर राज्य मे मुशी सोहनलाल से 'तवारीख ई राज श्री बीकानेर' लिखवाया गया। जैसलमेर राज्य मे लक्ष्मीचन्द से 'तवारीख ई जैसलमेर' 1891 मे तथा कोटा राज्य मे मुशी मूलचन्द से 'तवारीख ई राज्य कोटा' 1918 मे तथा सिरोही राज्य मे लल्लू भाई भीमभाई देसाई से 'चौहान कुल कल्पद्रुम' 1927 मे लिखवाया गया। कल्पद्रुम के दूसरे भाग मे सिरोही के राजवश-देवडा चौहानों का इतिहास है। तब ही अग्रेजी मे सीताराम का सिरोही राज्य का इतिहास 1920 मे प्रकाशित हुआ। गौरीशकर हीराचन्द ओझा से भी सिरोही राज्य का इतिहास 1911 में राज्य ने लिखवाया लेकिन उसकी ज्यादातर प्रतियां सिरोही दरबार ने वितरित नहीं होने दी। वे प्रतिया अभी भी सिराही दरबार

ने रोक रखी है। जयपुर नरेश ने भी 'ए हिस्ट्री ऑफ जयपुर' जदुनाथ सरकार से लिखवाया। यह इतिहास 1939 मे तैयार हो गया था लेकिन महाराजा ने कुछ अशो को अपने राजवश के मान सम्मान के हित मे सही नही समझा अत उसका प्रकाशन नही होने दिया तथा काफी रकम जदुनाथ सरकार को देकर उसकी पाण्डुलिपी अपने पास रख ली। जोबनेर के नरेन्द्रसिंह ने भी अंग्रेजी मे 'जयपुर राज्य का इतिहास' लिखा था जो भी महाराजा जयपुर ने अपने पास रख लिया जो बाद मे 1962 मे मथुरालाल शर्मा ने सरकार द्वारा लिखित 'हिस्ट्री ऑफ जयपुर स्टेट' को देख कर व इससे सहायता लेकर अपने नाम से प्रकाशित किया। सरकार की 'हिस्ट्री ऑफ जयपुर स्टेट' 1984 मे प्रकाशित हुई जिसका सम्पादन डा रघुवीरसिंह ने किया। कोटा राज्य ने भी मथुरालाल शर्मा से कोटा राज्य का इतिहास लिखवाया जो दो भागो मे 1939 मे प्रकाशित हुआ।

स्वतन्त्र प्रयास—रियासतो की ओर से राजकीय आश्रय मे जब इतिहास लिखवाये जा रहे थे तब ही कई इतिहास लेखक अपने प्रयासों से इतिहास लिखने म लगे थे। इस कारण गौरी शकर हीराचन्द ओझा ने 1928-1931 में उदयपुर राज्य का इतिहास प्रकाशित किया। बाद के वर्षो मे उन्होने डू गरपुर (1936), बासवाडा, (19 7) प्रतापगढ (1940), बीकानेर (1939-40) व जोधपुर राज्य (1938-1941) का इतिहास प्रकाशित किया। जोधपुर राज्य का इतिहास अधूरा ही प्रकाशित कर पाये। महाराजा तख्तसिंह के व उनके बाद के राजाओं का वृतांत अभी छपना है। जोधपुर राज्य का सम्पूर्ण इतिहास जगदीशसिंह गहलोत ने 1925 मे प्रकाशित किया। इस प्रकार जोधपुर रियासत अपने प्रयासो में जहा विफल रही, जगदीशसिंह ने सफलता प्राप्त कर ली। बाद के वर्षो मे उन्होने राजस्थान की सम्पूण रियासतो (19) व अजमेर मेरवाड का इतिहास लिखे। अर्थाभाव के कारण अब तक 10 रियासतो के ही इतिहास - उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाडा, प्रतापगढ, शाहपुरा, करौली, जैसलमेर, बून्दी, कोटा, सिरोही, अलवर व जयपुर के ही इतिहास लगभग 1300 पृष्ठो मे प्रकाशित हुए है। अपने अन्तिम दिनो (सितम्बर 1958) मे उन्होन यह महसूस किया कि उन्होने जो कुछ परिश्रम पिछले 40 वर्षो मे किया वह काफी कष्टप्रद व आर्थिक दृष्टि से हानिकारक रहा। ऐसा काम किसी साधन सम्पन्न व्यक्ति द्वारा या किसी सस्था द्वारा ही आरम्भ किया जाना चाहिये था। इसी कारण उनके ज्यादार ग्रन्थ अप्रकाशित ही रह गये। उनके प्रकाशन का प्रयास अब हो रहा है।

स्वतन्त्रता-पूव काल मे राजस्थान तथा विभिन्न रियासतो का इतिहास लिखने वालो मे मु शी देवीप्रसाद, रामनाथ रत्नु जगदीशसिंह गहलोत, रामकरण आसोपा, हरविलास शारदा, हनुमान शर्मा, झाबरमल शर्मा आदि प्रमुख थ। मुन्शी देवीप्रसाद ने प्रतिहार बाउक का वि स 894 का तथा घटियाला का वि स 918 का शिलालेख खोज निकाला था जो उन्होने 'मारवाड के प्राचीन अभिलेख' मे प्रकाशित किया था। उन्होने मीराबाई, राव मालदेव, राव बीका, राव जैतसिंह,

आमेर के पृथ्वीराज, मेवाड के महाराणा रत्नसिंह व महाराणा उदयसिंह के जीवन चरित्र लिखे थे। उर्दू मे 'तवारिख ई-मारवाड' भी लिखी थी लेकिन वह अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी है। रामनाथ रत्नु ने 'इतिहास राजस्थान' लिखा लेकिन उसका प्रचार व प्रसार कम हो पाया। सन् 1925 में जगदीशसिंह गहलोत का 'मारवाड राज्य का इतिहास' प्रकाशित हुआ जिसमे विभिन्न राठौड राज्यों (मालवा की रियासतो का भी) का भी इतिहास था। रामकरण आसोपा का 'मारवाड का मूल इतिहास' सन् 1931 मे प्रकाशित हुआ। उन्होने मारवाड का संक्षिप्त इतिहास' प्रकाशित करने हेतु दधिमति पत्रिका मे ई सन् 1927 से धारावाहिक छापना प्रारम्भ किया था लेकिन वह ई सन् 1689 तक का ही इतिहास लिख सके। आगे का छप नही सका और न वह पुस्तक रूप मे प्रकाशित हो सका। अब वह इतिहासकारो तथा शोधकों के लिये अप्राप्य है। आसोपा ने कुछ जागीरों – नीमाज, आसोप, ठिकानो के इतिहास भी लिखे। राजस्थानी ऐतिहासिक काव्यों मे राज रत्नाकर, वीरभाण के राजरूपक, करणीदान के सूरजप्रकाश तथा मुहणोत नैणसी की ख्यात का भी सम्पादन हुआ। हरविलास शारदा ने चौहानो की राजधानी अजमेर पर बडी विद्वतापूर्ण व प्रमाणिक इतिहास 'अजमेर-हिस्टॉरिकल एण्ड डिस्क्रिप्टीव' (1911) लिखा। बाद मे महाराणा कुम्भा (19 5), महाराणा सांगा (1918) 'हम्मीर ऑफ रणथम्भौर' (1921) एम्परर बीसलदेव (1935) लिखा। झाबरमल शर्मा ने सीकर का इतिहास (1927), खेतडी नरेश और विवेकानन्द (1927) राजा अजीतसिंह का जीवन चरित्र (1940) लिखा। हरदत्त व्यास ने जसलमेर का इतिहास (1920) तथा हनुमान् शर्मा ने जयपुर का इतिहास (1924) लिखा।

राजस्थान का एकीकृत इतिहास लिखने वालो मे पृथ्वीसिंह मेहता का 'हमारा राजस्थान' (1950) तथा रघुवीरसिंह का पूर्व आधुनिक राजस्थान (1951) मुख्य है। दोनो इतिहासकारो की कृतिया आज भी अनेक इतिहास प्रकाशित हो जाने पर भी प्रमाणिक मानी जाती है। भारत मे प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम मे राजस्थान की देन के सम्बन्ध मे नाथूराम खडगावत की पुस्तक 'रोल ऑफ राजस्थान इन 1857' एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक है। उन्होने राजस्थान के स्वतन्त्रता आन्दोलन पर भी पाण्डुलिपि तैयार की लेकिन वह अभी तक राजस्थान सचिवालय मे ही प्रकाशन का इंतजार कर रही है। सन् 1857 के विद्रोह के विषय मे एक और पुस्तक प्रकाश व्यास ने 'राजस्थान का स्वतन्त्रता संग्राम' लिखी। सम्पूर्ण राजस्थान का सम्पूर्ण इतिहास लिखने वालो मे सुखबीरसिंह गहलोत का राजस्थान का संक्षिप्त इतिहास (1969) गोपीनाथ शर्मा का राजस्थान का इतिहास (1971) बी एम दीवाकर का राजस्थान का इतिहास आदि है। आधुनिक राजस्थान का इतिहास 1988 मे एम एस जैन के द्वारा लिखा गया है जो एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक है। मेवाड के इतिहास पर रामवल्लभ सोमानी ने हिस्ट्री ऑफ मेवाड़ (1967) तथा लेटर मेवाड (1986) प्रकाशित की है। इनकी एक और पुस्तक 'महाराणा कुम्भा' 1974 मे प्रकाशित हुई। राजस्थान सरकार द्वारा राजस्थान का इतिहास लिखवाये जाने को 1959 मे एक समिति बनाई गई थी। अब तक

केवल एक भाग 1966 में 'राजस्थान थ्रू द एजेज' प्रकाशित हो सका है। शेष दो भाग अभी तक प्रकाशित नहीं हो सके हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के 43 वर्षों में राजस्थान के इतिहास के विभिन्न क्षेत्रों व कालों के विषय में काफी अध्ययन व शोध हो रहा है। कई शोध ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। कई विश्वविद्यालयों मे शोध कार्य हो रहा है। कई विश्वविद्यालयो के शोधकों व शोध संस्थानों में विद्वानों के राजस्थान के इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर भाषण होते रहते है तथा उनका प्रकाशन भी होता है। न केवल राजनैतिक इतिहास बल्कि मूल स्रोतों व तत्कालिन दस्तावेजों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक इतिहास पर भी काफी लिखा जा रहा है। (इनका विवरण परिशिष्ट 3 में देखें)।

राजस्थान पुरालेखागार में संग्रहित सामग्री राजस्थान के इतिहास लेखन कार्य हेतु भारत में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। डॉ हुकमसिंह भाटी के शब्दों में 'यहां शिलालेख ताम्रपत्र, ख्याते, वाते, पट्टे परवाने, काव्य ग्रन्थ आदि इतनी विपुल मात्रा मे उपलब्ध है कि इन सबका सम्पादन व प्रकाशन भी सहज सम्भव नहीं है फिर भी आधारभूत महत्वपूर्ण ग्रंथों का सम्पादन और प्रकाशन का कार्य यथा शीघ्र हो जाये तो इस समस्या का सामाधान हो सकता है।' भारतीय इतिहास मे राजस्थान के वैशिष्ट्य पूर्ण इतिहास के अन्तर्गत यहां के राजवंशों की गौरवपूर्ण गाथाओं से पृष्ठ के पृष्ठ भरे हुए है।" आशा यह की जाती है कि शीघ्र ही सम्पूर्ण राजस्थान का प्रामाणिक इतिहास विस्तृत रुप से प्रकाशित हो सकेगा।

हे अतीत, तुमि हृदये आभार।
कथा कओ, कथा कओ॥

—रविन्द्रनाथ टेगोर



दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ

१. कान्हडदे प्रबन्ध—आचार्य जिनविजय मुनि के अनुसार 'महाकवि पद्मनाभ रचित महाकाव्य 'कान्हडदे प्रबन्ध' राजस्थान के चौहान कुल शिरोमणि वीर कान्हडदे के स्वधर्म और स्वदेश की रक्षा के निमित्त अनुपम बलिदान की कीर्ति कथा है। यह काव्य विशुद्ध धर्म-प्रेम, उन्नत राष्ट्र प्रेम, उत्तम सदाचार प्रेम और सात्विक सत्य प्रेम का एक प्रशस्त पुण्यस्रोत है। यह काव्य प्रबन्ध प्राय शुद्ध ऐतिहासिक काव्य है। इसमे वर्णित घटनाये बहुत अश मे इतिहास समर्थित है। प्राचीन राजस्थानी किंवा प्राचीन गुजराती भाषा की यह एक सर्व श्रेष्ठ कृति हैं।'

'पद्मनाभ जालोर निवासी था तथा चौहान नरेश अखयराज का राजकवि था। अखयराज कान्हडदे की पाचवी पिढी मे था। अखयराज की प्रेरणा से कवि ने वि स 1512 (ई सन् 1455) मे इस काव्य की रचना की। वह बहुश्रुत कवि तथा इतिहास का अच्छा जानकार था। उसे समाज का तथा राजदरबार के रीतिरिवाजो का भी अच्छा ज्ञान था। यह काव्य देवनागरी लिपि मे प्राचीन राजस्थानी भाषा मे लिखा गया था। इसमे कान्हडदे की कथा इस प्रकार दी है—

नवकोटि मारवाड मे कनकाचल पर्वत की तलहटी मे बसे जालोर के सोनगरा चौहान सामतसिह (ई सन् 1282—1305) के पुत्र कान्हडदे (ई सन् 1290—1314) व मालदेव थे। ज्येष्ठ पुत्र कान्हडदे अपने पिता को प्रशासन मे ई सन 1296 मे सहयोग देने लगा। यह समय बडा उथल पुथल का था। दिल्ली का सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी (ई सन् 12961—1316) इस समय भारत के विभिन्न क्षेत्रो को जीतने मे लगा था। उस समय गुजरात का शासक सारगदे (वास्तव मे कर्ण बघेला) था। उसका प्रधान मत्री माधव ब्रह्मण किसी कारणवश राजा से नाराज होकर अलाउद्दीन के पास चला गया और उसने सुल्तान को गुजरात पर आक्रमण करने हेतु उकसाया। अत अलाउद्दीन ने गुजरात को जीतकर सोमनाथ के मन्दिर को नष्ट करने का निश्चय किया। सुल्तान ने गुजरात जाने के लिये जालोर नरेश से, उसके राज्य मे होकर अनुमति मागी लेकिन कान्हडदे ने यह सदेश भेजकर मना कर दिया कि तुम्हारी सेना हमारे गावो को नष्ट करती, लोगो को बन्दी बनाती, स्त्रियो की इज्जत लेती, ब्रह्मणो को परेशान करती और गायो की हत्या करती जावेगी और यह हमारे धर्म के विरुद्ध होने से हम आपको अनुमति नही दे सकते है। अलाउद्दीन इस कारण नाराज हो गया लेकिन तब चुप रहा और अपनी सेना (ई सन 1299 मे) मेवाड होकर भेज दी। गुजरात मे सोमनाथ पाटण का मन्दिर,

तोड दिया गया। गुजरात से लौटते समय मुस्लिम सना न जालार का रास्ता लिया। जालोर के चौहान यह जानकर क्रोधित हो उठे कि वह सेना सोमनाथ से महादेव की मूर्ति के साथ सैकडो हिन्दू स्त्री-पुरुषो को बन्दी बनाकर ले जा रहे थे। जालोर से 18 मील दूर सिराणा गाव मे खिलजी सेना ने पडाव किया ही था कि कान्हडदे के सामन्त जेता देवडा ने शत्रु सेना पर भी आक्रमण कर उनके कुछ सरदारो को मौत के घाट उतार दिया लेकिन उनका सेनापति उलुघखा बच निकला। चौहानो ने बन्दियो को छुडवा दिया और महादेव की मूर्ति के पाच टुकडो को अपने कब्जे में लेकर उनको सोरठ (प्रभास) बागड, आबू, जावालिपुर (जालोर व अपने महल के बाग मे स्थापित कर दिया। इस काय से कान्हडदे की कीर्ति सर्वत्र फैल गई।

अलाउद्दीन अगले सात वर्षो तक विभिन्न स्थानो की विजय मे लगा रहा। इस समय मे उसने रणथम्भोर (1299-1300) चित्तौड (1303) आदि को जीत लिया। सन् 1305 मे पूरी तैयारी कर उसकी सेना जालोर पहुच गई। अब अलाउद्दीन के सेनापति नाहर मलिक ने कान्हडदे को बडी चालाकी से अपना मित्र बना लिया तथा उसे सुल्तान के दरबार मे उपस्थित होने के लिए राजी कर लिया। कान्हडदे मित्रभाव से दिल्ली चला गया लेकिन उसने यह देखा कि वहा एक राजपूत नरेश का स्वाभिमान से रहना कठिन है। कवि के अनुसार दिल्ली दरबार मे अलाउद्दीन की शाहजादी पीरोजा, कान्हडदे के राजकुमार वीरमद को देखकर मोहित हो गई और अपने पिता को स्पष्ट कह दिया कि वह पूव जन्म से ही वीरमदे की पत्नि है। सुल्तान ने हारकर वीरमदे से विवाह करने हेतु कहा लेकिन वह टाल गया। उधर कान्हडदे सुल्तान की वह गर्वोक्ति सहन नही कर सका जब उसने यह शेखी बघारी कि भारत का कोई नरेश उसका सामना नही कर सकता है। कान्हडदे सुल्तान को यह कहकर जालोर चला गया कि वह सुल्तान का सामना करेगा और यदि वह विफल रहा तो मृत्यु का आलिंगन कर लेगा। इस प्रकार उलाउद्दीन व कान्हडदे के बीच सघर्ष आरम्भ हो गया। खिल्जी सेना जालोर के लिये रवाना हो गई। रास्ते मे कान्हडदे के भतीजे शीतलदे, जो सिवाणा का शासक था, को सिवाणा से घेर लिया। सात वर्ष के संघर्ष के बाद अलाउद्दीन की सेना ने सिवाणा दुर्ग पर कब्जा कर लिया। कब्जा करने में मुख्य हाथ एक देशद्रोही भायला परमार का था। दुर्ग की स्त्रियो ने जौहर किया। शीतलदे 1303 की 9 सितम्बर को मारा गया। सुल्तान ने सिवाणा का नाम खैराबाद रख दिया।

खिल्जी सेना ने बाद में बाडमेर, सत्यपुर (साचोर), व भीनमाल आदि पर अधिकार कर लिया ताकि कान्हड्दे को बाहर से कोई सहायता नही मिल सके तथा कान्हडदे भयभित हो जावे। कान्हडदे की सेना भी शात नही रही और उसने गुरिल्ला युद्ध द्वारा शत्रु को परेशान करना आरम्भ कर दिया। एक बार उन्होने खिल्जी सेना के धाणसा पडाव पर यकायक हमला कर भीनमाल मे गिरफ्तार किये

गये ब्राह्मणो को छुडवा लिया। वाद मे जव जालोर के ये सैनिक स्नान कर रहे थे तब खिल्जी सेना उनपर टूट पडी और लगभग 4000 सैनिको को मार डाला।

उधर दिल्ली मे शाहजादी पीरोजा ने बादशाह से निवेदन किया कि वह जालोर पर कब्जा न करे व सेना वापस बुला लेवे। उसने अपने पिता को वतलाया कि जालोर का दुग बडा सुदृढ है और उसमे अन्न व पानी का काफी सग्रह है। कान्हडदे व उसके भाई मालदेव के वीच राम-लक्ष्मण जैसा प्रेम है। सुल्तान ने पीरोजा की बात नही मानी और उसने एक लाख सैनिक जालोर भेज दिये। सेना के साथ शाहजादी की धाय ददा सनावर को भेजा ताकि वह वीरमदे को जीवित पकडवा देवे अन्यथा उसका कटा सिर ले आवे। यह सेना मेडता होकर सुदरी पहु ची। रास्ते मे मालदेव व वीरमदे की सेना ने रोका। लेकिन शत्रु सेना आगे बढती ही गई और जालोर दुर्ग को घेर लिया। चौहानो की सेना गुरिल्ला युद्ध से मुस्लिम सेना को परेशान करती रही। खिल्जी सेनापति कमालुद्दीन फिर भी डटा रहा और उसने दुग के सैनिको को पहु चने वाली रमद को रुकवा दिया। दुग के जल स्रोत भी समाप्त हो गये। फिर भी कान्हडदे डटा रहा। अभाग्यवश कान्हडदे का एक सामन्त बीका दहिया शत्रु सेनापति द्वारा दिये लालच मे आ गया और उसने उसे दुर्ग का एक छिपा मार्ग, जो असुरक्षित था, वतला दिया। उस रास्ते से शत्रुसेना दुग मे प्रवेश कर गई। वीका की पत्नी हीरादेवी को अपने पति की इस करतूत का पता लगा तो उसने उसकी हत्या कर दी और कान्हडदे को यह सूचना दे दी लेकिन तब तक काफी देर हो गई थी। कान्हडदे निराश हो गया था क्योकि उसके कई वीर साम त—जेता देवडा, काधल, जैता उलीचा, लूणकरण मोल्हन अर्जु न बाडवाल आदि मारे जा चुके थे। खिल्जी सेना दुग मे प्रवेश कर कान्हस्वामी के मन्दिर तक पहु च गई थी। यह देखकर कान्हडदे ने दुर्ग की 1584 स्त्रियो को जौहर करने दिया और अपनी अतिम लडाई की तैयारी कर ली। वीरमदे का राजतिलक किया गया। कान्हडदे केसरिया धारण कर शत्रु सेना पर टूट पडा और वि स 1368 की वैसाख सुदी पचमी बुधवार (ई सन् 1311 की 24 अप्रेल) को वीर गति को प्राप्त हुआ। वास्तव मे पचमी को बुधवार न होकर शनिवार था। अत यह तिथि सही नही है। वास्तविक तिथि वि स 1371 की ज्येष्ठ (मई 1914) है। इस प्रकार जालोर के सोनगरो का राज्य समाप्त हो गया।

वीरमदे 8 दिन ही राज कर सका। वह शत्रु सेना द्वारा पकड लिया गया लेकिन उसने अपने पेट मे कटार भोक कर आत्म हत्या कर ली। इस युद्ध मे सभी राजपूत सैनिक मारे गये। शत्रुसेना का भी दसवा भाग ही बचा। चार लाख शत्रु सैनिक मारे गये। ददा सनावर वीरमदे का सिर रत्नजटित पीजरे मे सुगधित द्रव्यो मे रखकर दिल्ली ले गई। वह सिर सोने के थाल मे रखकर शाहजादी के सामने रखा गया लेकिन वह सिर शाहजादी को देखते ही पीछे की ओर फिर गया। शाहजादी ने अपने माता पिता से अनुमति लेकर वीरमदे के साथ चिता मे बैठी और इस प्रकार उसका दाह सस्कार कर दिया गया। वादशाह ने 8 माह तक शोक मनाया।'

कवि पद्मनाथ ने यह काव्य कान्हडदे की मृत्यु के लगभग 140 वर्ष बाद रचा अत इसमे कुछ ऐतिहासिक तथ्य सही नही है। गुजरात आक्रमण के समय गुजरात का राजा कर्ण बघेला था तथा अलाउद्दीन ने माधव के उकसाने पर गुजरात पर आक्रमण नही किया था। सोमनाथ मन्दिर की मूर्ति तोडकर सीधी दिल्ली भेजी गई थी अत उसके टुकडे विभिन्न स्थानो पर स्थापित किया जाना सही नही है। शाहजादी फीरोजा का वीरमदे पर मोहित होना तथा बादशाह से अनुमति लेकर वीरमदे के सिर के साथ सती होना भी मानने योग्य नही है। जालोर दुर्ग पर कब्जा मई 1314 मे हुआ था, न कि अप्रेल 1311 मे। सिवाणा दुर्ग पर भी कब्जा सितम्बर 1308 मे हुआ था। सिवाणा का घेरा सात वर्ष चलना व जालोर दुर्ग का घेरा 8 वर्ष चलना सही नही है। ये सब कवि कल्पनायें हैं।

कान्हडदे प्रबन्ध एक ऐतिहासिक काव्य है। उसका भौगोलिक वर्णन काफी सही है। उसमे तत्कालीन समाज का सजीव व विस्तृत वर्णन मिलता है। मेरुतुंग की 'विचार श्रेणी' जिन प्रभ सूरि का 'विविध तीर्थ कल्प' व 'मुहणोत नैणसी की ख्यात' कान्हडदे प्रबन्ध की मुख्य मुख्य ऐतिहासिक बातो का समर्थन करते है। डा दशरथ शर्मा ने भी अपनी रचनाओ मे मुख्यत 'राजस्थान थ्रू द एजेज' मे इस ग्रथ के आधार पर तत्कालीन समाज का वर्णन किया है। प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का यह उच्च श्रेणी का काव्य है।

२ वंश भास्कर—महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण (1815-1868) रचित वशभास्कर राजस्थान का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रथ है जिसने राजस्थानी जनता को काफी प्रभावित किया है। डा आलमशाह खान के शब्दो मे 'युवा मरुवीरो ने उसमे अपने रक्त का रग देखा तो रमणियो ने जौहर की ज्वाला के दर्शन किये तो वृद्धजनो ने मूछो पर हाथ धरे और बालवृन्द केशरिया रग का जादू समझने लगा। राजाओ ने उसके परायण से राजत्व समझा, पण्डित-शास्त्रियो ने नीति और शास्त्र गुना, कलावन्तो ने कलाए जानी, कवि आचार्य साहित्य की परख मे समर्थ बने और राजस्थान के इतिहास-प्रणेताओ ने तो इसे आधार बनाकर चलने मे ही सिद्धि देखी। इस प्रकार वश भास्कर काव्य और इतिहास के रूप मे ही नही अपितु भारतीय ज्ञान परम्पराओ के समृद्ध कोष और राजस्थानी सभ्यता सस्कृति के स्मारक-ग्रथ के रूप मे प्रख्यात है।"

यह ग्रन्थ बून्दी नरेश महारावराजा रामसिंह के आदेश से तयार किया गया। इसकी रचना ई सन् 1840 से 1856 के बीच 16 वर्षो मे हुई। इसमे चौहान वश की हाडा शाखा के लगभग 200 राजाओ, जो बून्दी राज्य से सम्बन्धित थे, का इतिहास है। यू इसमे राजस्थान और भारतवर्ष का इतिहास प्रसगवश लिखा गया है। इसमे सृष्टि की रचना से लेकर ई सन् 1833 तक का इतिहास है। तत्कालीन बूदी नरेश रामसिंह ने जब इस ग्रन्थ मे लिखे अश सुने तो सूर्यमल्ल से कहा कि "आपने मेरे बापदादा, परदादा आदि के जो दोष लिखे हैं उनको पढकर तो

मैंने जैसे तैसे मन्त्र किया परन्तु अपने दोषों के लिए नहीं कर सकता।" सूर्यमल्ल ने उत्तर दिया कि 'जब सबके दोष लिखे गये हैं तो आपके भी लिखे जावेंगे।' इस पर महारावराजा ने कहा कि 'ऐसे लिखने से तो नहीं लिखना अच्छा है।' यह सुनकर स्पष्टवादी व सत्यवादी मिश्रण ने उसी दिन से वंश भास्कर की रचना बन्द कर दी। यों सूर्यमल्ल इस ग्रंथ को दो अयनों, 12 अंशो (विभागो) और 1000 मयूखो में रचना चाहता था लेकिन वह 212 मयूखो मे 6 राशियो की रचना कर, उत्तरायण मे सातवी राशि लिखकर आठवी राशि पूरी नही कर पाया। आठवी राशि के अन्तर्गत रामसिंह का चरित्र वर्णित कर रहा था तब ही इसकी रचना बन्द करनी पड़ी। सूर्यमल्ल के मरणोपरान्त उसके पुत्र मुरारिदान से साढ़े आठ मयूख लिखवाकर महारावराजा ने इस राशि की पूर्ति करवाई तथा उसे महारावर जा ने एक गाव भी देकर पुरस्कृत किया।

वंशभास्कर हिन्दी का अत्यन्त बडा ग्रंथ है। अधूरा होते हुए भी यह लगभग 2500 मुद्रित पृष्ठो का है। संक्षिप्त टीका सहित इसके पृष्ठो की संख्या 4368 तक पहुंची है। कवि ने यह ग्रंथ 4 लेखको को बिठलाकर डिक्टेशन पद्धति से लिखवाया था। इन लेखको को प्रातः काल से लेकर सायकाल तक सूर्यमल्ल के साथ रहना पडता था और जब भी कवि की इच्छा होती वह लिखवाने लग जाता था। सूर्यमल्ल मद्य ज्यादा पीते थे। मद्योन्माद के फलस्वरूप कवि कही कही ऐतिहासिक सचतों की बडी भूलें कर जाते थे।

वंशभास्कर मे बून्दी के हाडा वंश के नरेशो का चरित्र चित्रण वंशानुक्रम में किया गया है। डा. आलमशाह खान के अनुसार 'इसमे किसी एक युग के राजा का चरित्राख्यान करते हुए उसके अन्तर्गत ही प्रसंगवश अन्य गौणपात्रो का समावेश हो गया है। जहा आवश्यक समझा है, वहा अन्यान्य गौण पात्रो का वर्णन विस्तार से कर दिया गया है। तथा माल्की भीम, कछवाह जयसिंह, राठौड जसवंत सिंह, सिसोद के नराधिप राणा आदि।"

यह ग्रंथ विशुद्ध काव्यकृति अथवा ऐतिहासिक काव्य न होकर एक काव्यमय इतिहास है और सूर्यमल्ल इतिहास का कवि। उसका उद्देश्य केवल काव्यरचना ही नहीं रहा बल्कि विविध राजवंशो का इतिहास लिखना भी रहा। उसने इसे इतिहास ज्ञान के विश्वकोष के रूप में प्रस्तुत किया है। इसके लिखने में उसने पुराण, रामायण, महाभारत, भोजप्रबंध, तवारीख फरिश्ता, अकबरनामा, राजस्थानी लेखकों की पुस्तकें आदि का उपयोग किया है। बून्दी के कार्यालयों और बड़वा भाटों की पुस्तकों से बहुत छानबीन कर लिखा है। जहां से जो सामग्री मिली उसने उसको बिना ऐतिहासिक परख किये हुए उसे ज्यादातर ज्यों का त्यों दर्ज कर दिया। डा. गौ. ही. ओझा ने उसके लिये लिखा है, 'कवि ने उस समय तक इतिहास लिखने में विशेष खोज की हो, ऐसा पाया नहीं जाता। कवि का लक्ष्य कविता की ओर ही रहा है। प्राचीन इतिहास की शुद्धि की ओर नहीं।" डा. आलमशाह खान ने इस विषय में लिखा है कि 'जहां तक इतिहास की

शुद्धि' का प्रश्न है, उसने जो ऐतिहासिक सामग्री दी है उससे अधिक की आशा उससे हम कर भी नही सकते क्योंकि उस युग मे इतिहास के साधन आज की तरह प्रचुर नही थे और न ही उस दिशा मे कोई विशेष खोज ही हो पाई थी तथापि उसने उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही अपने मत निर्धारण करने का प्रयास किया था।" डा कानूनगो का कथन है कि 'वंश भास्कर का सबसे अधिक महत्व ऐतिहासिक सामग्री का विशाल सकलन है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' से भी अधिक महत्वपूर्ण है व साहित्यिक दृष्टि से उन्नीसवी शताब्दी के महाभारत की गणना मे रखा जा सकता है।' वास्तव मे वंशभास्कर एक काव्यमय इतिहास है जो पुराणो की परम्परा मे लिखा गया और जिसमे राजवंशो का ही विशद वर्णन किया जाता था। कवि के समय तक इतिहास लेखन की वैज्ञानिक पद्धति, जिसमे कि ऐतिहासिक तथ्यो का विश्लेषण करके सत्य घटनाओ की खोज की जाती है, का आरम्भ नही हुआ था। सब कुछ विचार करते यही लिखना उचित है कि इससे ऐतिहासिक तथ्यो का अपूर्व सकलन है। इन ग्रंथ मे तत्कालीन धार्मिक विश्वासो, सामाजिक रीतिरिवाजो, उत्सवो व त्यौहारो का का भी काफी विवरण मिलता है। कोई भी इतिहास शोधक इस ग्रन्थ की उपेक्षा नही कर सकता है। डॉ आलमशाह खान के शब्दो मे वंश भास्कर को 'ऐतिहासिक वृतात सम्पन्न एक सहिता ग्रन्थ कहे तो कोई अत्युक्ति न होगी।

 

ख्यातें

ख्यात शब्द संस्कृत के शब्द प्रख्यात का अपभ्रंश है। ख्यातों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन तथा उनके कार्यकलापों तथा उनके काल की घटनाओं का विवरण रहता है। विभिन्न राजवंशों, रियासतों व ठिकानों के बारे में इनसे जानकारी मिलती है। राजस्थान की प्रसिद्ध ख्यातें हैं—मुहणोत नैणसी री ख्यात, बांकीदास री ख्यात, दयालदास री ख्यात, जोधपुर राज्य री ख्यात, जैसलमेर री ख्यात, मुंदियाड़ री ख्यात, राठौड़ा री ख्यात, आदि। राजस्थान के कुछ प्रसिद्ध ख्यातकार है—मुहणोत नैणसी, बांकीदास और दयालदास।

१. **मुहणोत नैणसी** (ई सन् 1619—1670)—वह जोधपुर के दीवान जयमल का ज्येष्ठ पुत्र था तथा 27 वर्ष की आयु में राज्य सेवा में नियुक्त हो गया। शीघ्र ही वह देश दीवान बनकर जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह का अतिविश्वसनीय अधिकारी बन गया। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में वह महाराजा का कोपभाजन बन गया और उसे तंग आकर आत्महत्या करनी पड़ी। उसने 1643 से ही इतिहास लेखन विषयक सामग्री इकट्ठी करना आरम्भ कर दिया था तथा स्वांत सुखाय लेखन कार्य किया। वह भारत भर के तत्कालीन राजपूत राजवंशों का क्रमबद्ध इतिहास लिखना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने विभिन्न राजपूत राजवंशों से सम्बन्धित ऐतिहासिक आधार सामग्री का संकलन किया। वह मारवाड़ के सभी परगनों का क्रमबद्ध विस्तृत ब्योरा भी लिखना चाहता था। इसके लिये उसने परगनों के पंचवर्षीय (1658 1662) सर्वेक्षण करवाये। जोधपुर परगने का सर्वेक्षण करते उसने मारवाड़ के शासकों का इतिहास भी तैयार करवाया। उसने प्राचीन स्तम्भ लेख, देवली लेख, ताम्रपत्र, पुरानी वंशावलियों, पट्टे आदि तथा प्राचीन ग्रंथ पंचाग आदि भी इकट्ठे करवाये। इस प्रकार उसने इतिहास लिखने के लिये काफी प्रमाणिक आधार सामग्री इकट्ठी कर ली। अन्य विश्वसनीय सूत्रों से भी इतिहास की जानकारी प्राप्त की और उन्हीं के आधार पर उसने अपने इतिहास ग्रंथ लिखे। उसके द्वारा रचित इतिहास ग्रंथ है—(1) मुहणोत नैणसी री ख्यात, और (2) मारवाड़ रा परगना री विगत।

मुहणोत नैणसी री ख्यात—इसका रचना काल सन् 1643 से 1666 तक का है। इसमें सामग्री का काफी संकलन किया गया था लेकिन 1666 में कैद हो जाने के कारण वह उसे व्यवस्थित नहीं कर सका। किसी एक शासक का विवरण भी एक स्थान पर संग्रहित नहीं कर सका और न उसे ठीक ढंग से क्रमबद्ध ही कर

सका। इस प्रकार यह ख्यात अव्यवस्थित और अपूर्ण है। ख्यात की मूल प्रति भी अभी तक प्राप्त नही हुई है। उसके अनुसार इसमे राजस्थान तथा सामान्य रूप से गुजरात, मालवा आदि के इतिहास सम्बन्धी सामग्री का संग्रह है। राठौड, गुहिलोत, चौहान, भाटी आदि राजवशो व उनकी खापो का विस्तृत वर्णन है। चौहानो और भाटियो का तो काफी विस्तार से विवरण दिया गया है। चौदहवी शताब्दी के बाद के राजपूतो के राजनैतिक इतिहास के लिये यह ख्यात फारसी ग्रथो से भी अधिक महत्व की है। विभिन्न रियासतो की भूगोल की भी जानकारी दी गई है। इस प्रकार यह ख्यात सम्बधित रियासत के इतिहास के लिये महत्वपूर्ण पूरक आधार ग्रन्थ है। इस ख्यात की सत्यता तथा यथार्थता की सभी लेखको ने प्रशसा की है। एक इतिहासकार के रूप मे भारतीय साहित्य को नैणसी की देन सर्वथा अनुपम है।

मारवाड रा परगना री विगत मे नैणसी ने जोधपुर, मेडता, जैतारण, फलोधी, सीवाणा, सोजत तथा पोकरण के ऐतिहासिक विवरण लिखे। पोकरण के 86 गावो मे से 61 गावो का ही विवरण लिख सका और तब (1666) ही वह पदच्युत होकर कैद हो गया। अत 25 गावो के विवरण अपूर्ण रह गये। विगत मे परगनो के गावो की सूची, जातियो की सूची और प्रत्येक गाव का वि स 1715 से 1719 तक का पच वर्षीय सर्वेक्षण विवरण दिया गया है। विभिन्न परगनो के ऐतिहासिक विवरणो मे परगना जोधपुर का विवरण बहुत ही विस्तृत रूप से दिया है। जोधपुर के परगने के विवरण मे राठौड राजघराने का प्रमाणिक इतिहास विस्तार से दिया है। परगनो के कस्बो की आबादी, वहां के जन जीवन, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक व्यवस्था आदि पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। तत्कालीन राजस्व व्यवस्था और साधनो पर भी काफी लिखा गया है। प्रसगवश राजपूतो की शाखाओ—चौहान, साखला, कच्छवाहा, देवडा आदि का भी यथावर्णन दिया गया है। इस प्रकार 'मारवाड रे परगना री विगत' मध्यकालीन मारवाड के राजनैतिक इतिहास के अलावा धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक इतिहास के लिये बडा महत्वपूर्ण प्राथमिक आधार ग्रथ है। मुशी देवीप्रसाद ने नैणसी को राजस्थान का अबुलफजल बतलाया है। कालीकारजन कानूनगो ने उसे अबुल फजल से भी अधिक योग्य बतलाया है। नैणसी अबुलफजल की भाति राज्य आश्रित इतिहासकार नही था। उसका इतिहास सयोजन अबुलफजल की अपेक्षा अधिक वैज्ञानिक और प्रभावशाली था। उसका लेखन अबुलफजल से ज्यादा स्पष्ट, निष्पक्ष तथा सत्यता के निकट था। उसने सतुलित इतिहास तटस्थ होकर लिखा लेकिन अबुल फजल ऐसा नही कर सका। नैणसी का योगदान अपूर्व है तथा इसी कारण बीसवी शताब्दी के इतिहासकारो ने अपने इतिहास लेखन मे नैणसी के ग्रन्थो से बराबर सदर्भ लिये है। इस प्रकार राजस्थान इतिहास लेखन मे नैणसी के ग्रन्थ अमूल्य आधार ग्रन्थ है।

बांकीदास आशिया (ई सन् 1781—1383)—वह जोधपुर के

महाराजा मानसिंह के दरबार मे महाराजा के बहुत निकट के निजि व्यक्तियो मे से था। उसने काव्य सजन के अलावा इतिहास लेखन भी किया। उसकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना उसकी ख्यात है जो वास्तव मे ऐतिहासिक टिप्पिणी संग्रह कही जानी चाहिये। इसमे लगभग 3007 फुटकर बाते हैं जो एक पंक्ति से लेकर 6 पंक्ति तक हैं। ये सब नोट्स के रूप मे याददास्त के लिए लिखी गई। उसका कोई क्रम नही है। कई दुबारा भी लिखी गई है। स्पष्ट है कि जब भी किसी ने कोई बात बतलाई या उन्हे याद आई उसे लिख दिया। इस संग्रह की कई बातें बडी उपयोगी व महत्वपूर्ण हैं। कई ऐसी बाते है जो अन्यत्र नही मिलती है। कई राजाओं के जन्म और मृत्यु की तिथिया भी दी गई हैं। कई ऐतिहासिक पुरुषो के ननिहाल, सतति, रानिया आदि की भी जानकारी दी गई है। कई बाते यहा के लोगो के सास्कृतिक जीवन को भी उजागर करती है। कई बातें भोगोलिक विषयों पर भी है।

इन बातो से राजस्थान के इतिहास के अलावा मरहठो, सिक्खो, मुसलमानो, अंग्रेजो आदि के विषय मे कई ऐतिहासिक सूचनाये प्राप्त होती है। मारवाड के अलावा मेवाड, डूंगरपुर, कच्छ गुजरात मालवा आदि राज्यो के इतिहास विषयक बाते मिलती है। राजदरबारी होने हुए भी बाकीदास एक निर्भिक तथा स्पष्टवादी लेखक था। उसके अंग्रेजो के विरुद्ध होने तथा उसकी देशभक्ति होने का भी उसकी कृतियो से पता चलता है। उसकी ख्यात राजस्थान के इतिहास को अमूल्य देन है।

दयालदास सिंढायच (ई सन् 1798-1891) – वह बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह का राजदरबारी था। बीकानेर नरेश को इस बात का बडा दुख था कि कर्नल टॉड ने बीकानेर राजवंश को राजस्थान के राज्यो मे द्वितीय श्रेणी का माना था। वह चाहते थे कि टॉड के इस कथन को झुठलाया जावे। इस कारण महाराजा ने दयालदास को बीकानेर राज्य का इतिहास लिखने का आदेश दिया। दयालदास ने तीन ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे—बीकानेर रे राठौडा री ख्यात, देश दर्पण और आयख्यान कल्पद्रुम। इनके अतिरिक्त पवार वंश दर्पण, बीकानेर रे पट्टा रे गावो री विगत, जस रत्नाकर, सुजस बावनी आदि भी लिखी।

दयालदास की रचनाओ मे सर्वाधिक महत्वपूण 'बीकानेर रै राठौडा री ख्यात है जो 'दयालदास री ख्यात' के नाम से ज्यादा प्रसिद्ध है। इसी के आधार पर सर्वप्रथम कर्नल पी डब्ल्यू पॉवलेट ने 'गजेटियर ऑफ द बीकानेर स्टेट' सन् 1874 मे लिखा था तथा बाद मे प गौरीशंकर ओझा ने भी अपने ग्रंथ 'बीकानेर राज्य का इतिहास' मे इसका भरपूर उपयोग किया।

दयालदास ने अपनी ख्यात मे यह बतलाने का बराबर प्रयत्न किया कि मुगल राजनीति मे बीकानेर शासको की भूमिका को अधिक से अधिक प्रभावशाली बतलाया जावे ताकि उस राजवंश के बडा महत्वपूर्ण समझा जावे। इसकी ख्यात मे बीकानेर की राजकुमारियो का मुगल बादशाह व शाहजादो से विवाह होने का

कोई उल्लेख नही है। उसने यह भी बतलाने का प्रयत्न किया कि यद्यपि बीकानेर के शासक मुगल मनसबदार रहे लेकिन उन्होने पेशकशी की रकम नही दी। इस प्रकार वह अंग्रेजो को यह दिखलाना चाहता था कि बीकानेर राज्य ने कभी किसी को खिराज नही दिया। उसने घटनाओ का तिथिक्रम भी सही नही दिया है। इसका कारण उसके द्वारा महत्वपूर्ण अभिलेखो की उपेक्षा करना हो सकता है। कही कही सुनी सुनाई बाते ही लिख दी जो सही नहीं थीं। उसने मुगल बादशाहों द्वारा बीकानेर के शासको को भेजे गये फारसी भाषा मे लिखे फरमानो का राजस्थानी अनुवाद भी दिया है।

दयालदास एक राज्याश्रित इतिहासकार था और उसने बीकानेर नरेशो की उच्चता बतलाने मे ही अपनी लेखनी का प्रयोग किया फिर भी उसके ग्रंथ राजस्थान के इतिहास लेखन के लिये स्रोत सामग्री की दृष्टि से बडे उपयोगी है। डा घनश्यामलाल देवडा के अनुसार, "यह तो स्वीकार करना ही होगा कि कम से कम दयालदास ने बीकानेर राज्य का एक क्रमबद्ध वृहत इतिहास तैयार कर दिया जिसका अभाव कई शताब्दियो तक खलता।"



परिशिष्ट — ३

राजस्थान के एकीकरण पश्चात प्रकाशित महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थ

दशरथ शर्मा—1 राजस्थान थ्रू द एजेज (प्रथम भाग)
2 चौहान सम्राट पृथ्वीराज तृतीय एवं उनका युग
के सी जैन एंसियेण्ट सिटिज इन राजस्थान
अदरिस बनर्जी—आर्कोलोजिकल हिस्ट्री आफ साऊथ ईस्टर्न राजस्थान
डी सी शुक्ला—अर्ली हिस्टरी ऑफ राजस्थान
दशरथ शर्मा—1 अर्ली चौहान डायनेस्टीज 2 पवार वंश दर्पण
अनिता सुदन—ए स्टडी ऑफ चाहमान इन्स्क्रिपशन्स
जी सी राय चौधरी—हिस्ट्री ऑफ मेवाड अप टू 1303
एच डी साकलिया—आर्कोलॉजी इन राजस्थान
मार्क ऑरेल स्टेइन—एन आर्कोलोजिकल टूर एलाग द घग्घर—हाकडा रिवर
एम एस आहलूवालिया—मुस्लिम एक्सपान्सन इन राजस्थान
रामवल्लभ सोमानी —1 पृथ्वीराज एण्ड हिज टाइम्स
2 महाराणा कुम्भा
3 जैन इन्स्क्रिपशन्स ऑफ राजस्थान
4 हिस्ट्री ऑफ मेवाड
5 लेटर मेवाड

जी डी शर्मा—राजपूत पोलिटी
के एस गुप्ता—1 मेवाड एण्ड द मराठा रिलेशन्स
2 सलेकशन्स फ्रॉम वनेडा आर्काइव्ज
श्याम प्रसाद व्यास—राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन
डी सी गांगूली—हिस्ट्री आफ द परमारस
आर बी सिंह—हिस्ट्री ऑफ द चाहमान्स
वी एन मिश्रा—पेलियोलिथिक कलचर्स ऑफ वेस्टन राजस्थान
एस के गुप्ता—लेण्ड रेवेन्यू सिस्टम ऑफ ईस्टन राजस्थान
यू एन डे—मेवाड अण्डर महाराणा कुम्भा
चन्द्र भूषण त्रिपाठी—लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ मिर्जा राजा जयसिंह
घनश्याम देवडा—1 राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था
2 ब्यूरोक्रेसी इन राजस्थान
3 राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास

जी आर परिहार—मराठा मारवाड सम्बन्ध
आर एन प्रसाद—राजा मानसिंह आॅफ आमेर
वी एस भटनागर—सवाई जयसिंह
रतनलाल मिश्र—1 राजस्थान के दुर्ग
2 शेखावटी का इतिहास
मागीलाल मयक 1 जोधपुर राज्य का इतिहास
2 जैसलमेर का इतिहास
रामप्रसाद व्यास—1 महाराणा राजसिंह
2 रोल आॅफ नाॅबिलिटी इन मारवाड
3 राजस्थान का वृहत इतिहास (आधुनिक)
गोपाल व्यास – मेवाड का सामाजिक एव आर्थिक जीवन
गोपीनाथ शर्मा—1 मेवाड मुगल सम्बन्ध
2 राजपूत स्टडीज
3 राजस्थान का इतिहास
श्री राम शर्मा – महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाईम्स
जदुनाथ सरकार—ए हिस्ट्री आॅफ जयपुर
मीरा मिश्र—महाराजा अजीतसिंह एव उनका युग
वी एस भागव—1 मारवाड से मुगलो का सम्बन्ध
वेनी गुप्ता—1 मराठा पेनीट्रेशन इण्टू राजस्थान
2 रिलेशन्स विद द स्टेटस आॅफ कोटा एण्ड बून्दी
एच सी टिक्कीवाल—जयपुर एण्ड द लेटर मुगल्स
आर के सक्सेना मराठा रिलेशन्स विद द मेजर स्टेटस आॅफ राजस्थान
पेमाराम—1 मध्यकालीन राजस्थान मे धार्मिक आदोलन
2 अग्रेरियन मुवमेण्ट इन राजस्थान
पी सी चान्दावत—महाराजा सूरजमल और उनका युग
के आर कानूनगो—1 हिस्ट्री आॅफ जाटस
2 स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री
मनोहरसिह राणावत —भरतपुर महाराजा जवाहरसिंह जाट
जे के ओझा - मेवाड का इतिहास
प्रकाश व्यास 1 मेवाड राज्य का इतिहास
2 राजस्थान मे स्वाधीनता सग्राम
सुखवीरसिह गहलोत—1 राजस्थान के इतिहास का तिथिक्रम
2 राजस्थान मे जागीरदारी उन्मूलन
3 कास्टस एण्ट ट्राइब्स इन राजस्थान
4 रूरल लाइफ इन राजस्थान
5 राजस्थान के प्रमुख अभिलेख

जी सी शर्मा—एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ द राजपूतस
शिवदत्त दान बारहट—महाराजा विजयसिंह एव उनका युग
राजकुमारी कौल—राजस्थान के राजघरानो की हिन्दी सेवा
निमल चन्द्र राय—महाराजा जसवतसिह का जीवन व समय
हुक्मसिंह भाटी—1 राजस्थान मे मेडतिया राठौड
2 राजस्थान के ख्यातकार व उनके ग्रंथो का तिथिक्रम
एस सी मिश्रा—सिन्धिया होल्कर रायवलेरी इन राजस्थान
एण्ड्री द टोप्पफील्ड—पेन्टिग्स फ्राम राजस्थान
प्र पाल—द क्लासिकल ट्रेडिशन इन राजपूत पेटिंग्स
रामनाथ—आर्किटेकचर ऑफ चित्तौडगढ
रावट एकेल्टन—राजस्थानी टेम्पल हैंगिग्स
एम सी बीच—राजपूत पेन्टीगस एट बून्दी एण्ड कोटा
उपेन्द्रनाथ शर्मा—जाटो का नवीन इतिहास
जी एन शर्मा—1 सोशल लाइफ इन मेडिवियल राजस्थान
2 राजस्थान का सास्कृतिक इतिहास
राम पाण्डे—1 भरतपुर ग्रप टू 1826
2 रेल्वेज इन राजपूताना
3 अग्रेरियन मुवमेण्ट इन राजस्थान
4 पिपल्स मुवमेण्ट इन राजस्थान
महावीरसिंह गहलोत - 1 जगदेव परमार री वात
2 वीरमदे सोगनरा री वात
करणीसिंह—बीकानेर के राजघराने का केन्द्रीय सत्ता से सबध
गोविन्द अग्रवाल—1 चूरु मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास
2 स्वामी गोपालदास
कालूराम शर्मा—उन्नीसवी सदी के राजस्थान का सामाजिक एव आर्थिक जीवन
राजेन्द्र जोशी—उन्नीसवी शताब्दी का अजमेर
वसन्त जोशी—उन्नीसवी सदी का राजस्थान
निर्मला गुप्ता—राजस्थान का आधुनिकीकरण
नीलम गहलोत—आधुनिक राजस्थान का आर्थिक इतिहास
ए सी बनर्जी—1 राजपूत स्टेटस एण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी
2 राजपूत स्टडीज
एम एल शर्मा—हिस्ट्री ऑफ जयपुर स्टेट
पद्मजा शर्मा—जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल
राधेमोहन माथुर—राजपूत स्टेटस एण्ड ईस्ट इण्डिया कम्पनी
वी के वशिष्ठ—राजपूताना एजेन्सी—1832-1858
हर्मन गोण्ट्स—आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर

प्रमोदचन्द्र—बून्दी पेण्टीग्ज
एरिक डिक्सन—किशनगढ पेण्टीग्ज
धूलसिंह—ए स्टडी ऑफ लैण्ड रिफार्मस इन राजस्थान
एम एस जैन—आधुनिक राजस्थान का इतिहास
कृष्ण चैतन्य—राजस्थानी ट्रेडिशन्स
हीरालाल माहेश्वरी—हिस्ट्री ऑफ राजस्थानी लिटरेचर
डी डी गोड—कस्टीटयुशनल डेवलपमेण्ट ऑफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेटस
बी एल पानगडिया—1 राजस्थान का इतिहास
2 राजस्थान मे स्वतन्त्रता सग्राम
जगदीशसिंह गहलोत—1 राजस्थान के राजवशो का इतिहास
2 राजस्थान का सामाजिक जीवन
3 स्वतन्त्रता-पूर्व राजस्थान
4 दुर्गादास राठौड
5 मेवाड का केन्द्रीय शक्तियो से सम्बन्ध
आर पी शास्त्री—झाला झालिमसिंह
जबरसिंह—द ईस्ट इण्डिया कम्पनी एण्ड मारवाड
ओ पी कच्छवाहा—हिस्ट्री ऑफ फेमीनस इन राजस्थान
आर ए अग्रवाल—1 हिस्ट्री, आर्ट एण्ड आर्टिटेक्चर ऑफ जैसलमेर
2 मारवाड मुरल्स
पृथ्वीसिंह मेहता—हमारा राजस्थान
असीम कुमार रॉय - हिस्ट्री ऑफ जयपुर सिटी
जहूरखा मेहर—1 राजस्थान मे आजादी री आन्दोलन
2 टाल्वा निवन्ध
3 धर मजला धर कोसा
4 राजस्थानी सस्कृति रा चितराम
5 राजस्थान मे स्वतन्त्रता सघर्ष
पूर्णिमा नवीनलाल—1 राजस्थान अनुशीलन
2 राजस्थान मे स्वतन्त्रता आन्दोलन
3 युगयुगीन राजस्थान
वाबुलाल गुप्ता—ट्रेड एण्ड कॉमर्स इन राजस्थान
सतोष यादव—उन्नीसवी और बीसवी शताब्दी मे स्त्रियो की स्थिति
जी सी वर्मा—हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन राजस्थान
शकरसहाय सक्सेना तथा पद्मजा शर्मा—बिजोलिया किसान आन्दोलन का इतिहास
रामनारायण चोधरी—बीसवी सदी का राजस्थान
एस एम माथुर—स्ट्रगल फॉर रेस्पोन्सीबल गवर्नमेन्ट इन मारवाड
पी आर शाह –राज मारवाड ड्यूरिंग ब्रिटिश पेरामाउण्टेसी

निर्मला उपाध्याय द एडमिनिसस्ट्रेशन ऑफ जोधपुर स्टेट
हीरालाल शास्त्री —प्रत्यक्ष जीवन शास्त्र
शंकरसहाय सक्सेना—जो देश के लिए जिए
गंगाप्रसाद कामथ धौलपुर का राजनतिक इतिहास
सुमनेश जोशी—राजस्थान मे स्वतत्रता सग्राम के सेनानी
के वी एल गुप्ता—द इवोलयुशन ऑफ द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ द फामर भरतपुर स्टेट
लक्ष्मणसिंह राठौड—1 पोलिटिकल एण्ड कस्टीटयुशन डवलपमेण्ट इन राजस्थान
2 पॉइन्स ऑन द थार
3 वीर दुर्गादास राठौड
4 जोहर ऑफ पद्मनी
5 द ग्लोरी ऑफ रणथम्भोर
वाई एस मेहता--एडमिनिसट्रेटिव रिफामस इन द स्टेटस ऑफ राजपूताना
देवीलाल पालीवाल—मेवाड एण्ड द ब्रिटिश
एच ई बानवर्ट--लाइफ ऑफ सर प्रतापसिंह
रतनशाह—सास्कृतिक राजस्थान
जगमोहनसिंह परिहार—सास्कृतिक राजस्थान
कमला मालू--हिस्ट्री ऑफ फेमीनस इन राजपूताना
एच एस सेक्सेना—चेंजिंग अग्रेरियन सोशल स्ट्रक्चर इन रुरल राजस्थान
मानती सक्सेना—इम्पेक्ट ऑफ द ब्रिटिश सोवरनटी आन इकोनोमिक कडिसन्स ऑफ राजस्थान
नाथूराम खडगावत—राजस्थानस रोल इन द स्ट्रगल ऑफ 1857
पी सी जन - ट्राइबल अग्रेरियन मुवमेण्ट
देवीदत्त शर्मा—मेवाड का धार्मिक, साहित्यिक एव सास्कृतिक इतिहास
एल पी माथुर—रेजीस्टेस मुवमेण्ट ऑफ ट्राइबल्स
नीलम कौशिक—राजस्थान व चुण्डावतो का इतिहास
बद्रीप्रसाद साकरिया—मुहणोत नणसी री ख्यात (चार भाग)
जयसिंह नीरज व बी एल शर्मा—राजस्थान की सास्कृतिक परम्परा
आर सी अग्रवाल—आर्कोलोजिकल रिमेन्स इन वेस्टन इण्डिया
एच सी बत्रा—रिलेसन्स ऑफ जयपुर स्टेट विद ईस्ट इण्डिया कम्पनी
राजीव नयन प्रसाद—राजा मानसिंह आफ आमेर
पी एस चौधरी—राजस्थान बिटवीन द ट्र वल्ड वारस
श्यामसिंह रत्नावत — राजपूत नोबिलिटी
हरफूलसिंह आर्य — शेखावटी के ठिकानो का इतिहास एव योगदान
राघवेन्द्रसिंह मनोहर – राजस्थान के खगारोत कछवाहो का इतिहास
देवीदत्त शर्मा — मेवाड का धार्मिक, साहित्यिक एव सास्कृतिक इतिहास
विक्रमसिंह राठौड—महाराजा सर प्रतापसिंह

राजस्थान इतिहास लेखन के स्रोत ग्रन्थ

डा रघुवीरसिंह—राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार और उनका कृतित्व

डा हुकमसिंह भाटी—राजस्थान के इतिहासकार

डा कृष्णस्वरुप गुप्ता व डा गोपालवल्लभ व्यास—राजस्थान के इतिहास के स्रोत

डा गोपीनाथ शर्मा—1 राजस्थान के इतिहास के स्रोत
2 बिबलियोग्राफी ऑफ मेडीवियल राजस्थान
3 कविराजा श्यामलदास और उनका वीर विनोद

डा मनोहरसिंह राणावत – इतिहासकार मुहणोत नैणसी तथा उसके इतिहास ग्रथ

डा घनश्याम देवडा—ख्यातकार दयालदास सिंढायच

डा लु जी तैस्सितोरी—ए डिस्क्रीपटिव केटलॉग ऑफ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल क्रोनिकल्स

डा राम पाण्डे—सोर्सेज ऑफ कलचरल हिस्ट्री ऑफ राजस्थान

शौकतअली खा—हिस्ट्री एण्ड हिस्टोरियनस ऑफ राजस्थान

नारायणसिंह भाटी—राजस्थान के ऐतिहासिक ग्रथो का सर्वेक्षण (तीन भाग)

पी सरण—डेसक्रिप्टव केटलाग ऑफ नानपर्सियन सोर्सेज ऑफ मेडिवियल इण्डियन हिस्ट्री (कवरिंग राजस्थान एण्ड एडजेसेण्ट रिजन्स)

जहूरखा मेहर — इतिहासकार जगदीशसिंह गहलोत व्यक्तित्व एव कृतित्व

हेबर रेजीनाल्ड—नेरेटिव ऑफ ए जर्नी टु द अपर प्रोविन्सज ऑफ इण्डियन फ्रॉम केलकटा टु बाम्बे

जेम्स टॉड ट्रावल्स इन वेस्टन इण्डिया

परिशिष्ट — 8

राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार

कर्नल जेम्स टॉड—(ई सन् 1782-1835) -इग्लैण्ड निवासी जेम्स टॉड भारत मे सन् 1800 मे पैदल सेना के लेफ्टिनेन्ट नियुक्त होकर आये। 1817 मे वह मेवाड, कोटा, बून्दी, मारवाड, जैसलमेर, सिरोही व जयपुर रियासतो मे गवनर जनरल का राजनैतिक प्रतिनिधि बनकर उदयपुर मे नियुक्त हुए। लगभग 5 वर्षो तक यहा रहकर, वह अपने अधिकारियो द्वारा उनपर रियासतो का अत्याधिक पक्ष लेने का सन्देह करने पर, त्याग पत्र देकर वापस अपने देश चले गये। उन्होने यहा की सभी रियासतो की यात्रा की तथा यहा के निवासियो के सम्पर्क से उन पर यहा की सस्कृति का काफी प्रभाव पडा तथा वह यहा के निवासियो के अनन्य हितैषी बन गये। उन्होने समय समय पर अग्रेजो की स्वार्थी और आतकात्मक शासन नीति का विरोध भी किया था। अपनी पुस्तक 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' मे स्पष्ट लिखा था—'ब्रिटेन के सरक्षण मे जो जातिया आ गई है उनको सजा देते समय दया का व्यवहार बहुत कम किया जाता है और न्याय का दण्ड अवश्य ही किसी न किसी का मार गिराता ह जिससे हमारा शासन तलवार का शासन कहा जाता है। यही नही हमारी सरकार द्वारा राज्य तथा धर्म सम्बन्धी जो भी कानून बनाये जाते हैं वे इनकी (प्रजा की) दशा सुधारने के दृष्टि से नही बल्कि हमारे कोष को भरने के लिये बनाये जाते हैं। अपनी भारतीय प्रजा की गाढी कमाई से लाखो स्वण मुद्राए प्राप्त करके उसका नाममात्र भाग भी उनकी भलाई के लिए खच नही किया जाता है।' कम्पनी की सेवा से निवृत होकर टॉड इग्लैण्ड लौट गये। वहा उन्होने भारत रहते जो इतिहास विषयक सामग्री इकट्ठी की थी उसके आधार पर अनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान तथा 'ट्रेवल्स इन वेस्टन इण्डिया' नामक ग्रथ लिखकर प्रकाशित कराये। अपने द्वारा भारत से लाई गई मूर्तियो शिला लेखो, हस्तलिखित ग्रथो, प्राचीन सिक्को, दस्तावेजो आदि के 40 सन्दूको मे भरे सग्रह को लन्दन की रायल एशियाटिक सोसायटी को भेंट कर दिये।

कनल टॉड का ऐतिहासिक दृष्टिकोण बडा व्यापक था। वह राजपूतो के इतिहास, शौर्य और बलिदान के कायकलापो से काफी प्रभावित थे। यो उन्होने राजपूतो के अत्यधिक अफीम प्रेम की निन्दा भी की है। यह कहा नही जा सकता कि क्यो उसने राजपूतो के शौय और पराक्रम की ज्यादा ही प्रशसा की जब कि वह यह भी जानते थे कि राजाओ के आश्रित कवियो ने अपने आश्रयदाताओ की थोथी प्रशसा ज्यादा ही की है। राजाओ मे प्रचलित बहुविवाह, नशाखोरी, पारस्परिक मनोमालिन्य आदि दुर्व्यसनो के कारण उनकी सामाजिक, व आर्थिक

स्थिति को बिगडते देखकर भी वह उनके विरूद्ध कुछ नही लिख सके। राजपूतो को मुसलमानो के विरुद्ध बराबर युद्ध करते रहना बतलाकर और उन्हे धम युद्ध की सज्ञा देखकर उन्होने हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक विद्वेष का प्रचार किया। इसी कारण हमारा इतिहास राजपूत युग, मुस्लिम युग, मराठा युग आदि के नाम से विभाजित हो गया। टॉड के अनुसार मध्यकालीन भारत मे सभी मुस्लिम शासक थे और सभी गैर मुस्लिम शासित थे जब कि तब भी अधिकाश मुसलमान गरीब तथा तिरस्कृत थे। टॉड ने भारत मे हिन्दू और मुस्लिम सस्कृतियो को भिन्न भिन्न माना। सम्भव है यह सब कुछ इस कारण किया गया हो कि हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच भेदभाव लाया जावे ताकि ये लोग एक होकर नही रह सके जैसा कि पश्चातवर्ती अग्रेजी साम्राज्यवादी नीति रही और जिसका परिणाम आज तक हम भोगते जा रहे हैं।

कर्नल टॉड के 'अनाल्स एण्ड एंटीक्वीटीज ऑफ राजस्थान' ग्रन्थ के प्रकाशन को युरोप के प्राच्यविद्या विद्वानो ने बहुत सराहा। डा रघुवीरसिंह के शब्दो मे 'अग्रेजी भाषा मे अपने विषय का सवप्रथम ग्रन्थ होने तथा साथ ही अपनी ओजपूण भाषा तथा रोचक शैली के कारण यह ग्रथ अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। इस ग्रथ मे उल्लेखित तथा प्रतिपादित तथ्यो के विषय मे विभिन्न विद्वानो, आलोचको आदि ने कई प्रकार की टिप्पणिया लिखी और लिखते जा रहे है तथा अपने ग्रथो मे उस सामग्री का उपयोग करते आ रहे है।' यही अग्रेजी भाषा मे एक राजस्थान का इतिहास है जिसके कई सस्करण अब तक प्रकाशित होते है। यही इस ग्रथ की विशिष्टता व लोक प्रियता सिद्ध करने को पर्याप्त है।

यह ग्रथ न केवल राजनतिक बल्कि सामाजिक आर्थिक व सास्कृतिक पहलुओ को भी उजागर करता है। राजपूत समाज मे स्त्रियो की स्थिति, बाल विवाह, विधवाओ, जौहर, सतियो आदि के विषय मे भी काफी लिखा है। राजस्थान मे प्रचलित धम, देवो देवताओ, धार्मिक त्योहारो, उत्सवो अन्ध विश्वासो, धार्मिक मान्यताओ, ब्राह्मणो व जैनियो का समाज और प्रशासन पर प्रभाव के विषय मे बहुत ही महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है। उनका ग्रथ भारत के धम, प्रजाति शास्त्र, एव समाज शास्त्र के विकास के अध्ययन के लिए एक महत्वपूण ग्रन्थ है। उनके ग्रथ को पढकर विभिन्न भारतीय भाषाओ के साहित्यकारो और इतिहासकारो ने अनेक देशभक्तिपूर्ण नाटक, उपन्यास, कहानिये काव्य व ग्रन्थ लिखे। इस ग्रथ मे वर्णित वीरो व वीरागनाओ की कीर्ति दूरस्थ प्रदेशो मे फैल गई और उन्हे स्वतन्त्रता की साधना के लिए प्रेरित करने लगी। बगला साहित्य की सभी साहित्यिक विधाओ मे टॉड के राजस्थान की वीर गाथाओ पर अनेको रचनाऐ मिलती है। इस प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता सघष के लिए यह ग्रन्थ एक अमूल्य देन रहा है। राजस्थान की रियासतो के एकीकरण के विषय मे यही कहा जाता रहा है कि 'टॉड द्वारा प्रशसित स्वाधीनता सेनानी महाराणा प्रताप का एक स्वप्न

राजस्थान का एक सुसगठित प्रात बनने पर ही साकार होगा ।'

इस प्रकार कर्नल जेम्स टॉड राजस्थान का इतिहास लिखने वाला तथा राजस्थान के इतिहास की आधार शिला रखने वाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण इतिहासज्ञ थे। उन्होने ससार के विद्वतजनो को बतलाया कि राजस्थान मे इतिहास लेखन की ऐसी प्रमाणिक और अत्यधिक मात्रा मे सामग्री है जितनी उन उन्नतशील होने का दम भरने वाले देशो मे भी नही है। उन्होने स्पष्ट लिखा था कि कुछ लोग आख मीचकर यह मान बठे है कि 'हिन्दुओ के पास ऐतिहासिक ग्रथो जैसी कोई वस्तु नही है लेकिन वे भुलावे मे है।'

ट्रेवल्स इन वेस्टन इडिया (पश्चिमी भारत की यात्रा) कर्नल टॉड की दूसरी महत्वपूण कृति है जिसमे उन्होने उदयपुर से माण्डवी तक की पश्चिमी भारत की यात्रा का विवरण दिया है। इस यात्रा से सम्बधित स्थानो, तीर्थों, मन्दिरो, गढो, शासको आदि के विषय मे जानकारी दी गई है। आबू पहाड की ससार मे ख्याति फैलने वाली यही प्रथम पुस्तक है। चन्द्रावती के भग्नावशेषो का सचित्र विवरण इसी मे है। कई शिलालेखो व अन्य महत्वपूण सामग्री की भी जानकारी दी गई है।

इस प्रकार कर्नल टॉड के इतिहास ग्रन्थ राजस्थान के इतिहास पर प्रथम महत्वपूण ग्रथ है जिनके आधार पर राजस्थान इतिहास लेखन आरम्भ हुआ और उनके आधार पर आज तक बराबर लेखन काय हो रहा है। यह उनकी महत्वपूण व अमूल्य देन है।

२ श्यामलदास दधवाडिया (ई सन् 1836-1893)—ग्राट डफ, कनिघम, मार्क्स विलस्स मॉलकाम, जेम्स टाड आदि अग्रेज इतिहासकारो द्वारा विभिन्न इतिहास ग्र थ लिखे जाते देखकर राजस्थान के नरेशो ने भी अपने अपने राज्य के इतिहास लिखाने का विचार किया। इस कारण मेवाड के महाराणा ने 1871 मे मेवाड का एक वृद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखाने का काय श्यामलदास को सोपा। इसके लिये एक लाख रुपये का प्रावधान रखा तथा श्यामलदास की सहायता के लिए अनेक सुयोग्य विद्वानो को नियुक्त किया जिनमे स एक गौरीशकर हीराचन्द ओझा भी थे। काफी परिश्रम व लगन के साथ विविध प्रकार के स्रोतो से ऐतिहासिक सामग्री का सकलन किया गया और 1884 तक (महाराणा सज्जनसिह के स्वगवास तक) का मेवाड का इतिहास 'वीर विनोद' के शीषक से लिखा गया। इस इतिहास का मुद्रण सन् 1886 मे आरम्भ हो गया था लेकिन ग्रथ का उपसहार लिखा ही नही जा सका क्योकि बाद के महाराणा फतह सिह किसी कारण वश श्यामलदास से रुष्ट हो गये और मुद्रित ग्रथ को राजमहल मे बन्द करवा कर सील करवा दिया। इस कारण वीरविनोद की प्रतिया ई सन् 1945 तक एकाध इतिहासकार को ही प्राप्त हो सकी। गौरीशकर हीराचन्द ओझा, महाराज कुमार डा रघुबीरसिह, श्री जगदीशसिह गहलोत आदि इतिहासकार ही

सन् 1945 से पूर्व इसका अध्ययन कर सके। अब तो इसके कई सस्करण प्रकाशित हो गये है। मूल ग्रन्थ 5 बडी जिल्दो के 2685 पृष्ठो मे था।

वीर विनोद मुख्यत मेवाड का इतिहास है लेकिन इसमे जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ, रीवाँ, बूदी आदि राजपूताने की लगभग सभी रियासतो का भी सक्षिप्त वर्णन है। इसमे अनेक पट्टो, शिलालेखो, ताम्रपत्रो, खरीतो आदि की नक्ले दी गई है। पूर्ण ग्रन्थ नागरी लिपि मे है लेकिन हिन्दी के साथ फारसी भाषा का ज्यादा ही प्रयोग हुआ है।

श्यामलदास ने वीर विनोद तैयार करने मे फारसी इतिहासकारो ख्यातो के लेखको और कर्नल टॉड की घटनाओ का वर्णन लिखने की पद्धति का अनुसार किया था। मुहणोत नैणसी की भाति विभिन्न राज्यो का सक्षिप्त इतिहास भी मेवाड के इतिहास के साथ दिया। बाकीदास की भाति किसी भी समय के इतिहास से सम्बन्धित व्यक्तियो और रीतिरिवाजो का भी वर्णन किया। अग्रेजी गजेटियरो के समान मेवाड की सामाजिक दशा को भी बतलाया है। ग्रथ को तैयार करते समय मेवाड राजघराने के पुरालेखागार का भरपूर उपयोग किया। उन्होंने टॉड के इतिहास की अनेको भ्रान्तियो व भूलो को सुधारा। अपने सरक्षको के शासन काल का इतिहास लिखने मे यथासभव पक्षपात नही किया। यो उन्होने चारणो की ज्यादा ही प्रशंसा और ब्राह्मणो की निन्दा की है। स्वय जागीरदार होने के कारण जागीरदारो के पक्ष मे भी काफी लिखा। शायद इन्ही कारणो से महाराणा ने इस ग्रन्थ का प्रसार रोक दिया।

उन्होने अपने ग्रन्थ मे ख्यातो व ख्यातकारो का कम उल्लेख किया लेकिन अग्रेज लेखको-कनिघम, ऐडीसन हण्टर, मिल आदि के मतो की विवेचना करते हुए उनका उल्लेख अवश्य किया। सब पहलुओ पर गौर कर हम कह सकते है कि श्यामलदास ने सभी साधनो से इतिहास सामग्री प्राप्त करने का यथासभव प्रयत्न किया। उन्होने समीक्षात्मक विवेचन कम किया तथा ग्रथ को ज्यादा ही विवरणात्मक बनाया लेकिन फिर भी उनका प्रयास अत्यन्त सराहनीय था। उनके ग्रथ को आज भी देश विदेश मे बडी श्रद्धा की दृष्टि से पढा जाता हैं। उन्होने वीर विनोद जैसा बृहदकाय इतिहास लिखकर राजस्थान के इतिहासकारो का पथ प्रशस्त किया।

डा गोपीनाथ शर्मा के शब्दो मे, 'यदि न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो टॉड का पर्ष्कृत स्वरूप और ओझा की विश्लेषणात्मक शक्ति का प्रारूप वीर विनोद मे है।'

३. गौरीशकर हीराचन्द ओझा (सन् 1863-1947)

सिरोही के एक गाव रोहीडा मे जन्मे गौरीशकर ओझा ने 1885 मे

मेट्रिकुलेशन परीक्षा पास करने के बाद 1888 मे उदयपुर पहुच कर वहा के इतिहास कार्यालय में कार्यालय मत्री (प्रधान लिपिक) के रूप मे काम आरम्भ किया। तब वहा श्यामलदास का वीर विनोद छप रहा था। वहा ऐतिहासिक सामग्री देखने का बहुत अच्छा अवसर उन्हे मिला तथा बाद मे वीर विनोद की छपी प्रति भी मिल गई। वीर विनोद की छपी प्रतिया महाराणा के आदेश से गोदाम मे सील कर दी गई अत अन्य समकालीन लेखक उससे वचित रह गये। बाद म ओझाजी विक्टोरिया हाल के पुस्तकालय व सग्रहालय खुलने पर उसके अध्यक्ष नियुक्त कर दिये गये। वहा रहते हुए उन्होने प्राचीन लिपिमाला नामक ग्रथ लिखकर पुरातत्व जगत मे विशिष्ट ख्याति प्राप्त की। सन् 1907 मे 'सोलकिया का प्राचीन इतिहास' तथा सन् 1908 मे वह राजपूताना सग्रहालय मे अध्यक्ष नियुक्त होकर अजमेर चले गये। वहा उन्होने सबसे पहले सिरोही प्रदेश से सहायता प्राप्त कर अपनी जन्म भूमि 'सिरोही का इतिहास' 1911 मे लिखा जिसकी छपाई का कुल व्यय सिरोही नरेश ने उठाया। सिरोही नरेश ने इतना करके भी कुछ कारणो से उस ग्रथ का प्रसार रोक दिया।

वह राजपूताना सग्रहालय के सग्रहालयाध्यक्ष पद रहते अब राजपूताने की रियासतो के इतिहास लिखने मे लग गये। वीर विनोद जैसे बृहद इतिहास की प्रति उनके पास थी। अत उन्होने राजपूताने की रियासतो के इतिहास इस प्रकार लिखे—राजपूताने का प्राचीन इतिहास (1925), उदयपुर राज्य का इतिहास प्रथम भाग (1928) द्वितीय भाग (1932), डूगरपुर राज्य का इतिहास (1936), बासवाडा राज्य का इतिहास (1936) बीकानेर राज्य का इतिहास (दो भाग 1937 व 1940) जोधपुर राज्य का इतिहास (दो भाग 1938 व 1941, (प्रतापगढ राज्य का इतिहास (1940)।

जोधपुर राज्य का इतिहास तीन भागो मे छपना था लेकिन तीसरा भाग छप नही सका। जयपुर राज्य का इतिहास वह विचार करते भी लिख न सके। यो उन्होने कर्नल जेम्स टॉड का जीवन चरित्र (1902), मध्यकालीन भारतीय सस्कृति (1928) पर भी पुस्तके लिखी। उन्होने कई निबन्ध भी लिखे जो उनके स्वर्गवास के बाद सन् 1954 मे तीन भागो मे प्रकाशित हुए। ये निबन्ध इतिहास, पुरातत्व, मूर्तिकला आदि पर है।

उन्होने इतिहास लेखन मे सभी प्रकार की उपलब्ध आधार सामग्री का उपयोग किया। इतिहास विषयक प्रकाशित पुस्तको का उन्होने गहन अध्ययन किया था। डा हुकमसिह भाटी के अनुसार 'उन्होने प्रत्येक घटना के वर्णन मे प्राप्त सभी आधार स्रोतो का उपयोग करते हुए अपनी सूझ बूझ से उसकी सत्यता को प्रमाणित करने का यथासम्भव प्रयास ही नही किया बल्कि सदर्भ सामग्री का सुस्पष्ट उल्लेख पाद टिप्पणियो से दिया है। यो राजपूताने के इतिहास मे आधार

स्रोतो का इस प्रकार पाद टिप्पण मे उल्लेख करने की परम्परा ओझा ने ही डाली थी ।"

ओझा का यह सौभाग्य था कि उन्होने श्यामलदास के अधीन काम किया था तथा उन्हे वीर विनोद की एक प्रति प्राप्त हो गई थी । इसका भरपुर उपयोग उन्होने अपने इतिहास ग्रथो मे किया । विभिन्न रियासतो—डूगरपुर, बासवाडा, प्रतापगढ सिरोही, बीकानेर आदि ने अपनी अपनी इतिहास सामग्री उन्हे उपलब्ध करादी । उन्होने अपने इतिहास ग्रन्थो मे सिरोही, उदयपुर व बीकानेर राज्यो के प्रति ज्यादा मोह दर्शाया है । उदयपुर महाराणा की सेवा मे तो वे रह ही चुके थे । बीकानेर के महाराजा गगासिह अपनी रियासत को प्रथम श्रेणी की रियासत घोषित करवाना चाहते थे अत उन्होने ओझा को आर्थिक सहायता देन मे भी कोई कसर नही छोडी । इसी कारण उन्होने बीकानेर की कई घटनाओ का सही सही निरूपण नही किया और बीकानेर राजवश के चारित्रिक दोषो को छिपाने का प्रयास किया । प अम्बालाल कल्ला ने डा ओझा की लीपा पोती इस प्रकार दर्शाई है, "जोधपुर का इतिहास लिखते हुए माननीय ओझाजी मुगल बादशाहो को दी हुई जोधपुर की राजकुमारियो का सविस्तार वर्णन करते हुए एक सेच्चे इतिहासकार का वज्र कठोर नियम निबाहते है पर जिस समय वे बीकानेर के इतिहास पर आते हैं उनकी विख्यात लेखनी की धारा ही बदल जाती है । उनका सच्चे इतिहासकार का दुदमनीय साहस और स्पष्टवादिता हवा हो जाती हैं और फलस्वरुप उनका बीकानेर का इतिहास अपना वास्तविक रुप छोडकर गहरे लिपे पुते ढग से हमारे सामने आता है ।" ओझा ने महाराजा गगासिह पर ही 232 पृष्ठ लिख दिये जो स्पष्ट महाराजा गगासिह के प्रति पक्षपात बतलाता है । इसके विपरीत प्रथम श्रेणी की रियासत जोधपुर का इतिहास लिखते समय उस रियासत को बीकानेर से कुछ निम्न दिखलाने का ही प्रयत्न किया । जोधपुर राज्य के इतिहास की कुछ भ्रातियो का निराकरण करने का प्रयत्न ही नही किया । जोधपुर के नरेशो की बुराईयो को कुछ ज्यादा ही उछाला है । इतना होते भी ओझा के ग्रन्थ दूसरे इतिहास ग्र थो की तुलना मे बहुत ही प्रमाणिक और उपयोगी है । डा के आर कानूनगो के अनुसार, "ओझा वास्तव मे राजपूत इतिहास के अनुसधान के क्षेत्र में कविराजा श्यामलदास के सुयोग्य उत्तराधिकारी थे । लगभग एक दशक पश्चात, अपने बहुमूल्य साहित्यिक योगदान के अलावा राजपूत इतिहास के अनुसधान के क्षेत्र मे अपने सभी पूववर्ती इतिहासकारो से गुणात्मक एव सख्यात्मक रूप मे आगे बढते हुए पूर्ण आयु एव प्रसिद्धि प्राप्त कर परलोकवासी हुए ।" वह प्रथम इतिहासकार थे जिन्होंने स्थानीय स्रोतो को परखा और इतिहास ग्रन्थो मे वैज्ञानिक ढग से उनका उपयोग किया । उनकी कृतियो का अध्ययन किये बिना कोई भावी लेखक इतिहास ग्र थ लिख नही सकता है । यही उनकी इतिहास लेखन को देन है ।

8 जगदीशसिंह गहलोत (ई सन् 1896-1958)— मण्डोर (जोधपुर के एक किसान परिवार मे जन्मे जगदीशसिंह गहलोत को किसी महा विद्यालय मे शिक्षा नही मिली लेकिन गहन इतिहास अध्ययन कर तथा इतिहास सम्बन्धी सामग्री का सकलन कर उन्होंने जो इतिहास ग्रथ लिखे उनसे वह इतिहास क्षेत्र मे काफी प्रसिद्धी पा गये। डा गौरीशकर हीराचन्द ओझा ने सन् 1925 मे उनके लिये लिखा था, "गहलोत जी परिश्रमी तथा अध्ययनशील व्यक्ति है तथा उनमे ऐतिहासिक सामग्री को मनोयोग पूर्वक परखने तथा सम्यक रूप से सम्मिलित एव क्रमबद्ध करने की पूर्ण योग्यता है।" उनके इतिहास ग्रथो को पढकर सन् 1947 मे डा राधाकुमुद मुकर्जी ने उन्हे लिखा था ", मैं आपके शोध कार्यों और उन पर आधारित ऐतिहासिक ग्रथों को बडा महत्वपूर्ण समझता हू। मेरी मान्यता है कि आप राजपूताने की रियासतों की पुरालेख सामग्री का भली प्रकार उपयोग कर रहे हैं।"

अपने प्रारम्भिक जीवन मे वन निरीक्षक, रेल्वे गार्ड, कृषि फार्म आदि पर काम करते उन्होंने कई पुस्तकें लिखी। इनमे से प्रमुख पुस्तकें राजस्थान की कृषि कहावतें, मारवाड का सक्षिप्त वृतात, मारवाड राज्य का इतिहास आदि है।

डा रघुवीरसिंह ने उनके द्वारा रचित 'मारवाड राज्य का इतिहास' के लिये लिखा है, "मारवाड के इतिहासिक वृतात के अतिरिक्त वहा का भौगोलिक वर्णन और कई अन्य ऐसे विषयो का उसमे उल्लेख किया गया हैं जो वहा के अग्रेजी गजेटियरो मे भी नहीं मिलता है। शासको के साथ ही प्रजावर्ग की वास्तविक स्थिति भी उससे ज्ञात हो सकती है। मारवाड के राजघराने के साथ ही राजस्थान तथा अन्य प्रदेशो के सब राठौड राज्यों के भी सक्षिप्त इतिहास दे दिये गये है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के बाद जगदीशसिंह एक सशोधक इतिहासकार के रूप मे मान्य होने लगा था।" डा जदुनाथ सरकार ने इस ग्रथ को 'हिंदी साहित्य को एक अत्यन्त उपयोगी देन" बतलाया था। उनके अनुसार यह "बडे सही ढग से व मेहनत से लिखा ग्रन्थ है जिसमे काफी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक, सामाजिक व आर्थिक जानकारी दी गई है।' उनकी अपूर्व योग्यता को देखकर जोधपुर सरकार ने उन्हे फरवरी 1927 मे जोधपुर राज्य के इतिहास व पुरातत्व कार्यालय मे कोलेटर (प्रतिलिपियो का मिलान करना) पद पर नियुक्त किया। सन् 1928 मे उनके मारवाड राज्य के इतिहास का दूसरा सस्करण प्रकाशित हुआ और कुछ ही समय मे वह भी अप्राप्य हो गया। इतना विद्वतापूर्ण ग्रन्थ लिखने पर भी जब इतिहास कार्यालय मे पदो की कटौती की गई तब उन्हे वहा से पदमुक्त कर जोधपुर राज्य के सचिवालय मे टाईपिस्ट पद पर भेज दिया गया। इस नये पद पर वह 1930 से 1950 तक रहे और इन दो दशको मे उन्होने राजपूताने की सभी 19 रियासतो के अलावा अजमेर मेरवाडा, दाता व पालनपुर के इतिहास लिखे। सन् 1937 मे उनका राजपूताने का इतिहास का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। उन्होंने 500 वर्षों (वि स 1501 से 2000) का इतिहास सहायक पचाग तैयार कियाथा

जिसमे इस्वी सन्, बगाली सन् हिजरी सन् व विक्रम सवत की समानान्तर सारणिया दी है। उनके अन्य उल्लेखनीय ग्रन्थ है, –राजस्थान का सामाजिक जीवन, मीरा-बाई की जीवनी और काव्य, राठौड दुर्गादास, मारवाड के रीतिरिवाज, भारतीय नरेश आदि। राजस्थानी भाषा के वह बडे समथक थे। उन्होने ही सबप्रथम १९२५ मे यह माग की थी कि राजस्थान की भाषा राजस्थानी होनी चाहिये और इसके प्रचार व प्रसार हेतु राजस्थानी साहित्य सम्मेलन (अकादमी) स्थापित होनी चाहिये। उन्होने कई राजस्थानी ग्रन्थो का सम्पादन किया यथा, ऊमर काव्य, राजस्थानी वातालार्थ, मारवाड के गाम गीत, राजिया के सोरठे, वीर मायण मारवाडी कहावते, राजस्थानी ऐतिहासिक कहावते, आदि।

जोधपुर राज्य के सचिवालय मे एक टाइपिस्ट के पद पर काम करते समय सन् 1937 मे जब राजपूताने का इतिहास का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ तब डा पी के गोड ने न्यू इडियन एटीक्वेरी मे लिखा था, "इस ग्रन्थ को और इसके पूव की रचनाओ को देखकर यह कहने मे कोई सकोच नहीं है कि ऐसा गहन अध्ययन पूण ग्रन्थ जिसमे राजपूतो की अनेक सामाजिक और आर्थिक समस्याओ पर नूतन प्रकाश डाला गया है, लेखक को स्वत ही गौरव प्राप्त कर देता है।" माडर्न रिव्यु, कलकत्ता मे उस ग्रथ की समालोचना के कुछ अश इस प्रकार है, 'हम यह आशा करते हैं कि गहलोतजी अपने इतिहास लेखन कार्य को एक देशी राज्य के आपत्तिजनक क्षेत्र मे बैठे, राजपूताने के उन इतिहासकारों मुहणोत नैणसी और कविराजा बाकीदास की भाति दुर्भाग्यशाली बने बिना जारी रखेंगे।" जोधपुर राज्य सरकार ने उनकी सेवाओ का सही उपयोग नही किया लेकिन प मदनमोहन मालवीय ने उचित ही लिखा था कि "जोधपुर राज्य के लिए यह एक पूण सतोष एव अभिमान गव की बात होनी चाहिए कि उस राज्य का एक सपूत इतना प्रसिद्धि प्राप्त इतिहासवेत्ता है।"

इसमे कोई सन्देह नही है कि उन्होने श्यामलदास, गौरीशकर हीराचन्द ओझा आदि की भाति राजाओ की पृष्ठभूमि मे इतिहास लिखा लेकिन तत्कालीन परि स्थितियो मे वही इतिहासकारो का दृष्टिकोण रहा। एक रियासत मे साधारण पद पर रहते निसन्देह राजाओ के विरोध मे विशेष कुछ नही लिख सके। तब के स्वतन्त्रता सेनानी भी तो उत्तरदाई सरकार की स्थापना राजाओ की छत्रछाया मे ही स्थापित करने की माग करते थे। तब भी (1925 मे) उनका यह लिखना समय के अनुसार ही था कि "राजनैतिक कारणो से जो मातृभूमि के भक्त छोटी छोटी बातो पर दोषी बनाकर जेल मे ठेल दिया जाते है और वे शातचित्त से इन जेलघरो को तपोभूमि ही मानते है। सच्चे सेवक अपने धर्म, जाति और देश के लिए कठिन से कठिन यातनाए सहने के लिए तैयार रहते है।" "राजनैतिक जागृति को देखकर सरकारी अधिकारियो को अपनी नीति की समालोचना होने का भय लगा और फलस्वरूप मारवाड प्रेस एक्ट 1923 जारी हुआ। इस प्रेस एक्ट मे इतने कडे नियम रखे गये कि जिसका ब्रिटीश भारत के प्रेस एक्ट से मुकाबला नही हो सकता है। समझ मे

नहीं आता कि इस दफा को रखकर मारवाड के प्रेस व सामाचार पत्रों का क्या गला घोटा गया ? सावजनिक पत्रों के अभाव मे मारवाड बहुत कुछ पिछड गया है क्योंकि किसी देश व जाति की उन्नति प्रेस व सामाचार पत्रो पर ही निर्भर रहती है।"

'राजस्थान के सामाजिक जीवन में' राजाओं के लिये लिखा था, "अंग्रेजों के अधीन होने के बाद से इन नरेशों को शिक्षा व प्रशिक्षिण इस प्रकार से दिया जाने लगा है कि वे सभी कार्यों को लिये अंग्रजी सरकार के ही आश्रित रहते हैं। प्रजा का कम ध्यान दिया जाता है। ऐसी शिक्षा के प्रभाव से ही भावी शासका और जनता के बीच एक दीवार खडी हो गयी है।' जागीरदारो के लिये लिखा था, 'वे निरंकुश होकर अपनी प्रजा पर अत्याचार करने मे कभी नहीं चूकते हैं। राज कर्मचारियो के विषय मे बतलाया कि 'अधिकांश राज्यो मे घूसखोरी अंधेरशाही, पक्षपात आदि का दबदबा है।' किसानो से उन्हे पूरी सहानुभूति थी, क्योंकि "वे किसान पीढियो से सख्त बेगार, पचासो अजीबो गरीब लागो (कर), भारी लगान और मनमाने राजनैतिक जुल्मो की चक्की मे पिसते जा रहे हैं। अछूत जातियो पर होने वाले अत्याचारो को देख कर लिखा था, 'इन हरिजनो की दशा रियासतों में बडी शोचनीय है। जो सामाजिक अत्याचार इन पर होते है उनका वर्णन यहां नही किया जावे तो उचित ही होगा। इतना लिखना जरूरी है कि इतनी बडी संख्या के लोगो की ओर किसी भी राज्य का ध्यान नहीं गया है।' स्पष्ट है कि लेखक ने राज्य सेवा मे रहते भी सामान्य जनता की वास्तविक स्थिति बतलाने में कोई संकोच नही किया है। उन्होने इतिहास स्वांत सुखाय लिखा, किसी राजा के आदेश या ईशारे से नही लिखा, उनका उद्देश्य 'एक ऐसा ग्रन्थ जनता की सेवा मे रखने का रहा है कि इसमें कोई ऐसी बात छूटने न पाये जो इतिहास, भुगोल अथवा सामाजिक विषय से सम्बन्ध रखती हो। ग्रंथ को सब साधारण के लिये उपयोगी बनाने हेतु इसकी भाषा सरल व सुबोध रखी है और इतिहास की घटनाएँ ऐसी शैली से दी गई है जो सब के लिए शिक्षाप्रद व रोचक हो। यदि इससे योग्यतर इतिहासवेताओ मे जागृति हुई तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे। निसन्देह हम इसे सर्वांगपूर्ण इतिहास किसी रुप मे नही कह सकते ह और न यह पूज्य ओझाजी महाराज के स्मारक ग्रंथ का मुकाबला कर सकता है परन्तु यद्यपि चन्द्रमा ससार को प्रकाश देता है और उसका उजाला दीपक से अधिक होता है तथापि उससे घर के दीपक का महत्व कम नही होता क्योंकि घर की सब चीजें देखने के लिए दीपक ही काम आता है। इसी प्रकार हमारा यह इतिहास भी राजस्थान के इतिहास प्रेमियो को दीपक का काम देगा।' (राजपूताना का इतिहास भाग प्रथम, भूमिका पृ 30-31) इस उद्देश्य की पूर्ति म उन्होंने इतिहास ग्रंथ लिखे। नागरी प्रचारिणी पत्रिका काशी ने इनके ग्रंथ राजपूताना की इतिहास की समालोचना करते लिखा था, 'अभी तक हमारे देश के विभिन्न विद्वान इतिहास लेखको से समूचे

राजपूताने का कोई प्रमाणिक इतिहास प्रकाशित नही किया था। श्री गहलोत ने इस कमी को पूरा करने का उद्योग करके राजपूताना के निवासियो तथा इतिहास प्रेमी जनता का बडा उपकार किया है। बम्बई के बाम्बे क्रान्तिकल पत्र ने तब विचार प्रकट किये कि "उन्होने हिन्दी मे राजपूताना का इतिहास लिखा है जिसने उनकी ख्याति मे चार चाद और लगा दिये हैं और जिसकी देश व विदेश के प्रख्यात विद्वानो ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है।

श्री जगदीश सिंह गहलोत को किसी राज्य से किसी प्रकार का सरक्षण नही मिला। एक साधारण किसान परिवार का होने से उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नही थी फिर भी अपने अध्ययन हेतु अपार इतिहास सामग्री एकत्रित की। दजनो ख्याती, प्रशस्तियो, वचनिकाओ, वहियो व अप्राप्य ग्रथो की प्रतिलिपिया उन्होंने स्वय तैयार की या करवाई। वीर विनोद' तारीख तुहफए राजपूताना वका-यिम्र राजपूतानाह, आदि की प्रतिलिपिया आज भी उनके सग्रह मे उपलब्ध है। उन्होने सकडो चित्रो का सग्रह किया था तथा अपने स्वर्गवास तक 1146 कॉपर ब्लाक तैयार कराये थे। गनिज पुस्तकालय मे 2738 इतिहास ग्रथ छोड गये। वह पत्र लिखने के बडे प्रेमी थे। तत्कालीन सभी इतिहासकारो व लेखको डॉ गोरी शकर हीराचन्द ओझा, डा पी के गौडे, डा राधाकुमुद मुकर्जी, श्री हरविलास शारदा, डा सूयकात, श्री सूयकरण पारीख, श्री नरोत्तम स्वामी, श्री हरिनारायण पुरोहित, डा वासुदेव अग्रवाल आदि उनके अभिन्न मित्रो मे थे और उनसे बरावर पत्र व्यवहार करते रहते थे। यह आश्चय है कि सचिवालय मे टाइपिस्ट (अग्रेजी) का काम करते रहने के बाद के समय इतना काम कैसे करते थे। शायद इसी कारण वह इतना लिखने के बाद भी अर्थाभाव के कारण उनका प्रकाशन नही करा सके।

भारत सरकार के महानिदेशक ने उसकी इतिहास के प्रति रूचि देखकर उन्हे 1941 मे अहीछात्रा (उत्तर प्रदेश) में उत्खनन का प्रशिक्षण दिया था तथा 27 मार्च 1941 को जोधपुर सरकार को लिखा था, 'श्री गहलोत ने उत्खनन के आधुनिक तरीके सीखने मे सभी अवसरो का उपयोग किया है और इस प्रकार प्राचीन भारतीय इतिहास व पुरातत्व के ज्ञान की वृद्धि की है। मुझे विश्वास है कि जोधपुर रियासत उनकी सेवाओ का उपयोग करेगी।" जोधपुर रियासत ने फिर भी उन्हे टाईपिस्ट ही बने रहने दिया। सन् 1951 मे जब राजस्थान के सग्रहालय एव पुरातत्व विभाग के कर्मचारियो का चयन हुआ तब उनका 1927 से की गई सेवाओ को आका गया और उन्हे वरिष्ठतम सग्रहालयाध्यक्ष (क्युरेटर) का पद दिया गया और बाद मे वह जोधपुर-बीकानेर डिवीजन के अधीक्षक पद से सेवा-निवृत हुए। श्री गहलोत का सचिवालय के टाईपिस्ट पद से पुरातत्व विभाग मे जाना विभाग वालो को बहुत अखरा। वहा वह परदेशी समझे गये और उस समय (1951) से जो सघर्ष उन्हे विभागाध्यक्ष से करना पडा, वह, अब

लिखना व्यर्थ है। उनके स्वर्गवास (1958) के दो वर्ष बाद, उनके उत्तराधिकारियों को उनकी ग्रेचएटी, प्रावधायी निधि आदि की रकम मिली। यदि वह रकम उन्हें अपने जीवन काल मे मिल जाती तो सभव था कि राजपूताने के इतिहास के शेष 1500 पृष्ठ भी छप कर प्रकाशित हो जाते। अस्तु सन् 1951 से 1958 तक वह अपना कोई ग्रन्थ प्रकाशित नही करा सके। श्री जगदीशसिंह गहलोत का यह दुर्भाग्य था। उनकी जीवनकाल की अतिम कृति (1948)'राजस्थान का दिग्दर्शन' थी जिसमे राजस्थान की समस्त रियासतो का सक्षेप मे सचित्र विवरण था। उसमे राजस्थान के स्वतन्त्रता आन्दोलनो का विवरण भी था। उन्होने 1949 से 1958 के बीच के वर्षो मे अपने ग्रन्थो को सशोधित व परिवर्द्धित अवश्य कर दिया। उनके स्वर्गवास के बाद उनमे से कुछ ग्रथ प्रकाशित भी हो गये है और कुछ प्रकाशनाधीन हैं। प्रकाशनाधीन मे मुख्य 'राजपूताने का इतिहास (चौथा व पाचवा भाग) तथा 'इतिहास सहायक तिथि पत्रक (वि स 1501 से 1701 तथा 1901—2000 वि सवत) है। पजाब विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डा सूर्यकात ने उनके लिये उचित ही लिखा था 'जन्म से राजस्थानी होने से उनके लिये राजस्थान के इतिहास मे अध्ययन व शोध करने से बढकर और कोई विषय हो ही नही सकता था।"

❀

से कम एक लाख वर्ष ई पूव तक का अनुमान किया जा सकता है। इस युग को प्रागैतिहासिक कहा जाता है। प्रागितिहास (प्राक्इतिहास) शब्द का प्रयोग, मानव के उस आदि काल के इतिहास के अर्थ मे किया जाता है, जब मानव ने अपनी पाशविक वृतियो का परित्याग किया और सभ्यता के क्षेत्र मे पदार्पण किया।

प्रागितिहास जानने के लिये पुरातत्व पर निर्भर रहना पडता है। इसके लिए तत्कालीन प्रयुक्त पापाण---उपकरणों, मृद्भाडो, जीवाश्मो, नर ककालो आदि का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। इसके वैज्ञानिक अध्ययन के लिए भूविज्ञान, जीवाश्म विज्ञान, नृविज्ञान तथा रसायन विज्ञान विषयक प्रविधियो आदि पर निर्भर रहना पडता है।

उपरोक्त विधि से अध्ययन करने से पता चला है कि राजस्थान का इतिहास लाखो वर्ष पूव से सम्बन्धित है। यहा का दक्षिण-पूर्वी भाग, न केवल भारत बल्कि ससार का प्राचीनतम क्षेत्र है जैसा कि यहा की चट्टानों से ज्ञात होता है। यहा का पश्चिमी व उत्तर-पूर्वी भाग इतना प्राचीन नही है। पश्चिमी राजस्थान तो उत्तर-पूर्वी भाग से भी बाद का है। वह अशत समुद्र के गर्भ मे था जैसा की इस क्षेत्र के जीवाश्मो से प्रमाणित होता है। इस काल मे मध्यप्रदेश से पजाब को जाने के लिये समुद्री रास्ता नमदा घाटी व कच्छ होकर था। राजस्थान की अरावली पर्वतमाला भारत की सबसे प्राचीन व ऊँची पवतमाला थी। यह निश्चित नहीं है कि पश्चिमी राजस्थान क्षेत्र से समुद्र कब हटा लेकिन इसको हटने मे हजारो वष लगे होगे। समुद्र के हटने पर वहा पर कई बडी बडी झीले रह गई जो काफी समय बाद सूखी। इसी कारण से यहा नमक व खड्डी के काफी भडार हैं।

राजस्थान मे हजारो वर्षो तक पहाडो से बहकर आने वाली नदिया अपने साथ रेत और मिट्टी लाकर यहा मदान बनाती रही और उन्हीं के फलस्वरूप यहा उपजाऊ मैदान बन गये। लगभग एक लाख वर्ष पूव हमारा कोई पूवज यहा के जगली जानवरो की भाति यहा के किसी जगल मे आया। वह जगली जानवरो की भाति ही नगा रहता था और जगली कन्दमूल खाकर अपना पेट भरता था। जगली जानवरो के बीच उसका रहना उसके लिए सुखद नही था। हिंसक जानवरो से वह लुक छिपकर पेडो पर या कन्दराओ रहता था। अपनी रक्षा के उपाय वह दिनरात सोचता रहता था। इसी के फलस्वरूप वह कठोर पत्थर से भद्दे और भोडे हथियार और औजार बना पाया। इनसे वह न केवल हिंसक पशुओ से अपना बचाव कर सका बल्कि शिकार भी करने लगा। शिकार से मारे गये पशुओ से अपना पेट भरने लगा।

— राजस्थान की प्रागतिहासिक सस्कृति को जानने लिये यहा के विभिन्न स्थलो की वैज्ञानिक आधार पर पिछले 40 वर्षो मे उत्खनन किया गया। इन स्थलों से

प्राप्त उपकरणो के आधार पर पुरातत्ववेताओ ने मानव द्वारा बनाये जाने वाले पाषाण उपकरणो के उस काल को पुरापाषण काल नाम दिया है। यह वह पाषाणकालीन प्रारम्भिक अवस्था है जिसमे मानव ने पाषाण उपकरण बनाने प्रारभ कर दिये थे। इसका वर्गीकरण निम्न प्रकार से हैं—

प्रारम्भिक पाषाण काल — इसका समय लगभग एक लाख वर्ष पूर्व से पिछले 50 हजार वर्ष तक का माना जाता हैं। इस काल मे मानव हैण्ड एक्स (हस्त कुठार), क्लीवर (विदारणी) तथा चोपर (गडासा) आदि का प्रयोग करता था। हस्त कुठार 10 से 20 से मी लम्बा नोकेदार, एक ओर गोल और चौडा तथा दूसरी ओर नुकीली तथा तेज किनारे वाला होता था और कद मूल खोदने, पशु को काटने और खाल उतारने के काम लिया जाता था। क्लीवर (विदारणी) एक आयताकार 10 से मी से 20 से मी तक लम्बा और 5 से मी से 10 से मी तक चौडा औजार होता था जिसका एक किनारा कुल्हाडी की भांति सीधा और तेज धारदार तथा दूसरा गोल, सीधा और त्रिकोण होती थी। चॉपर (गडासा) गोल होता था जिसके एक ओर अर्द्ध चन्द्राकार धार होती थी। इसका दूसरा किनारा गोल और मोटा तथा हाथ मे पकडने के लिए हत्था होता था।

इस सस्कृति के प्रमाण अजमेर अलवर, चितौड, जयपुर, जालोर, नागोर, झालावाड, टोक, पाली, भीलवाडा आदि जिलो की नदियो के किनारो पर मिले उपकरणो से प्राप्त हुए हैं। चम्बल और बनास नदियो व उसकी सहायक नदियो —वेडच, गम्भिरी, वागा आदि के किनारो पर भी प्रागैतिहासिक उपकरण बहुत सख्या मे मिले है। वैराट मे कुछ प्राकृतिक गुफाओ तथा शैलाश्रयो मे प्रारम्भिक पाषाण काल से लेकर मध्य पाषाण काल (दस हजार वर्ष पूर्व) तक की सामग्री मिली है। भरतपुर जिला के दर नामक स्थान से मानवाकृति, व्याघ्र, बारहसिंघा, सूकर आदि से चित्रित शैलाश्रय प्राप्त हुए हैं। अधिकाश शैलाश्रयो का मुह दक्षिण-पूर्व की ओर होता था। इनकी दीवारो व छतो पर, अवकाश के समय मानव अपने मनोरजन हेतु तथा यादगार हेतु अनेक चित्र अकित करता रहता था। इन चित्रो के विषय प्रमुखतया शिकारवृत्ति से सम्बन्धित हैं। शैलचित्र मुख्यत दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में चम्बल, पार्वती, परवन आदि नदियो के किनारो के शैलो से मिले है। ऐसे स्थान हैं— कोटा जिले मे कपीलधारा, मोरसन, दर्रा, क यादेह, कालाजी की कुई, चटनेश्वर, कोटा नगर मे जवाहर बुधा, भीलवाड़ा जिले मे माण्डल वन्धा, चित्तौडगढ जिला मे चामली नाला, चित्तौडगढ दुर्ग के पास की पहाडी, अजमेर मे आना सागर के पास की पहाडी सवाई माधोपुर मे अमरेश्वर व शोलेश्वर, झालावाड ज़िले मे वागोद के पास थमभारी नाला व आबू पवत। इन शैलचित्रो मे लाल, पीले, हरे आदि रगो का प्रयोग हुआ है। इस समय तक मानव यायावर था।

जगली कद मूल, फल, हरिण, शूकर, भेड बकरी आदि खाकर ही अपना पेट भरता था। इस काल के उपकरण बेडच क्षेत्र की नदियो के अलावा, गम्भिरी, बागाँ, व कादमाली से मिले हैं। बेडच नदी क्षेत्र के स्थल डोरोली, करणपुर, धीमडा, सरजना, वल्लभनगर गाडरीयावास, तुकरावा, धनेट व नगरी से 161, गम्भिरी नदी क्षेत्र से 242 उपकरण बागा नदी क्षेत्र के गाव हाजी खेडी, भूटीया, ब्यावर व चम्पाखेडी से 118 कादमाली नदी क्षेत्र के निम्बाहेडा के पुल के पास 38 उपकरण मिले है। सभी उपकरण पत्थर के है और इनमे क्रोड कुठार, गडासे विदारणिया हस्त कुल्हाडे, शल्क आदि मुख्य है।

मध्यकालीन पाषाण काल—यह युग प्रारम्भिक (पुरा) पाषाण काल और नवपाषाण काल के बीच की कडी माना जाता है। इस युग का आरम्भ 50000 वर्ष पूर्व के आसपास का माना जाता है। इस काल के उपकरण बागाँ नदी व कादमाली घाटी क्षेत्र मे मिले है। बागा क्षेत्र के स्थल हाजी खेडी, भूटिया, ब्यावर, व चम्पाखेडी है जहा से क्रोड शल्क, खुरचनिया व हस्त कुल्हाडे मिले है। बेडच क्षेत्र मे इस काल के नाममात्र के उपकरण मिले है। गम्भिरी नदी क्षेत्र मे ऐसे कोई उपकरण नही मिले हैं। डा वी एन मिश्रा द्वारा किये गये सर्वेक्षणो से यह सिद्ध हो गया है कि कम से कम 30 से 40 हजार वर्ष पूर्व लूणी नदी क्षेत्र मे मानव रहता था तथा इस नदी मे काफी पानी बहता था। क्योकि तब यहा की आबहवा काफी नम थी। तब वर्षा भी ज्यादा तथा नियमित रूप से होती थी। शेखावाटी व गगानगर का क्षेत्र भी तब तक काफी हराभरा था। प्रारम्भिक पाषाणकाल व मध्यपाषाण काल के उपकरणो मुख्यत हस्त कुल्हाडी, क्रोडा के अनुपात मे व शल्को की बनावट मे काफी विभिन्नता है।

नवपाषाण युग—नवपाषाण युग का आरम्भ लगभग 10,000 ई. पूर्व माना जाता है। इस काल मे कृषि, पशुपालन, धुमक्कड वृत्ति के स्थान पर स्थायी निवास के साथ साथ बर्तन बनाने के लिए चाक का प्रयोग होने लगा। अब वह पशुओ के बालो और पौधो के रेशे के वस्त्र पहनने लगा था। घास, फूस, मिट्टी तथा वृक्षो की शाखाओ की सहायता से रहने को झोपडिया बनाना सीख लिया था। इस काल के अपर्याप्त पाषाण उपकरण तथा कुछ अस्थि उपकरण भी मिले हैं। इस काल की बेडच नदी घाटी के 26 स्थलो मे 2912 हस्तकृतिया मिली हैं। इन उपकरणो मे काम आने वाली मुख्य सामग्री चर्ट की 44 47 प्रतिशत व बिल्लौर की 36 53 प्रतिशत है। चर्ट कई रगो का है जिनमे मुख्य हल्का पीला, गहरा भूरा व चाकलेट भूरा है। बिल्लौर चाकलेट भूरे रग का है। हस्तकृतियो मे मुख्यत फलक व फलकें हैं।

राजस्थान के मरुस्थल मे पाषाण काल के उपकरण मिले हैं। जायल (जिला नागौर) एक बहुत ही समृद्ध स्थल था जहा से कई उपकरण मिले हैं। यहा

की भूमि के परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि यहा नदी बहती थी जिसकी धारा काफी तेज थी। यहा का जलवायु तब नम था जैसाकि चिकनी खडीया की बनावट से ज्ञात होता है। जायल से 60 कि मी पूर्व मे स्थित डीडवाना मे भी इस काल के उपकरण मिले हैं। प्रतिनूतनकाल के उत्तरार्द्ध मे झील का पानी बहुत ही खारा था लेकिन नूतन काल (ई पूव 10000 से ई पूव 3000) मे झील मे मीठा पानी भरा हुआ था। यहा के प्रारम्भि काल के उपकरण चिकनी मिट्टी मे गडे मिले हैं। ये बहुत ही अच्छी दशा मे मिले है। ये अधिकाश बिल्लोर या स्फटिक के बने है। यह पत्थर डीडवाना क्षेत्र की पहाडियो से मिलता है। डीडवाना के उपकरण अधिकाशत बहुफलकीय है। कुछ हस्त कुठार, गडासे और खुरचनिया मिली है। ये उपकरण प्रारम्भिक पाषाण काल के हैं जबकि जायल के उपकरण बाद के प्रतीत होते है।

पश्चिमी राजस्थान का विस्तृत रजयुक्त प्रदेश कई मीलो तक फैला है तथापि लूनी सरिता शुष्क उत्तर प्रदेश अपने गर्भ मे बालू के तले खाद, जमी हुई मिट्टी और बजरीकृत -ककर, चूर्ण धारण किये हुए है—यह मृच्छलिका पर आश्रित है। यह पत्थर कई परतो मे होने के कारण सहज मे टूट जाता है। प्रागतिहासिक युग मे लूनी नदी इस भू भाग को जल प्रदान करती रही होगी जिस कारण वहा हरे जगल होगे। खाद्य सामग्री-मात्र सग्रह की अवस्था मे आदिमानव ने इन वनवीथियो मे भ्रमण करते हुए चकमक प्रस्तर के अश्मोपकरणो द्वारा जीवन निर्वाह किया होगा।

पुरातन मानव के प्रयुक्त अश्मोपकरण राजस्थान के दक्षिण-पूर्वी भाग मे भी मिलते हैं। इनका आकार छोटा है। ऐसे औजार प्राय धारदार एव नुकीले होते है। इस अपरपाषाण युग मे मानव प्रारम्भिक पाषाण युग से भिन्न प्रकार के उपकरण प्रयोग मे लाया। इससे अनुमान होता है कि इस युग मे दक्षिण-पूर्व एव पश्चिमी राजस्थान के मानव की आवश्यक्ता प्रारभिक पाषाण से भिन्न प्रकार की थी। ये पाषाणास्त्र बहुधा उन पशुओ को काटने, उनका चमडा छीलने एव उनमे छेद करने के काम आते थे जिनको मानव शिकार करके लाता था। ये पाषाणास्त्र जीवन-सुरक्षा हेतु शस्त्र का काम भी देते थे। भालो और बाणाग्रो के दोनो ओर की तेजधार को देखकर यह मत पुष्ट होता है। इस प्रकार के अश्मोपकरण सहस्रो की सख्या मे पूर्वी, दक्षिण-पूर्वी तथा पश्चिमी राजस्थान मे उपलब्ध हुये है।

आद्यैतिहासिक काल

बागोर—यह भीलवाडा जिला मे एक कस्बा है जो भीलवाडा नगर से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर कोठारी नदी के किनारे पर बसा हुआ हैं। यहा 1967 से 1970 के बीच उत्खनन कार्य हुआ था और तब यहा काफी मात्रा मे आद्यैतिहासिक महत्व की सामग्री मिली थी।

सर्वप्रथम यहां पर 1 67 मीटर गहरी 3×2 मीटर भूमि पर खुदाई करके भावी कार्य की रूपरेखा निर्धारित की गई थी। तदनन्तर 20×8 मीटर क्षेत्र में कार्य बड़े पैमाने पर प्रारम्भ किया गया था। आगे के वर्षों में 20×6 मीटर व 20×10 मीटर क्षेत्रों में खुदाई कार्य सम्पन्न किया गया था व खुदाई के आधार पर यहां आदि मानव की सभ्यता के तीन विभिन्न युग प्रस्तुत हुये। सबसे नीचे की परतों से लघु पाषाणास्त्र तथा मृत पशुओं के अवशेष ही प्रकाश में आये। इससे यह सिद्ध हुआ कि आदिमानव इस युग में भोजन संग्रह की अवस्था में था और भोजन उत्पादन करना नहीं जानता था। वह आखेट एवं कन्दमूल एकत्र कर अपना जीवन निर्वाह करता था। इतना होते हुए उस समय का मानव पत्थरों के योग से पटी भूमि पर रहा करता था। मृत शरीर का ढांचा जो यहां से प्राप्त हुआ वह पश्चिम-पूर्व दिशा में लेटा मिला। इससे अनुमान लगाया जाता है कि आदि मानव उस समय मरणोपरान्त जलाया नहीं जाता था वरन् अपने घर में ही दफनाया जाता था और दफनाते समय उसे वे उत्तर-दक्षिण न लिटाकर पश्चिम पूर्व लिटाते थे। रेडियो कार्बन विधि से इस स्तर को ईसा पूर्व 4480, 3835 व 3285 तक का बताया गया है। इस स्तर में मिट्टी का ढेर 50 से लेकर 80 से मी का है।

दूसरे स्तर में 30 से 50 से मी मिट्टी का ढेर खोद गया। इस स्तर से लघु पाषाणास्त्र तथा पशु अवशेष कम होने प्रारम्भ हुए और ताम्रास्त्र तथा मृद्भाण्ड प्रकाश में आने प्रारम्भ हुये। यहां के मृद्भाण्ड हाथ के बने हैं तथा उन पर कुरेदी हुई रेखायें हैं। मानव के मृत शरीर पूर्व-पश्चिम दिशा में लेटे मिले हैं। मृत शरीर के साथ पर्याप्त संख्या में मृद्भाण्डों के अवशेष, धातु अस्त्र, आभूषण तथा भोजन सामग्री भी प्राप्त हुई। इस युग में मानव समाज की सुविधाओं का उपभोग करता होगा, ऐसा आभास अवशेषों से प्राप्त होता है। यद्यपि इस युग के लोग भी प्रस्तर के उपकरण बनाते थे और पशुओं का शिकार एवं कन्दमूल फल एकत्र किया करते थे पर वे मिट्टी के बर्तन भी बनाने लग गये थे। वे ताम्रोपकरण के प्रयोग के साथ साथ सम्भवतः कृषि व पशुपालन के आधार पर भोजनोत्पादन भी करने लग गये थे। प्राप्त अवशेषों के आधार पर वे अपने पूर्वजों के समान अपने शवों को घरों में ही पूर्व-पश्चिम दिशा में गाड़ते थे। तथा उनके साथ काफी बर्तन खाद्य पदार्थ व उपकरण रखते थे। दो रेडियो कार्बन तिथियां इस स्तर के अवशेषों के परीक्षण के आधार पर मिली हैं और वे ईसा पूर्व 2765 और 500 के बीच की हैं।

तीसरा युग स्तर विभाजन के आधार पर बागोर के टीले के मध्य में 35 से 75 मिट्टी के टीलों की खुदाई से ज्ञात हुआ। इसका समय सम्भवतः ईसा पूर्व 500 से लेकर ईसा सन् की चौथी शदी तक का है।

इस स्तर से जो भी लौहास्त्र प्राप्त हुए तथा मृदभाण्ड मिले वे हाथ के बने न

होकर कुम्हार के चाक द्वारा बने है। चाक पर बने बर्तन अच्छी तरह पके होने के साथ साथ हल्के तथा सुदृढ हैं। उन पर प्राय चिकनी मिट्टी का लेप नही है। रग द्वारा उन पर कोई चित्रकारी नही है पर कही कही रेखाये खीचकर अथवा मिट्टी द्वारा अलकरण किया गया है। इस काल के पात्रो मे हमे खम्भाकार हाडिया, चौडे मुह एव चपटी पैन्दी वाले प्याले, सकरे मुह वाले गोल घडे तथा भिन्न प्रकार के शरावक प्राप्त हुये है। यहा से 7 लोहे के उपकरण मिले है जिनमे दो बाणाग्र विशेष महत्व के है। मनुष्य द्वारा लोहे का ज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण समाज मे पत्थर के उपकरणो का उपयोग बहुत कम हो गया था। इसी प्रकार अर्थ व्यवस्था मे मनुष्य द्वारा भोजन उत्पादन स्वय कर लेने की क्षमता ने मानव को मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग सिखा दिया। पत्थर के जो भी उपकरण मानव ने इस युग मे बनाये वे लघु थे तथा कई प्रकार के होने के कारण बागोर स्थान के लघु पाषाणोपकरण उद्योग का एक अत्यन्त विकसित केन्द्र होने का साक्षी है। ऐसे उपकरण यहाँ से लाखो की सख्या मे प्राप्त किये गये है। ये उपकरण मुख्यतया चर्ट एव स्फटिक के बने है। तथा बडी कुशलता से बनाये गये थे। बहुत बडी सख्या मे लघुपाषाणास्त्रो की यहा से प्राप्ति इस बात का द्योतक है कि मानव यहा अन्य क्षेत्रो की तरह आखेट के लिये आया था व अपनी आवश्यकता के उपकरण बनाता तथा अनावश्यक सामग्री वहा पर छोड कर चला गया। ऐसा उसने मेवाड के कई स्थानो पर किया। आभूषणो मे शीशे, हड्डी व पत्थर की मणिया मिली। आवास गृहो मे पत्थरो के साथ ईंटो का प्रयोग होता था ऐसे अवशेष प्राप्त हुये है। मृत शरीर इस युग मे पूर्व-पश्चिम में स्थान पाकर उत्तर-दक्षिण दिशा मे स्थान पाने लगा। कावन तिथिया जो भी इस स्तर की ज्ञात हुई हैं वे एक बडे युग की सस्कृति की साक्षी है। वह युग जैसा कि लिखा गया है ईसा कि प्रारम्भिक शतियो तक यहा पर निवास करने वाले मानव के काय कलापो की ओर इगित करता है।

बागोर से प्राप्त पाषाण उपकरणो को लघुपाषाणोपकरण कहते है क्योकि प्राचीन पाषाणकालीन उपकरणो की तुलना मे ये उपकरण अत्यन्त छोटे आकार के है। इनकी लम्बाई सामान्यत एक सेन्टीमीटर से लेकर चार सेन्टीमीटर तक है। इन उपकरणो मे कई एक ज्यामितीय आकृति के है जो मुख्यतया आखेट के काम आते थे। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि यहा का जीवन मुख्यतया आखेट पर निभर था। ये उपकरण प्रचुरमात्रा मे घरो मे ही मिले है अत यह निश्चित है कि प्रत्येक परिवार अपनी आवश्यक्ता के उपकरण स्वय बनाता था।

बागोर उत्तर पाषाणकालीन सस्कृति का एक मात्र निवास स्थल नही है। बागोर से कुछ किलोमीटर पूर्व की ओर कोठारी नदी के ही किनारे सूरता का खेडा नामक गाव के पास ऐसा दूसरा स्थल तथा लगभग 60 ऐसे और स्थान मिले

है जो उत्तर पाषाण कालीन संस्कृति के औद्योगिक स्थान थे। ये स्थान उदयपुर, चित्तौडगढ, भीलवाडा, अजमेर, टोक, झालावाड, कोटा आदि जिलो मे फैले हुए हैं।

इस सस्कृति के निर्माता आज के भीलो के पूर्वज होगे यह अनुमान किया जा सकता है।

गणेश्वर—यह स्थान नीम के थाना (जयपुर जिला) से 15 कि मी दूर तथा जयपुर से लगभग 150 कि मी दूर है। यहा की सस्कृत पाठशाला के उत्तर मे टीलो से ताम्रयुगीन लगभग 2000 उपकरण-कुल्हाडे आदि मिले है। ऐसे कुल्हाडे अब तक भारत मे कही भी प्राप्त नही हुये है। यहा कई गैरिक मृद्भाण्ड भी मिले हैं। ताम्र उपकरणो मे तीर, बाणाग्र, चूडिया, छल्ले, बल्लम, दड, फलक, काटे, छेनिया, मणके आदि मिले है। भारत मे पहली बार इतनी बडी सख्या मे प्रागैतिहासिक काल के उपकरण, गैरिक मृद्भाण्डो के साथ, यही मिले है। ऐसे बाणाग्र, काटे, पत्तिया आदि प्राय सिन्धु क्षेत्र के स्थलो से प्राप्त हुई हैं।

यहा से प्राप्त अधिकाश बाणाग्र विभिन्न स्वरूप के है। ये पाच से साढे छ से मी तक के है। यह लकडी के ड े मे लगाए जाते थे तथा शिकार करने के काम आते थे। कुछ बाणाग्र घुमावदार है जो पक्षियो के झुड का शिकार करने मे प्रयोग किये जाते होगे। किसी बाणाग्र मे छेद नही है जैसा कि बागौर के बाणाग्रो मे मिलता है।

यहा सूक्ष्म पाषाण उपकरण भी मिले है। जिससे ज्ञात होता है कि यहा के लोग तब तक पशुओ के शिकार से ही पेट भरते थे। सभवत पडोस की खेतडी आदि की ताम्र खानो से ताम्र का उपयोग करने लग गये थे। यहा से कई भालो के पतले फलक मिले हैं। लगभग 50 मछली पकडने से काटे भी मिले हैं। गणेशवर से 60 फरसे भी मिले है जो लगभग एक किलो वजन के है, इन पर एक से छ तक बिन्दुओ मे पहचान के निशान बने हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गणेश्वर से निकलने वाली काटली नदी नोहर, सोथी व भाद्रा के पास दृप्दवती नदी से मिलती थी। गणेश्वर से 60 कि मी दूर खेतडी की खानो से ही ताम्र निकलता था और लगभग 2700 ई पूर्व मे यहा के लोग ताम्र उपकरण बनाने मे सिद्धहस्त हो गये थे। इन ताम्र उपकरणो मे 47 % शुद्ध ताबा है। ये उपकरण हडप्पा की ओर से आये लोगो के नही थे। वास्तविकता यह है कि यहा के लोगो द्वारा उधर को सभवत इन उपकरणो का अन्यत्र निर्यात किया जाता था। ये उपकरण पाकिस्तान, पजाब व हरियाणा क्षेत्रो मे भेजे गये थे जहा से वे अब उत्खनन से प्राप्त हुये है।

राजस्थान के अन्य भागो मे भी यही से ताम्र उपकरण भेजे गये थे। खुराडा (तहसील परबतसर, जिला नागोर) मे सन् 1934 मे उत्खनन से प्राप्त 103 उपकरण

जो लगभग 2000 ई पूव के है, भी यही से गये प्रतीत होते है। इन उपकरणो मे से 10 अभी भी जोधपुर सग्रहालय मे देखे जा सकते है। यहाँ से मिले नालीदार प्याला ईरान से मिले प्याले के समान ही है। अत यहा से ताम्र वस्तुये विदेशो को भी भेजा जाना सिद्ध होता है।

गणेश्वर व जोधपुरा (जिला जयपुर) से मिले गैरिक भाण्ड एक समान है। यो इन्हे लाल लेपवाले रेखाकित्त बतन, जा कालीबगा, सोथी, सीसवाल आदि के बतनो के समान है, ई पूर्व 2 00 से 1180 तक के माने जाते है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ये प्रारम्भ मे ई पूव 2500 से 2200 के बीच वहा बनने लग गये थे और यहा के लोग तब उत्तर पूव की ओर गये तब वहा भी लेते गये। गरिक भाण्ड वाने लोग सिन्धु घाटी के पूव हडप्पा या हडप्पा युग के लोग नहीं थे बल्कि गणेश्वर खेतडी क्षेत्र के थे। वे ताम्र उपकरण साबी, काटली आदि नदियो के रास्ते से देश के पूर्वी व पश्चिमी भागो मे भेजते थे।

इस प्रकार गणेश्वर के उत्खनन व खोज से पूव हडप्पा ताम्र कला की ई पूव 2800 मे विकसित होने का पता चलता है। इसे गणेश्वर-जोधपुरा सस्कृति कह सकते है। सभव है कि ऐसे और कई स्थल खेतडी क्षेत्र मे उत्खनन पर मिल जावे।

जोधपुरा (जिला जयपुर)—आर्यो को सस्कृति का विस्तार राजस्थान मे और कहा हुआ यह देखने के लिये जयपुर से 98 किलोमीटर तथा बैराट से 15 किलोमीटर की दूरी पर जोधपुरा नामक स्थान पर राजस्थान पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई की गई। यहा पर गरिक रग के पात्र, टीले के सबसे नीचे स्तर से, जिनमे बैठकदार तश्तरिया मुख्य है, अधिकतम गडे मिले उनके साथ ही आकारहीन ताम्रखण्ड भी यहा से प्राप्त हुये है। साथ ही साथ यहा के तीसरे स्तर से चित्रित स्लेटी रग के पात्र भी मिले। इन पात्रो मे कटोरो तथा पानी पीने के पात्रो के अवशेषो के साथ-साथ तश्तरियो के भी अवशेष है। सलेटी रग के पात्रो पर काली रेखाओ से चित्रण कही कही बहुत ही सु दर है और वे कलापूण भी है। इन पात्रो के साथ यहाँ से लोहे की बनी वस्तुओ की भी प्राप्ति हुई है। इस स्तर की उपलब्धिया, जो विशेषतया उल्लेखनीय है, वे बिना रगे काले और लाल पात्र, गेरु के रग के पात्रो और चित्रित सलेटी रग के पात्रो के युगो के बीच के युग के प्रतिनिधित्व करने वाले है। यहा के काले व लाल रग के पात्रो मे विशेष तथा उल्लेखनीय है तश्तरी व प्याले। यहा के पात्र नोह मे प्राप्त पात्रो के समान हैं। उनका स्वरुप आहाड से प्राप्त काले व लाल पत्रो मे सवथा भिन्न है। इस स्तर से प्राप्त काले व लाल पात्र तथा काली चमक के पात्र पूरी तरह से पके है।

चित्रित सलेटी पात्र अन्दर तथा बाहर को नाना प्रकार की कला के आधार पर

हस्तिनापुर तथा नोह् से प्राप्त पात्रो से सहज मे ही होड करते है। इन पात्रो मे मुख्यतया तश्तरिया, प्याले व कटोरे हैं।

जोधपुरा की विशेषता एक और भी है। काले व लाल पात्र इस स्तर से भी चित्रित स्लेटी पात्रो के साथ प्राप्त होते है। अन्य वस्तुओ मे जो इस स्तर से प्राप्त हुये है—लोहे के अस्त्र, मृण्मय घटाकार मणके, हड्डी की तीले, हड्डी के बडे छेदवाले पदाथ तथा पत्थर के मणके। यहा के दो अन्य स्तरो से ऐतिहासिककालीन सस्कृति की झाकी मिलती है।

चौथे स्तर से सम्वधित युग के निवासी उत्तरी चमकदार पालिशवाले पात्रो के साथ साथ बिना चिकनाहट के लाल पात्रो का प्रयोग करते थे। उनके प्रयोग के पात्रो मे प्याले, कटोरे तथा घडे मुख्यतया उल्लेखनीय थे। महत्वपूर्ण पुरावशेषो मे जो इस स्तर से प्राप्त हुये हैं उनमें उल्लेखनीय लोहे के बने तीरो के अग्रभाग तथा लोहे की कीलें शख निर्मित चुडियो के टुकडे हाथ के बने कुबडे बैल की आकृतिये तथा पाषाण निर्मित मणके है।

यहा के पाचवे अर्थात अतिम स्तर से शु ग व कुषाणकालीन पात्रो की प्राप्ति हुई है। इससे सिद्ध है कि इस स्थान पर शु ग व कुषाण काल मे आबादी थी। इस युग मे लाल रग के पात्र आजकल की तरह चाक के द्वारा बनाये जाते थे। पात्र मध्यम आकार के होते थे पर वे पतले होते थे। पात्रो पर चिकनाहट की जाती थी। वे खुरदरे न होकर फिसलाहट को स्थान देते थे। साधारण आकार के पात्र जिनमे ढक्कनदार व बिना ढक्कन के प्याले व कटोरे तथा टोटीदार छोटे छोटे पात्र सम्मिलित थे, यहा से प्राप्त हुये है। ऐसे पात्रो के टुकडे भी प्राप्त हुये हैं जिनपर त्रिरत्न एव स्वास्तिक चि ह् भी बने है। इस युग के महत्वपूर्ण पुरावशेषा मे लौहास्त्र, मृण्मय घटाकर मणके, पाषाण के मणके और एक ताम्रमुद्रा उल्लेनीय है। यहा से लोह भट्टिया मिली है जो लोह उपकरण बनाने के काम आती थी। इन भट्टियो मे उपलो का प्रयोग होता था। जोधपुरा मे मानव आवास के चिह्न फर्श और ईंटो की दीवार के रूप मे मिले है। मकान की छतो पर खपरेलो का प्रयोग होता था। छप्पर छाने का भी रिवाज था। यहाँ से मिली वस्तुओ से यहा का कालक्रम ई पूव 2500 से ई सन् 200 तक का ज्ञात होता है।

कालीबगा—जहा तक पता चला है सिन्ध, पजाब व राजस्थान की प्रारम्भिक सभ्यताये नगरीय सभ्यताये थी। सिन्ध मे मोहनजोदडो, चन्हुदडो, अमरी, कोट डिजी, पजाब (पाकिस्तान) मे हडप्पा, पजाब (भारत) मे रूपड, गुजरात मे रोजडी व देसलपुर की भाति राजस्थान के गगानगर जिला के कालीबगा मे भी उत्खनन मे नगर का ही पता चला है। इसका उत्खनन ब्रजवासी लाल व वी के थापड द्वारा सन् 1961 मे आठ वर्षो तक किया गया।

उत्तरी राजस्थान के इस क्षेत्र मे वैदिक सरस्वती एव दृषद्वती नदिया कभी बहा करती थी। सरस्वती वैदिक काल मे बडी पवित्र नदी मानी जाती थी। यह नदी हिमालय की सिवालिक पहाडियो से निकलती थी। अब यह नदी घग्घर कहलाती है। वर्षात के बाद यह हनुमानगढ, पीलीबगा, सूरतगढ व अनूपगढ,के धोरो के मैदानो मे सूखी रहती है। सर्वेक्षण के आधार पर इस क्षेत्र मे कई हडप्पाकालीन स्थलो की खोज भी की गई थी। प्राचीन सरस्वती (जिसको वर्तमान मे 'घग्घर' कहा जाता है) के दक्षिणी तट पर स्थित कालीबगा नामक स्थान पर केन्द्रीय पुरातत्व विभाग द्वारा विधिवत खुदाई की गई। कालीबगा हनुमानगढ नगर के पास है। उत्खनीत स्थल वर्तमान गाव से पौन किलोमीटर दूर है। घग्घर नदी प्राचीन काल मे यहा पर लगभग 5 मीटर गहरी बहती थी। अभी तो यह रेत से भरी दिखाई देती है। यहा पर किये गये उत्खनन द्वारा सिद्ध हुआ कि अनुमानत आज से 4000 वर्ष पूव एक अत्यन्त सभ्य मानव जाति यहा विकसित हुई। कालीबगा के उत्खनन से प्राप्त वस्तुओ मे नगर निर्माण योजना हेतु सुनिश्चित मेप का अनुसरण किया जाना प्रकाश मे आया है। उस समय सडको व गलियो का निर्माण उत्तर से दक्षिण,तथा पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर हुआ करता था। उस समय प्राय कच्चे इटो के मकान बनाये जाते थे। प्रत्येक घर के खुले चौक के अतिरिक्त चार या पाच बडे-बडे कमरे होते थे। काम मे आये हुए गन्दे पानी को बाहर निकालने के प्रबन्ध हेतु पक्की ईटो की नालिया एव शोषण पात्र का प्रयोग होता था।

इस युग की सभ्यता के प्राप्त अवशेषो मे सादे तथा रगीन मृतिका पात्र खण्ड शस्त्रो के मान-चिनित चपटे फल, ताम्बे के हथियार, आभूषण, कडी मिट्टी की आकृतिया, पुरूषाकृति को स्थान देने वाले खिलौने तथा पत्थर के बाट के अतिरिक्त खडिया-मिट्टी की बनी ऐसी चिन्हित मुद्राये भी सम्मिलित है जिन पर आदश हडप्पा लिपि मे उपाख्यान (लेख) भी अकित है। दुर्भाग्यवश जो लिखा मिलता है है वह अभी तक पढा नहीं जा सका है।

कही-कही पशु आकृति, विविध नाट्य दृश्य, चिन्हित मोन पात्र व सकडे पेंदे के जल पीने के प्याले, चिकनालाल पृष्ठ भूमि पर काले रग से चित्रित आकृतियुक्त मृद भण्डावशेष चपटे गोल छेद वाले गुटके व कडी मिट्टी से बने खिलौने की गाडियो के नमूने, चपटी तथा गोल दोहरी उभरी हुई खडी-मिट्टी के चिमटिये तथा चमकीले पत्थर के लम्बे फल,जो वास्तव मे हडप्पा की सभ्यता के प्रतीक है, इस प्राचीन स्थान से प्राप्त हुये है।

कालीबगा के दो टीलो मे जहा पर खुदाई हुई - एक जो पूव मे है बहुत बडा और ऊचा था। दूसरा उसकी अपेक्षा पर्याप्त छोटा था। यद्यपि दोनो मे हडप्पा-कालीन सडके, भवन तथा नालियो के साथ साथ एक सुन्दर नगर-योजना के चिन्ह

प्राप्त हुए है, पर पश्चिमी टीले की खुदाई के आधार पर एक बहुत बडा कच्ची मिट्टी का चबूतरा प्रकाश मे आया है। इस चबूतरे से हडप्पा एव मोहन जोदडो से प्राप्त नगर की दीवार के अवशेप प्राप्त हुवे है। मोहनजोदडो और हडप्पा से हमे भवनो की निश्चित निर्माण विधि का पता नही चलता है पर कालीबगा से प्राप्त भवनो के अवशेपो से उस समय की स्थापत्य कला पर प्रकाश पडता है। कच्ची ईंटो से बने भवन पर मिट्टी का लेप ऊपर से किया जाता था। इनकी भूमि पके मृण्मय उपलो से पाटो जाकर मिट्टी से लीपी जाती थी और मृण्मय उपलो मे लकडी व कोयलो का मेल होता था। ऐसे ढग से बनी भवनो की भूमि काफी दृढ होती थी। मृण्मय उपलो का प्रयोग सवत्र भवनो की भूमि सुदृढ बनाने मे किया जाता था।

कालीबगा से भवनो की छतो के बनाने की विधि का भी अनुमान लगाया जा सकता है। यह हमे न मोहनजोदडो से पता चलता है न हडप्पा एव लोथल से ही किन्तु कालीबगा से हमे पता चलता है कि भवनो की छते लकडी की बल्लियो से पाटी जाती थी। इन बल्लियो को कच्ची मिट्टी से अच्छी प्रकार से दवा देते थे।

छोटी वस्तुओ मे जो अवशेपो के रूप मे कालीबगा से प्राप्त हुये है, एक मृण्मय मानव सिर है जिसका मस्तक पीछे की ओर जाता हुआ है तथा जिसकी आखे अण्डाकार है तथा जिसकी नाक सीधी नोकदार है। उसके नीचे के होठ मोटे तथा उसकी ठुड्डी सुदृढ है। ऐसी आकृति मोहनजोदडो से भी प्राप्त हुई है। पात्रो के कुछ टुकडो पर दाहिनी से बाई ओर लिखी जाने वाली, सिधु नदी की घाटी मे निवास करने वालो के द्वारा प्रयोग करने वाली लिपी मे लेख है। मिट्टी के पात्रो मे गले के चारो ओर एक चौडा काला घेरा है और उसमे लगातार घेरो तथा सजावट के अन्य प्रकारो का समावेश है। पात्रो मे छोटे-बडे कई प्रकार के गोलाकार पात्र मिले है। इनका किनारा उधर की ओर मुडा है। यहा पर जिस प्रकार के पात्र पाये गये है वे सिंध (पाकिस्तान) के कोटडीजी स्थान से भी प्राप्त हुए है। कोटडीजी की सभ्यता को विद्वानो ने पूर्व हडप्पाकालीन माना है। कालीबगा मे की गई 1962-63 की खुदाई ने इस क्षेत्र मे हडप्पाकालीन सस्कृति से पूव की सस्कृति की विद्मानता को पुष्ट किया है। पाच भवन स्तर यहा से प्राप्त हुये है। छ प्रकार के मृदपात्र यहा से प्राप्त हुये है। जो निवासगृह प्रकाश मे आये उनकी ईंटो का आकार 30×20×10 से मीटर था। ये ईंटें बडी कुशलता से जमाई गई थी ताकि मकान सुदृढ रहे। कच्ची मिट्टी की ईंटो के साथ-साथ पक्की मिट्टी की ईंटो का भी प्रयोग मिला है। खाना पकाने के लिए चूल्हे किस प्रकार के प्रयोग होते थे यहा से ज्ञात हुआ है। चूल्हे और अगीठी की दीवारे कच्ची मिट्टी से पोती जाती थी और जिस ओर खुली होती थी उन पर दीवारें झुकी रहती थी। ईधन रखने के लिये चूल्हो और अगीठियो का मुख सुदर ढग से खुला रहता था।

ये चूल्हे वतमान कालीन तन्दुरो के समान थे। तन्दुरो की प्रथा पूर्वी राजस्थान

मे नही थी। यह पश्चिमी एशिया मे सामान्य थी। इससे यहा के लोगो का ईरान व पश्चिमी एशिया से निकट सम्बन्ध होने का पता चलता है। रेडियो कार्बन तिथि जो कालीबगा के ऊपरी स्तर से वैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर प्राप्त हुई है वह 4070 ± 115 बी पी +3980 ± 115 बी पी है। अन्य परीक्षणो से भी यह ज्ञात होता है कि कालीबगा मे हडप्पा संस्कृति लगभग 300 वर्ष रही और यह 2000 ई पू के प्रारम्भ मे समाप्त हो गई। पूर्व हडप्पाकालीन संस्कृति की प्राचीनता वैज्ञानिक ढग से अद्यावधि नही जानी जा सकी है। अवशेषो के आधार पर सभवत यह हडप्पाकालीन युग से 100 वर्ष पूर्व पनपी तथा अस्तित्व मे रही। स्टिवाइट पत्थर की ऐसी रेखांकित मुहरे भी यहा से प्राप्त हुई है जिन पर एक ओर पशु की आकृति बनी हुई है तथा दूसरी ओर बहुछिद्र धारी पिण्ड है। कुछ मृदपात्रो के टुकडो पर स्फुट लेख हैं। प्राप्त मुहरो मे से कुछ कच्ची मिट्टी की तथा कुछ पक्की मिट्टी की है। यहा से ऐसे मणके भी प्राप्त हुए हैं जो फायम कार्नीलियन तथा स्टियाइट के बने है। मृण्मय कलाकृतियो मे पशुओ तथा पक्षियो का भी अकन है। यहा से बहुत बडी सख्या मे चुडिया भी मिली है। ये चुडिया मिट्टी की तथा सीप की हैं। ताम्बे के औजारो के साथ ही यहा से तोलने के बाट विभिन्न प्रकार के पत्थरो के मिले हैं। मिट्टी तथा चर्ट पत्थर के बने खेलने के गुट्टे भी यहा से प्राप्त हुए हैं। पुरातत्व विभाग ने कालीबगा मे पुरातात्विक अवशेषो के प्रदर्शन हेतु एक सग्रहालय अब स्थापित कर दिया है।

इस प्रकार कालीबगा की सभ्यता सिन्धु सभ्यता के समान ही है लेकिन इसमे कुछ नई विशेषतायें मिलती है। प्रथम विशेषता यहा दो प्रकार के आवासगृह मिलना है—पश्चिम की ओर गढ का मिलना है जो पूर्ववर्ती हडप्पा पूर्व काल की बस्ती पर बना है। यह सयोग की बात है कि हडप्पा, मोहनजोदडो व कालीबगा मे गढ पूर्ववर्ती बस्तियो पर ही बने है। दूसरे आवासगृह पूर्व की ओर है और निचली सतह पर है। गढ व निचली सतह के आवास गृहो को घेरने वाली चार दिवारी कच्ची ईंटो से बनी है। इस चार दिवारी की पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाली 23 मीटर दीवार को खोला गया है। शहर की 5 उत्तर-दक्षिण व 3 पूर्व पश्चिम सडको तथा पूर्व-पश्चिम की कुछ गलियो को जाचा गया है। इससे स्पष्ट हो गया है कि यह नगर सुनियोजित ढग से बनाया गया था। मकान मालिको द्वारा सडको व गलियो मे वर्तमान काल की भांति कोई अतिक्रमण नही दिखाई देता है। सडको व गलियो के मोडो पर गाडियो से मकानो को हानि पहुचाने से रोकने के लिये लकडी के पट्टे लगाये जाते थे। मकानो के बाहर चौरस चबुतरे बने थे ताकि मकान के बाहर बैठकर लोग गप्प सप्प कर सके या मजदूर विश्राम ले सके या उससे घोडे, ऊँट आदि पर चढ सके।

मकानो का गन्दा पानी बाहर निकालने के लिए पकी ईंटो की नालिया बनी

हुई थी। इन नालियो का पानी गली मे खुदे होदो मे जाता था। प्रत्येक मकान दो या तीन ओर खुला था जैसा अब चण्डीगढ मे है। ज्यादातर मकान तीन ओर खुले थे। मकान चतुशाला पद्धति पर बने थे अत हवा और प्रकाश काफी आता था। मकानो के चौक मे एक ओर कुआ भी होता था। शेष तीन ओर 6 या 7 कमरे बने होते थे। कई मकानो मे छतो पर जाने के लिये सिढिया भी बनी है। मकान की छते समतल थी।

कालीबगा का गढ चौकोर है। यह दो बराबर भागो मे बटा है। इसके चारो ओर चार दिवारी बनी है। दीवार की चौडाई 3 से 7 मीटर है। इसकी सुदृढता के लिये बुर्ज बने है। इनको बनाने के लिए 40×20×10 सेण्टीमीटर और 30×15×7.5 सेण्टीमीटर की ईटो का प्रयोग किया गया है। दक्षिणी किनारे पर 5,6 चबुतरे बने है जो ईटो से बने है। प्रत्येक चबुतरे पर चढने के लिए सिढियें है। एक चबुतरे पर 1×1.25 मीटर का गोलाकार हवन कुण्ड है जिसमे कुछ हड्डिया मिली है। सम्भवत यहा पूजा स्थल हो। पास मे ही एक कुआ व यज्ञवेदी है जिससे इसकी पुष्टी होती है। ऐसी ही यज्ञवेदिया लोथल, अमरी, हडप्पा, मोहनजोदडो आदि मे भी मिली है।

कालीबगा के लोग मासहारी व निरामिषाहारी थे। वे गेहूँ व बाजरा का प्रयोग करते होगे भले ही इनके अवशेष नही मिले है। पशुओ मे गाय, भैंस, शूकर, बारासिघा, हाथी, गधा, ऊँट आदि की हड्डिया मिली हैं।

वे मृतको को गाडते थे। गढ के पश्चिम की ओर 300 मीटर चौकोर कब्रगाह मिली है। मृतक का सिर उत्तर की ओर रखकर गाडा जाता था। मृतक के सिर के चारो ओर घडे, तस्तरिया, प्याले आदि रख दिये जाते थे। कुछ मृतको के पास गहने भी रख दिये जाते थे। एक बच्चे के मस्तिष्क की खोपडी पर छ गोल छेद भी मिले है। इससे यह ज्ञात होता है कि उसका कपाल शल्य कम किया गया था। ऐसे कपाल शल्य कम करने की प्रथा सभी देशो मे 3000 ई पूर्व प्रचलित थी। उत्तरी गुजरात मे लगनाज मे भी ऐसी खोपडी मिली है। स्पष्ट है कि गुजरात, सिन्ध, पजाब आदि मे भी लगभग 5000 वर्ष पूर्व कपाल शल्य कम की प्रथा चालू थी।

मोहनजोदडो की भाति यहा, लिग, योनी, मातृशक्ति आदि की मूर्तिया नही मिली है अत यहा वह धार्मिक भावना नही थी। यहा के लोग कौन थे? यह भी स्पष्ट नही है। क्या व वेदकालीन आर्य थे? स्पष्ट उत्तर नही दिया जा सकता है जब तक कि सिन्धु लिपि को पढा नही जाता है यो सम्भवत वे ईरान से आये आर्य थे। उन्होने ही यहा सरस्वती नदी के किनारे बस कर वेदो की रचना की होगी। यही इस क्षेत्र की महत्ता है।

आहाड

आहाड उदयपुर नगर मे बनास नदी की एक शाखा आहाड नदी के किनारे बसा है। यहा के एक ऊँचे टीले, जिसे स्थानीय लोग धूलकोट कहते थे, का उत्खनन आर सी अग्रवाल ने कराया था। बाद मे वहा वी एन मिश्रा व एच डी साकलिया ने प्रागैतिहासिक युग मे दक्षिण पूर्वी राजस्थान मे बनास और चम्बल नदियो की घाटियो मे सास्कृतिक दशा को और अच्छी तरह जानने के लिये आहाड (1954-1962) तथा गिलूड (1959-60) मे खुदाई कराई। इसमे हमे आहाड के अवशेष मृद्‌भाण्डो के आधार पर 'आहाड सस्कृति' से परिचित हुये। ये मृद्‌भाण्ड रगे हुये काले और लाल है तथा अब 'आहाड-सस्कृति' की छाप लगाये हुये है। 'आहाड सस्कृति' का मुख्य केन्द्र दक्षिण-पूर्वी राजस्थान था। इन पात्रो का ऊपरी भाग काला तथा पेदा लाल है। यही नही काले भाग पर सफेद रग से कलात्मक चित्र भीतर व बाहर पाये गये है। प्रारम्भिक युगो मे आहाड निवासियो ने कई प्रकार के मृ पात्रो का निर्माण किया। वे गुण और परिणाम दोनो मे बहुत है। वे समाज की पूरी आवश्यकताओ की पूर्ति करते थे। इस पात्र-निर्माण के क्षेत्र मे रगीन काले और लाल रग के पात्रो ने अच्छा योग दिया। आहाड से कुछ ऐसे चमकदार लाल रग की चिकने पात्र मिले है जिनके गदन तथा कन्धे अलकृत है। उन पर कटावदार काम होने के साथ साथ छेददार एव अलकृत है। इनमे से कुछ वडे होने के नाते अन्न सग्रह का काय देते थे।

इनके साथ ही जैसा कि आगे बतलाया गया है दो-तीन प्रकार के पात्र काले, चकतेदार सलेटी रग के भूरे, तथा साधारण लाल पात्र भी मिले है। ये सब किसी न किसी प्रकार से अलकृत थे। कुछ पात्र केवल गले या कधे तक सजे थे तथा कुछ पेट तक, कुछ को बालू की सहायता से खुरदरा बना दिया गया था। वे सम्भवत खाना पकाने के काम के लिये होने के कारण भूमि मे गाड दिये जाते थे। ये सब नीचे पतले तथा उपर मोटे बने थे। इनका ऊपर का भाग ही अधिक मिला है।

दो या तीन दूसरे प्रकार के मृद्‌पात्रो की भी प्राप्ति आहाड से हुई है। एक वे है जो खूब पके है और जो उगली से ठनकाने से शब्द करते है। उनकी मजबूती ऐसी ही है जैसा कि पत्थर के पात्रो की। भूरे, सन्तरे व चाकलेट रग मे हल्की फिसलने वाली आभायुक्त ये पात्र देखने मे वडे चमकदार है। उन पर खुब पालिश लगी प्रतीत होती है। अब तक केवल छोटी थालिया या तश्तरियो के टुकडे ही प्राप्त हुये है। ऊपर का घूमा भाग तथा गले के ऊपर का भाग जो यहा अवशेषो के रूप मे प्राप्त हुआ है वह कभी कभी बैठको के साथ भी मिला है। इन सबकी बैठक वडी कलापूर्ण है। पतले भूरे रग के बतन तथा काले लोहित वर्ण की भूमि पर अर्द्ध श्वेत रग के आभायुक्त पात्र भी आहाड से पर्याप्त सख्या मे प्राप्त हुए है। सम्भवत ये पात्र ईरान से भारत मे आये थे क्योकि इनकी प्राप्ति वहा उसी

युग की सामग्री के साथ हुई है। यही नहीं अन्य इसी प्रकार की सामग्री इस सम्भावना की पुष्टी करती है।

इस शैली के चित्रित काले तथा लाल अथवा रगभेद से काले, भूरे अथवा लाल काले पात्र कदाचित आहाडकालीन युग मे मेज पर रखने वाले (डीलक्स पोट्री) कहे जा सकते है। ऐसे मृदपात्रो मे छोटे प्याले, कम गहरी थालिया तथा छोटे ऊँचे-सकडे गदन के छोटे गोल पात्र सम्मिलित है। ये पात्र सभवत खाने पीने के काम मे आते थे क्योंक उनके निर्माण मे अतिम रुप देते समय सावधानी वरती गई। उन पर बाहर और भीतर पालिश करके चिकनाया गया और विदुओ या टेढी रेखाओ द्वारा चित्रित किया गया है। प्रतिदिन प्रयोग मे आने वाले पात्र भी आहाड तथा गिलु ड से प्राप्त हुए है। इन पात्रो मे वड सचयपात्र एव रसोईघर के छोटे पात्र भी सम्मिलित है। रोटी सेंकने के तवे भी उत्खनन से प्राप्त हुए है। इन पात्रो मे बडे सचयपात्र एव रसोईघर के छोट पात्र भी सम्मिलित है। रोटी सेकने के तवे भी उत्खनन से प्राप्त हुए है। पीसने के लिये काम मे आने वाले चौरस सिलबट्टे बनास नदी के तट पर आहाड और गिलु ड से प्रागतिहासिक युग क लोगो के दैनिक प्रयोग की वस्तुओ का पूण चित्र प्रस्तुत करते है। यद्यपि आहाड के उत्खनन से कोई खाद्यान नही प्राप्त हुए है तथापि इस प्रदेश के मुख्य वतमान आहार से अनुमान लगाया जाता है कि चावल, जवार, गेहूँ, मक्का, बाजरा, जौ, चना आदि प्रादेशिक खाद्यान्न उस समय भी बोये और खाये जाते होगे। वे लोग मासाहारी भी थे। गाय, सूवर, वकरा भेड, मछली, कछवा, आदि खाते थे। भोजन पकाने के पात्र, सेकने के तवे, कढाई, वडे तथा छोटे चपटे नतोदर सतह की पाषाण सिल, गोलबट्टे (लोढे) और मूसल आदि की प्राप्ति यह सिद्ध करते है कि इस क्षेत्र मे प्रागैतिहासिक काल मे मानव ने आखेटक एव खाद्य सग्रह की स्थिति को समाप्त कर अपना आहार स्वय उत्पादित करना प्रारभ कर दिया था। आहाड से उत्खनन द्वारा पात्र, कढाई तथा खाद्य सामग्री भरने के दैनिक उपयोग के घडे आदि के साथ ही विना हत्थे के जल पीने के पात्र, छोट कटोरे तथा वठकदार थालिया भी प्राप्त हुई है। सिंधुघाटी की सभ्यता के सूचक किसी भी स्थल से नही प्राप्त होने वाले ऐसे बिना दस्ते के छोटे जलपात्रो की प्राप्ति राजस्थान का, ईसा के लगभग 1500 वष पूव ईरान से सवध वतलाती है। डॉ साकलिया के मतानुसार ऐसे पात्र ईरान के टेपेमियाल्क, हेपेहिसार तथा शाहटेपे से प्राप्त होने के कारण सभवत राजस्थान व ईरान का सास्कृतिक सवध इस प्राचीन युग मे रहा हो। इसी प्रकार की समानता उस नालीदार टोटी के कटोरे मे भी प्राप्त होती है जो नागौर जिले के परवतसर तहसील की खुरडी ग्राम से प्राप्त किया जाकर जोधपुर सग्रहालय मे सुरक्षित है इसी प्रकार का कटोरा ईरान के टेरेगिया से भी प्राप्त हुआ है। इस प्रकार लगभग 20 से 10 शताब्दी ई पू राजस्थान का ईरान से सास्कृतिक सम्बन्ध रहा होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है।

तत्कालीन मानव समाज द्वारा प्रयुक्त अस्त्र शस्त्रो की कल्पना भी हमे आहाड से प्राप्त हुई हैं। इन अस्त्रो मे ताम्र-निर्मित शस्त्रास्त्र भी थे। सभवत घरेलु तथा कृषि कार्यो के लिये ताम्र के चाकू के फल तथा हसिये प्रयोग होते थे। आहाड मे उत्खनन के परिणामस्वरूप खाई 'ए' मे कई सामान्य चपटे उन्नतोदर धार के ताम्र कुठार तथा एक अलकृत भाण्ड के भीतर फश के नीचे से प्रकाश मे आये है।

उन दिनो आहाड निवासी सभ्य तथा धनी न होकर बहुत साधारण आय के थे। यह उस काल के स्त्रियो द्वारा प्रयुक्त आभूषणो से ज्ञात होताहै। ऐसे कुछ आभूषण खुदाई से प्राप्त हुए है। प्राप्त आभूषणो मे अवशेष अलकृत नक्काशीदार व पकी हुई मिट्टी के है। कुछ मे सूक्ष्म रेखाकित और इन्द्रगोप मणिया प्रयुक्त होती थी। पक्की मिट्टी के वर्तुलाकार कर्णफूल भी उस समय स्त्रियो द्वारा प्रयुक्त होते थे। तत्कालीन समाज मे बच्चे ऐसे खिलौने से खेलते थे जो मिट्टी के बने थे तथा पशुओ की आकृति के थे। ऐसे खिलौनो से उस युग के पशुओ के बारे मे भी जानकारी प्राप्त होती है। प्राप्त खिलौनो मे मेढे, हाथी, श्वानदि पशु हमे उस युग के पशुधन की ओर सकेत देते है।

आहाड की खुदाई से दक्षिण-पूर्वी राजस्थान मे ईसा-पूर्व के इस युग मे मानव आवासगृह की शैली का पता चलता है। उत्खनन से प्रकाश मे आये भवनो के खण्डहर तत्कालीन भवन निर्माण का स्पष्ट बोध कराते है। उन दिनो नीव मे पत्थर की दीवार उठाकर मकान बनाते थे। यह खडे पत्थर के टुकडो से बनी दीवार, नीव एव अशत ऐसे भवन जिनका ऊपरी भाग पकी हुआ तथा कच्ची मिट्टी की ईटो से बने है, खडे करने के काम आती थी। दीवारो के मुख्य भाग श्रेष्ठतर खडे हुए चौरस पत्थर से निर्मित होती थी जो अजीब ढग से आडे-टेढे जमाये जाते थे। पत्थरो का दूसरा किनारा बेडोल है। प्राप्त भवनो मे सबसे छोटे आकार के घर 10×10' या कुछ अधिक या बडे से बडे '45×15' नाप के पाये गये। मकानो के पुराने हो जाने पर उसी स्थान को समतल कर नये मकान बना लेते थे।

उन दिनो मिट्टी के झोपडो को भी बनाने मे लोग नीव और दीवारो को रमणीय करने हेतु चमकीले बिल्लोरी पत्थर के दाने तथा चट के टुकडे मिट्टी मे मिला दिया करते थे। यह ध्यान देने की बात है कि चमकीले बिल्लोरी पत्थर के दानो का प्रयोग भवन निर्माण हेतु इतिहास प्रारम्भ होने से पूर्व के युग से चला आ रहा है और आज भी राजस्थान मे प्रयोग मे आ रहा है। नदी की इकट्ठा की गई सुन्दर काली मिट्टी भी घरो का फश बनाने के काम आती थी। किन्तु मिट्टी के पात्र बनाने मे लोग नदी की इकट्ठी की गई सुन्दर बालू तथा भोडल (अभरक) का

प्रयोग करते थे। इस स्थान पर ऐसी मिट्टी बहुतायत से उपलब्ध होती है। घरों मे वस्तु सग्रह करने के पात्रो के साथ साथ बडी-बडी भट्टियाँ या बडे चूल्हे भी मिले है। खुदाई 'डी' से प्रकाश मे आई एक भट्टी या प्रकाश मे आया एक बडा चूल्हा तथा साथ ही उस पर रखकर पकाने के बडे पात्र के अवशेष दर्शक को सहज मे ही उस स्थल का कभी एक बडे परिवार के निवास का आभास देते है। सम्भवत ऐसे बडे एव सयुक्त परिवार का खाना उस युगमे एक स्थान पर ही बनता था।

जनजीवन की झाकी से सबधित अन्य कुछ फुटकर प्रमाण भी खुदाई से प्राप्त हुये है। यहा का मुख्य उद्योग ताम्बा गलाना और उसके उपकरण बनाना था। इसका प्रमाण यहा से लघु पाषाण उपकरणो का न मिलना बल्कि 5 ताम्र कुल्हाडो व ताम्रास्त्रो का मिलना है। साथ ही एक घर मे ताम्बा गलाने की भट्टी भी मिली है। आहाड के आसपास के क्षेत्रो मे भी ताम्र की खदाने है ही। यहा ताम्बे का प्रमुख उद्योग होने से यह बस्ती ताम्बावती के नाम से प्रसिद्ध थी। बाद मे यहा धूल का बडा टीला हो जाने के कारण धूलकोट कहलाने लगा।

आहाड से प्राप्त पकी हुई मिट्टी से बने घरो के पक्तिबद्ध निर्मित शोषणगर्त दशको की उन दिनो की शव विसर्जन सस्कार पद्धति का परिज्ञान कराते है। आहाड के एक टीले के उपरी भाग मे ही उत्खनन से प्राप्त एक शोषणगत तथा पास मे स्थान पाने वाले मिट्टी के घर यह सिद्ध करते है कि प्रागैतिहासिक युग मे किस प्रकार शव विसर्जन किया करते थे। प्राप्त सामग्री से ज्ञात होता है कि शव को आभूषण सहित गाडते थे तथा शव का मस्तक उत्तर और पैर दक्षिण की ओर रखते थे।

रेडियो कार्बन तिथि के आधार पर आहाड की सस्कृति ई पूर्व 1800 से 1200 की है। इस कालक्रम की पुष्टि इससे भी होती है कि आहाड से प्राप्त छेददार मृण्मय मणिया आकार और प्रकार मे ठीक वैसी ही है जैसी कि मध्य एशिया से प्राप्त हुई है और उनका भी काल लगभग यही आका गया है।

गिलुण्ड —मेवाड क्षेत्र की दूसरी खुदाई भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा गिलूण्ड स्थान पर की गई थी। गिलुण्ड उदयपुर से उत्तर-पूर्व मे 45 मील दूरी पर स्थित है।

यहा पर दो बडे टीले बनास नदी के दाहिने तट से डेढ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। उनमे से एक 14 मीटर ऊँचा तथा दूसरा 8 मीटर ऊँचा है। दोनो टीलो की खुदाई से जो अवशेष मिले वे ताम्रयुग के परिचायक है। पूर्वी टीले की खुदाई से प्राप्त अवशेषो से पता चला कि वहा पर आबादी ताम्रयुग से लेकर ऐतिहासिक युग तक रही पर पश्चिमी टीला ताम्र-मृदपात्रयुग के पश्चात् आबाद न रह सका।

यहा की खुदाई से चार युगस्तर-विभाजन किया जा सकता है। इनमे से एक भवन अवशेष 100×80 फुट का प्रकाश मे आया। इसमे चार समानान्तर-उत्तर-दक्षिण जाने वाली दीवारे मिली। ये दीवारें दक्षिणी किनारे पर पूर्व पश्चिम दीवार से जुडी हुई मिली। जो दीवारे प्रकाश मे आई वे आकार मे 13×5 1/3 फुट की पाई गई और कच्ची मिट्टी की ईंटो की बनी पायी गई। समानान्तर दीवारो के बीच का स्थान बालू से भरा गया था किन्तु अदर एव बाहर की दीवारो पर थोडे चूने मे गारा मिलाकर लेप लगा दिया था।

यहा से एक कच्ची मिट्टी का भवन, जिसमे एक चूल्हा था, मिला। इसमे एक स्थान पर जली ई टे भी मिली।

पक्की ई टो से बनी एक दीवार के अवशेष से जो 36'×1'10" के आधार की है और जिस पर मिट्टी, बालू तथा चूने का लेप है हमे उस स्थान पर कभी एक बडी आबादी के निवास का अनुमान होता है। यहा से प्राप्त ईंटे आकार मे 14"×6" ×4" को होने से हमे उस स्थान पर ताम्र पाषाण युग मे विशेष महत्व की जानकारी होती है।

यहा से प्राप्त भवन जो कच्ची मिट्टी की ई टो के बने मिले है, बाँस की खपच्चियो सें लाल मिट्टी से पाटे जाते थे। इन भवनो मे जो चूल्हे मिले है वे पोते हुए हैं। उनके साथ लगातार चूल्हे हैं। कुछ चूल्हो की लम्बाई 9 फुट चौडाई 6 फुट और गहराई 2 फुट है। इनकी एक कतार मे लाने के लिये 1/2 इच का सफेद मिट्टी का प्लास्तर किया गया है। सफेद मिट्टी मे बालू के साथ साथ वनस्पति से प्राप्त राख मिला दी जाती थी। गिलू ड की सभ्यता आहाड से मिलती हुई होते हुए भी ताम्र पाषाण युग की उस सस्कृति की परिचायक है जिसकी विशेषता उन बडे भग्नावशेषो मे निहित है जो कच्ची मिट्टी, बिना पकी तथा पकी ई टो से निर्मित किये गये थे। गिलू ड से प्राप्त मृदभाण्ड आहाड की तरह पाच प्रकार के हैं। चित्रित काले और लाल बर्तनो के टुकडो के अतिरिक्त यहा से प्राप्त मिट्टी के बर्तन के टुकडे (1) सादे (2) काले (3) पालिशदार भूरे (सलेटी) (4) लाल और (5) कुछ काले, चिकने लाल और लाल भूमि पर सफेद र ग को स्थान देते हुए रगीन कारीगरी को स्थान देने वाले (बहुरगी) पात्र हैं। अर्द्धश्वेत पर काले तथा लाल पर काले रग को स्थान देने वाले पात्र ऊपरी स्तर से तथा शेष नीचे के स्तरो से गिलू ड से प्राप्त हुए है।

यद्यपि यहा से प्याले एव तश्तरिया कलात्मक नमूनो को अदर बाहर दोनो ओर स्थान देते हुए प्राप्त हुई हैं पर लाल रग मे और लाल पर काले रग मे बैठकदार तश्तरी, ऊँचे गलेदार पानी का पात्र आदि यहा की विशेषतायें है।

यहा से प्राप्त मृण्मय कलाकृतियो मे सीगदार बैल, खेल के गुट्टे, जिनके शिर

पशुओ के से है, प्राप्त हुए हैं। ताम्र के अस्त्र अधिक प्राप्त होने से यहा से बहुत कम पाषाणास्त्र प्राप्त हुये है।

रेडियो कार्बन तिथि जो वैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर यहा के सदभ मे प्राप्त हुई है वह 1700 ई पूव और 1300 ई पूव के बीच की है। इस तिथि की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि नवदाटोली के समान यहा के ऊपरी स्तर से भी अर्द्धश्वेत चिकने बतन जिन पर नर्तकी तथा चित्तीदार पशु रेखाकित हैं, प्राप्त हुये है।

नोह—नोह भरतपुर-आगरा राजपथ पर स्थित एक गाव है। यह भरतपुर के पश्चिम मे लगभग चार मील की दूरी पर स्थित है। यहां पर एक टीले पर खुदाई से पाच सास्कृतिक युगो के अवशेष मिले हैं। आय किस प्रकार राजस्थान मे पूर्वी द्वार से प्रविष्ट हुए और उनकी सस्कृति किस प्रकार इस प्रदेश मे फैली, इसका आभास यहा से प्राप्त अवशेषो से ज्ञात होता है।

यहा पर निचले स्तर से क्रमश गेरू के रग के मृद्पात्र (गैरिक मृदभाड) व सादे काले और लाल मिट्टी के पात्रो के अवशेष प्राप्त हुये हैं। पर यह ध्यान देने की बात है कि यहा के काले व लाल मृद्पात्र आहाड से प्राप्त मृदपात्रो से सर्वथा भिन्न है। इनके साथ ही सलेटी रग पात्रो के अवशेष और गेरू के रग के पात्रो के अवशेष भी प्राप्त हुये। इसके बाद के स्तर से जिस युग की सस्कृति का आभास मिला वह चित्रित सलेटी रग के पात्रो की तथा काली चमकदार पात्रो (उत्तरी काले ओपदार मृदभाड) की सस्कृति थी। ऐसे मृद्पात्रो के अवशेष हस्तिनापुर से भी प्राप्त हुये हैं। सभवत इनका प्रयोग सम्भ्रात वग द्वारा किया जाता था। इस स्तर से विशेष महत्व के अवशेषो मे चित्रित सलेटी रग के पात्रो मे एक ऐसे पात्र का अवशेष मिला जिसके ऊपर चिडिया की आकृति है। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर तथा वैशाली से प्राप्त मृण्मय तथा अन्य प्रकार की मणियां और मृण्मय गोलाकार ढक्कन के प्रकार की वस्तुये जिन पर कुरेदी हुई अस्पष्ट आकृतिया ह, भी यहा मे मिली हैं। काले और लाल पात्रो के अवशेष इस स्तर से भी पूव स्तर की तरह मिले।

इसके बाद के स्तर से काले और लाल पात्रो के अवशेष मिलना बद हो गये और चित्रित स्लेटी रग के पात्रो के अवशेपो के साथ साथ उत्तरी काले ओपदार मृदभाड प्राय मिलने प्रारम्भ हो गये। इस युग मे लोहे का प्रयोग होने से लोहे के बाणो के नोक के भाग प्राप्त हुये है। इस स्तर के कुछ भवनो के भग्नावशेष भी प्रकाश मे आये है।

इसके बाद के स्तर से कच्ची मिट्टी की ईंटो से बना एक महत्वपूर्ण परकोटा भी खुदाई से प्रकट हुआ। इसे ईसा की प्रथम शताब्दी पूव का माना जा सकता है।

इस स्तर से ही एक स्थान पर बडी बडी पक्की ईंटो से निर्मित एक दीवार प्रकट हुई है। यहा से केवल लाल रग के साधारण वर्तनो के टुकडे मिले है और पिछले स्तरो से प्राप्त पात्रो के अवशेष एक भी नही मिले।

इस स्तर की उल्लेखनीय उपलब्धियो मे मथुरा के मित्र शासको के ढाले हुये तावे के सिक्के, मानव एव पशु आकृतियो की मृण्मय कलाकृतिया मिली है। मृण्मय कलाकृतियो से वसु धरा तथा कामी-युगल का अकन उल्लेखनीय है। इस स्तर मे चिकने चुनार पत्थर के कुछ टुकडे प्राप्त हुये हैं जिन पर मौर्यकालीन पालिश है। इस स्तर से कुषाण कालीन पात्रो के साथ साथ एक ऐसा पात्र भी मिला है जिस पर ब्राह्मी लिपि मे चारो ओर लेख अङ्कित है। अंतिम स्तर से, जो 7 वी शताब्दी के युग का परिचायक है, पाषाण फलको के साथ साथ आदमकद बुद्ध या यक्ष की सुन्दर हथेली चित्तेदार लाल पत्थर मे बनी प्राप्त हुई है। रेडियो कार्बन तिथि जो वैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर यहा के सबसे नीचे के स्तर की दी गई है वह 1100 ई पूर्व से 900 ई पूर्व की है।

इस प्रकार गणेश्वर, जोधपुरा, कालीवगा गिलुण्ड, आहाड व नोह मे ताम्रपाषाण व ताम्रयुगीन सस्कृति (ई पूर्व 2800 से ई पूर्व 12 0) प्रकाश मे आई है। उपरोक्त उल्लेखित स्थलो मे तावे का प्रयोग सर्वप्रथम हुआ। इस युग मे प्रचुर मात्रा मे मिले अवशेष पुरातत्व के क्षेत्र मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अन्य ताम्रयुगीन स्थलो मे चौथवाडी, नन्दलालपुरा व किरडोत (जिला जयपुर) मलाह (जिला भरतपुर) कुराडा (जिला नागौर), पिण्ड पाडलिया (जिला चित्तौड) झाड ल (जिला उदयपुर), सावणिया व पूगल (जिला बीकानेर) एलाना (जिला जालौर) बूढा पुष्कर (जिला अजमेर) कौल महालो (जिला सवाई माधोपुर) से भी कई ताम्र उपकरणो के भडार प्राप्त हुए है। किरडोत से ताम्रयुगीन 58 चूडिया प्राप्त हुई है। मलाह से काफी सख्या मे ताम्र हारपुन, तलवारे आदि मिली है। हारपुन से बडी मछली, गेडे आदि का शिकार किया जाता था। कुराडा से अन्य ताम्र सामग्री के साथ प्रणालयुक्त अर्घ्यपात्र मिला है जो पश्चिमी राजस्थान तथा पश्चिमी एशिया विशेषत ईरान से परस्परिक सम्बन्धो को बतलाया है।

ताम्रयुगीन सभ्यता के बाद मे लोह युगीन सस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। इस युग मे मानव लोहे का प्रयोग करने लग गया था। यह मानव विकास के तीन युगो पाषाण युग, ताम्र युग एव लोह युग कि अंतिम कडी है। इस सस्कृति को आदि आर्यों की सस्कृति माना जाता है। भारत मे ऋग्वेदिक काल मे अयस (लोहे) का उल्लेख मिला है। इसका प्रयोग ई पूर्व 2000 के बाद होने लग गया था। लोह के कारण यहा के इतिहास मे युगान्तरकारी परिवर्तन आया। अब मजबूत व तेज धार वाले अस्त्र शस्त्र बनने लग गये। लोहे के उपकरणो से खेती करने मे सुविधा

हो गई। पर्याप्त धन धान्य होने के कारण अनेक सांस्कृतिक एवं दार्शनिक क्षेत्र मे काफी परिवर्तन आया। इस संस्कृति के प्रमुख स्थल नोह(भरतपुर जिला)जोधपुरा व वैराट (जिला जयपुर) तथा सुनारी (जिला झू भनू), तारखानवालो का डेरा व चक 84 (जिला गगानगर) में स्थित है। नोह और जोधपुरा मे ताम्र की वस्तुए नही मिली है लेकिन यहा ताम्रयुगीन कपिषवर्णी मृदपात्र अवश्य मिले है।

इन लोह युगीन सास्कृतिक स्थलो मे मौर्य कालीन सभ्यता के भी कई अवशेष मिले है। जिनमे प्रमुख रूप मे उत्तरी भारत के कृष्ण परिमार्जित मृदपात्र है। यों बैराठ मौर्यकाल मे बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध केन्द्र था वहा से ही अशोक के दो अभिलेख मिले है। वैराठ अभिलेख से ही ज्ञात होता है कि अशोक ने बौद्ध धर्म अपना लिया था। यहा से अशोक कालीन ब्राह्मीलिपि के अक्षर युक्त ईंट भी प्राप्त हुई है।

सुनारी—गणेश्वर से 25 कि मी दूर काटली नदी के दाहिने किनारे पर स्थित गाव सुनारी तहसील खेतडी, (जिला झू भनू) की खुदाई से प्राप्त महत्वपूर्ण साक्ष्य अयस से लोहा बनाने की भट्टिया है तथा लोहे से उपकरण बनाने की भट्टिया है। ये भारत की प्राचीनतम भट्टिया मानी जाती है। यहा की पहली भट्टी खुली धमन भट्टी है। जिससे उपलो के द्वारा अयस से लोहा बनाया जाता था। दूसरे प्रकार की भट्टी से लोहे के उपकरण बनाये जाते थे। इनमे धोकनी लगाने का प्रावधान भी था ताकि भट्टी का तापक्रम नियत्रित किया जा सके। यहा से लोहे के तीर तथा भाले के अग्रभाग काफी सख्या मे प्राप्त हुए है। यहा से लोहे का एक कटोरा भी प्राप्त हुआ है। उस काल का ऐसा प्याला अब तक भारत भर मे नही मिला है। कृष्ण परिमार्जित मृदपात्र भी मिले है। उपरी स्तर पर काफी सख्या मे लोहे के हथियारो के साथ काली पोलिश वाले मृदपात्र भी मिले है। मृदपात्र मौर्यकाल के है।

इसके अलावा यहा से मिट्टी तथा पत्थर के मणके, शख की चूडिया तथा, मृणमूर्तिया भी मिली है। यहा के लोग चावल का प्रयोग करते थे। घोडो से रथ खिचते थे। यहा के लोग साधारण मकान मे रहते थे ऐसा अनुमान किया जाता है कि यहा की बस्ती वैदिक आर्यो ने बसाई थी तथा मौर्यकाल के बाद शुग तथा कुषाणकाल (ई पूर्व दूसरी शताब्दी) से लेकर ईसा की तीसरी शताब्दी तक फलती फूलती रही। कुषाणकाल मे काले रग के मृदपात्र चाक द्वारा बनाये हुए मिले है। कई प्याले, सिकोरे तथा सकल्प से सम्बन्धित जलपात्र मिले है। मातृका की मृण-मूर्तिया भी काफी सख्या मे मिली है। एक बडी मूण (पौने पाँच फुट ऊँची) भी यहा पर मिली है- जिसमे धान का सग्रहण किया जाता था। इससे यह ज्ञात होता है कि ये लोग कृषि कार्य मे रूचि लेने लग गये थे तथा यह क्षेत्र पर्याप्त समृद्ध

था। ये मृदपात्र बौद्ध धर्म की उपासना पद्धति मे काम आते थे। सुनारी के निकट मे भी ऐसे मृदपात्र मिले है। यहा के मौर्य कालीन स्तरो से भी लोहे के हथियार काफी मात्रा मे मिले है। लोहे के तीरो के मिलने से यह अनुमान किया जाता है कि यहा कृषि के साथ साथ आखेट द्वारा भी भोजन प्राप्त किया जाता था।

तिलवाड़ा—यह स्थल बाडमेर जिला के बालोतरा नगर से 16 किलोमीटर पश्चिम मे लूणी नदी के बाये किनारे, रेतीले क्षेत्र मे बसा है। यहा 1966-67 मे गाव के दक्षिण-पश्चिम मे 2 किलोमीटर की दूरी पर एक धोरे की खुदाई की गई जहा 90 सेंटीमीटर नीचे पाच आवास स्थलो के अवशेष मिले। एक गोलाकार झूपे के अवशेष बतलाते है कि यह 3 मीटर व्यास का था और उसकी दीवारे मिट्टी से बनी थी तथा उसकी छत तिनको से छाई थी। इसके आगन मे समतल चौरस पत्थरो का प्रयोग मिलता है। एक शिलवट्टा, मृद्भाण्ड व अन्य कई बतन—हाण्डी आदि मिले हैं। चूल्हो मे राख, जली हड्डियो के अलावा बतनो व सूक्ष्म उपकरणो के टुकडे मिले हैं। मृदभाड चाक से बने है जो काफी पकाये गये थे तथा सलेटी व लाल रग के है। सलेटी रग की हाण्डिया कई नाप की है तथा ऐसा प्रतीत होता है कि वे खाना पकाने के काम ली जाती थी क्योकि उनके तले जले हुए है तथा इन पर अलकरण नही है। लाल पात्रो मे थाली व लोटे है। यहा के लघु उपकरण स्थानीय सामग्री स्फटीक, बिल्लोर, चर्ट आदि के बने हैं। सूक्ष्म उपकरणों मे पत्तिये, तियक, तिरछे कु ठित फलक, अपरिष्कृत फलक, त्रिकोण, वेधनी तथा कुछ चौकोर उपकरण मिले है। ये सूक्ष्म उपकरण काफी मेहनत से तैयार किये गये थे।

तिलवाडा की ऊपरी सतह मे लोह के टुकडे, काच की चूडियो के टुकड भी मिले है लेकिन कुछ नीचे से हड्डी के मणके, एक टुकडा सीप की चूडी का तथा कुछ लोहे के टुकडें भी प्राप्त हुए है।

यहा अग्निकुण्ड भी मिले है जिनमे मानव अस्थि भस्म प्राप्त हुई है। एक अस्थि अवशेष के साथ मृदपात्र भी प्राप्त हुए है। मृत पशुओ के अस्थि अवशेषो से ज्ञात होता है कि इस युग मे गाय, बकरी, गीदड या कुत्ता, सूअर, चित्तीदार हरिण, नेवला आदि उस क्षेत्र मे विचरण करते थे।

बागोर की अपेक्षा तिलवाडा मे मानव बहुत बाद पहुचा और यही कारण है कि यहा की सस्कृति सम्बधी अवशेष बहुत पुराने नही है। इस स्थान से थोडी दूर बोदरा नामक स्थान पर भी उत्खनन काय हुआ। यहा का टीला बहुत बडा तथा विस्तृत है। यहा पर खुदाई 16 × 5 मीटर भूमि पर की गई। बागोर की तरह यहा भी आदि मानव रहा करता था। ऐसा आभास यहाँ के रेतीले प्रदेश के विश्लेषण से चलता है। यहा रेतीले प्रदेश मे नीचे ककर और चूने का पाया जाना

सिद्ध करता है कि यह स्थल कभी आबाद रहा था पर उस समय मे मानव अन्न उत्पादन की अवस्था से न रहा होगा। उस युग मे लूनी नदी उस क्षेत्र मे बहती होगी और आदि मानव उसके तट पर रहकर जीवन यापन किया करता होगा। लघु पाषाण शस्त्रो की ऊपरी रेतीले क्षेत्र में प्राप्ति आदि-मानव के कार्य-कलापो का परिचय देती है।

ऊपर की सतह से मृद्भाण्ड ज्यादा मिले है। लघुपाषाण कम है लेकिन नीचे की ओर सूक्ष्म उपकरण ज्यादा मिले है। अत यहा से संस्कृतियो की दो कालो का अनुमान किया जाता है। प्रारम्भ मे बर्तन कम थे और बाद मे बतनो के उपयोग होने लग गया था। स्पष्ट है कि यहा की सस्कृति पाषाण युग की नही थी यद्यपि यहा सूक्ष्म शल्क उपकरण मिले है जो बागोर मे मिले उपकरणो जैसे ही है। यदि हम लोहे की व काच की चूडियो की ओर ध्यान न देवें कि वे ज्यादा बाद के समय के लोगो की है जो कभी अस्थाई रूप से वहा आये हो लेकिन चाक से बने बर्तन-हाडी, लोटा थाली आदि, शिलबट्टा व सूपे वहा के निवासियो को घुमक्कड या केवल शिकारी होना नही बतलाते है।

डा बी एन मिश्रा इनका समय ई पूव 500 से ई सन् 200 बतलाते है।

बैराठ (जिला जयपुर) —जयपुर नगर से उत्तर मे 52 मील दूर स्थित बैराठ मे दो बार खुदाई हुई। प्रथम बार खुदाई बीजक की पहाडी पर की गई। यहा पर किसी समय एक शिलालेख था जो आजकल कलकत्ता मे एशियाटिक सोसायटिक बगाल के सग्रहालय मे है। इस टीले पर ही की गई खुदाई ने अशोक तथा उसके पूव की सस्कृति पर अच्छा प्रकाश डाला है। यहा से खुदाई के आधार पर एक गोल बौद्ध मदिर का ढाचा प्रकाश मे आया। हीनयान धर्म मे बुद्ध सबधी अवशेष किस प्रकार मन्दिर के बीच मे रखे जाते थे तथा उनकी परिक्रमा के लिये प्रावधान किया जाता था, यह इस मदिर की निर्माण विधि से पता चलता है। मूल मदिर के चारो ओर गोल घेर मे किस प्रकार लकडी के स्तम्भ लगे होगे तथा इनके योग से उपर मण्डप बना होगा, सहज मे ही अनुमान लगाया जा सकता है। लकडी के स्तम्भ अठपहलु थे और स्तम्भो के बीच मे प्लास्टर के फलक स्थान पाते थे। खुदाई से प्राप्त चौडी पकी हुई ईंटो से जो मौर्य-युगीन सस्कृति की परिचायक हैं, हम उस युग की सस्कृति का अनुमान लगा सकते है। मदिर के चारो ओर बौद्ध भिक्षु-भिक्षुणियो के निवास गृह बौद्ध मठो के रूप मे थे। उनके अवशेष अब तक देखने को मिलते है। सबसे अधिक सुरक्षित- मठ का यह भाग था जो पूव की ओर स्थित था। यहा पर छ से सात कोठरियो के भग्नावशेष देखने को अब भी मिलते है। इनमे प्रयुक्त मिट्टी की ईंट आकार मे 20 इन्च × 1 75 इन्च है। इनको साधारण मिट्टी के चूने मे जोडा गया था। अवशेषो मे जली लकडी के

अवशेष तथा मृद खपडैल मिले। इन खपडैलो से ही प्राय मठो की छत पाटी जाती थी।

जो मृदपात्र इस स्थान की कोठरियो से प्रकाश मे आये उनमे नाना प्रकार के अलकारिक पात्र थे। पात्रो मे प्रयुक्त अलकरण मे पहिये पर त्रिरत्न, स्वस्तिक आदि थे। इनके अतिरिक्त वहा से लोहे की कीलें, अण्डाकार घेरदार पतली तहो वाले पत्थर के छोटे-छोटे फलक भी मिले है। उस समय ये सभवत तावीज के रूप मे प्रयोग किये जाते थे।

मृदपात्रो के टुकडे जो यहा से प्राप्त हुये है वे है उत्तरी काली पालिशदार पात्रो के टुकडे। इनके साथ साधारण मोटे बर्तनो के टुकडे भी प्राप्त हुये है। 36 आहत मुद्रायें तथा भारतीय-यूनानी सिक्के भी एक कपडे मे लिपटे यहा से प्राप्त हुये। कपडे का वैज्ञानिक ढग का परीक्षण इस बात का साक्षी है कि उस समय का कपडा कैसा बनता था। मौर्ययुगीन मृण्मय कलाकृतिया यहा से प्राप्त हुई है। मृण्मय कलाकृतियो मे सफल धूपदान, धूप की बत्तियो को ग्रहण करने के लिये छेदधारी मृद वस्तुये, नर्तकी एव यक्षी की वह मृण्मय कलाकृति जिसमे युवती का बॉया हाथ बाई जघा के पीछे की ओर है तथा दाहिना जघा पर है, मिटटी का वह बेसबेल जिस पर कटहरे का अकन है चिकने चमकदार सुन्दर भिक्षा पात्रो के कई अवशेष, मिट्टी की छोटी थालिया, पूजा का चौडा पात्र जिसकी कोर पर एक छोटा दीपक का कटोरा लगा है आदि है।

मिट्टी की वस्तुओ के अतिरिक्त यहा से बहुत बडी सख्या मे विभिन्न माप की कीले, दीवार पुष्ट करने की लोहे का छोटी छड, बडे आकार की लोहे की ऐसी पट्टिया जिनमे कीले उनके चोडे किनारो पर जडी हुई थी, लोहे की रेतो, धातु के फीतो की गठरी, केवल एक बाणाग्र, तावे की सुई भी प्राप्त हुये है।

ऊपर लिखित वस्तुओं के प्राप्ति स्थान से थोडी दूर पर ही एक चिकना चुनार पत्थर का बट्टा भी मन्दिर की दक्षिण दिशा मे प्राप्त हुआ था। मन्दिर की उत्तरी दिशा की खाई से मिट्टी के घडे के ऊपरी किनारे का वह भाग प्राप्त हुआ जिससे घडे पर साधारण छेद युक्त नक्काशी के साथ ब्राह्मी अक्षरो मे एक लेख अकित है। अभाग्यवश इस लेख का शुद्ध रूप पढा नही जा सका है। इसी कारण उसका अर्थ भी ठीक से नही जाना जा सका है।

यहा से प्राप्त सभी मृदपात्र साधारण चाक पर निर्मित है। इन पर न कोई लेप है और न कोई चिकनाहट या चमक है। इन पात्रों पर साधारण रेखायें तिरछी, बाकी, लम्बी-चोडी, ऊपर से नीचे तथा एक ओर से दूसरी ओर पात्रो के मध्य मे तथा पात्रो के ऊपरी कधो पर चित्रित होती है। इनके साथ साथ कुछ

पवित्र बौद्ध चिह्न—धमचक्र, त्रिरत्न, स्वस्तिक, कमलो का गुच्छा, हाथ की उगलियो से वनाया गया कुम्हार द्वारा शृखला-बन्ध साचा अथवा असाधारण छेदयुक्त रेखाये भी पात्रो पर चित्रित हैं। ऐसे पात्र साधारणतया सलेटी मिट्टी के वने है ।

सुन्दर हल्की मिट्टी के वने वहुत ही चमकदार पात्रा मे कुछ थोडे वे भिक्षापात्र है जिन पर किसी समय अलकरण था और जिनकी ताम्बे की कीलो व तारो से उनके टूट जाने की अवस्था मे जोडकर सुरक्षित किया गया था। यहा की अन्य उल्लेखनीय उपलब्धियो मे यहा मे प्राप्त 7 प्रकार की मिट्टी की ईंटे है। इनमे सबसे वडी 2'7 इच × 1'4इच × 3इच की तथा सवमे छोटी 13 5 इच × 9इच × 2 इच की है। पच्चड के आकार की ईंटो का प्रयोग वैराठ के खुदाई की विशेषता है। इनका प्रयोग वैराठ के गोलाकार मदिर मे हुआ था। सिन्धु नदी की सभ्यता के अवशेषो की प्राप्ति से पूव ऐसी ईंटे कही और प्रयुक्त नही हुई थी। ऐसा अब तक के किये गये उत्खनन् कार्य से सिद्ध होता है।

यह ध्यान देने की वात है कि वैराठ मे कोई भी महात्मा बुद्ध की मूर्तिया या मृण्मय कृतिया नही मिली हैं। यह स्पष्ट बतलाता है कि वैराठ की बौद्ध सस्कृति महायान धर्म सबधी न होकर हीनयान थी।

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियो की वस्तुओ मे दीपक, गोरिम्या, छोटी बोतल मिट्टी की तथा पानी पीने व रखने के छोटे पात्र आदि मुख्य थे। मृदपात्रो पर कुरेदे कलात्मक खाके भी है। यहा से मृण्मय मणके भी प्राप्त हुये हैं।

वैराठ की दूसरी वार की खुदाई चार स्तर विभाजन बता सकी है। इस खुदाई से चार स्तर प्रकाश मे आये और उनसे वैराठ की चार विभिन्न युगीन सस्कृतियो पर प्रकाश पडा। सवसे पहले यहा पर चित्रित सलेटी पात्र के प्रयोग करने वाले रहा करते थे। उसके वाद उत्तरी काले पालिश वाले पात्रो के प्रयोग करने वाले यहा वसे। उनसे सम्बन्धित छोटे छोटे अवशेष भी मिले। उसके पश्चात ईसा की प्रारभिक युगीन सस्कृति का पता उस युग के पात्रो की प्राप्ति से हुआ। चौथे स्तर से मध्ययुगीन चमकीली वार्निश को स्थान देने वाले पात्रो के टुकडे मिले।

यह ध्यान देने की वात है कि सवसे नीचे के स्तर से ही लोहे का प्रयोग वैराठ निवासी करने लग गये थे। यह हम यहा के प्राप्त अवशेषो से ज्ञात होता है। वैराठ की खुदाईयो के आधार पर आर्य सस्कृति का केन्द्र होने के अतिरिक्त मध्य युगीन सस्कृति का केन्द्र भी रहा। यहा के प्राप्त अवशेषो से भी, जो यहा के प्रसिद्ध भवनो के रूप मे अब तक विद्यमान है, पुष्ट होता है।

नगरी-दक्षिण पूव राजस्थान का नगरी स्थान चितौड के उत्तर मे13 किलो

मीटर की दूरी पर स्थित है। यहा पर दो बार खुदाई हुई। सर्वप्रथम यहा पर सन 1904 मे खुदाई डॉ भण्डारकर ने की थी। उन्होने खुदाई दो स्थानो पर कराई थी। नगरी के परकोटे के अदर स्तूप के टीले पर एक खुदाई की गई थी तथा दूसरी हाथी बाडा स्थान पर जो नगरी गाव से 1 किलोमीटर पूर्व है, की गई थी। नगरी प्राचीन माध्यमिका नगरी थी। इसका उल्लेख पातन्जलि के "महाभाष्य" मे है। खुदाई के आधार पर यहा पर किसी समय शिवि-जनपद था। ऐसा प्रमाण यहा से प्राप्त शिवि जनपद के सिक्को की प्राप्ति से हुआ है। यहा से प्राप्त आहत मुद्राये शिवि सिक्के, लेखाकित पाषाण खण्ड, मृण्मय-कलाकृतिया तथा मूर्तिखण्ड इस स्थान की ऐतिहासिकता ई पू की तृतीय शताब्दी से लेकर सातवी शताब्दी ई तक प्रमाणित करते है।

यहा से गुप्तकाल के प्रारम्भ के कई मृण्मूर्तिखण्ड भी प्राप्त हुये है। टीले के मध्य मे प्रारम्भिक गु. युग का एक मदिर, जिसमे शिव की मूर्ति भी थी, पाया गया था। यहा से ही गुप्तयुग के प्रारभ की मृण्मय कलाकृतिया प्राप्त हुयी है। ये कलाकृतिया अलकारिक होने के साथ साथ गुप्तकला की परिचायिक है। यही नही, यहा स लाल पालिशदार पात्रा भी, जो पश्चिमी भारत मे अधिकतर मिलते है, प्राप्त हुये थे। यहा से क्षत्रप सिक्को की भी प्राप्ति हुई थी।

नगरी मे वैज्ञानिक ढग से दूसरी बार सन् 1962 मे खुदाई केन्द्रीय पुरातत्व विभाग द्वारा की गई। 5 मीटर गहरी खाई से तीन सास्कृतिक स्तरो का ज्ञान हुआ। प्रथम दो स्तरो से साधारण सादे लाल व सलेटी रग के पात्र मिले पर यहा से चार चक्राकार कुएे (रिंग वैल्स) तथा साधारण पत्थरो से बने कुछ प्रकारो के अवशेष मिले जो प्राय नगर की रक्षार्थ किसी समय निर्मित किये गये थे।

तृतीय सास्कृतिक स्तर से वड कूपो के अवशेष लाल पालिशदार पात्रो के टुकडे तथा सफद प्लास्तर की तरह की खडिया मिट्टी के पात्र मिले थे। इस खुदाई से प्राप्त अन्य सामग्री मे आहत मुद्राये, शिवि जनपद के सिक्के जिन पर 'मध्यमिका' लिखा हे तथा प्रारभिक क्षत्रप सिक्के, हड्डियो के नोक, मानव एव पशु आकृतियो की मृण्मय कलाकृतिया, जो शु ग तथा गुप्तकालीन कला की परिचायिका है तथा मणके, अन्य मृण्मय वस्तुऐं जिनमे बच्चो के खिलौने तथा कचे आदि है, ताम्बे की सुरमा लगाने की शलाकाये तथा अगुठिया मुख्यतया उल्लेखनीय है। प्राप्त सामग्री से दूसरी वार की खुदाई से भी कोई वस्तु ई पूव की चौथी शताब्दी से पूव की नही मिली यद्यपि लघु पाषाणास्त्रा का प्राप्ति धरातल पर यत्र तत्र हुई है। दुग का आकार जो यहा पर प्राप्त है वह सभवत गुप्त युग मे बनाया गया था।

यह ध्यान रखने की बात है कि यद्यपि इस स्थान से खुदाई द्वारा तीसरी

शताब्दी ईसा पूर्व के अन्य पात्रो के टुकडो की सामग्री मिली पर उत्तरी काली पालिदार पात्रो के टुकडे नही मिले।

रैढ-जयपुर के दक्षिण मे90किलोमीटर की दूरी पर रैढ गाव है। यह भूतपूर्व जयपुर राज्य की वोली तहसील के भरतना ठिकाने मे किसी समय स्थित था। अब यह निवाई तहसील मे है। यहा पर की गई खुदाई से ई पूर्व की तीसरी शताब्दी से लेकर ईसा की द्वितीय शताब्दी तक के अधिक अवशेष प्राप्त हुये, यद्यपि कुछ थोडे अवशेषो से यहा पर पूव गुप्तकालीन सस्कृति का प्रचलन भी अनुमानित होता है। शोपण कूप जिनमे पकी मिट्टी के बडे घेरे है एक पक्ति मे यहा से बहुत बडी सख्या मे प्राप्त हुए है। इस स्थान स 1.5 शोपण या घरदार कूप मिले थे। इनमे 5 से से लेकर 25 घेरे एक से दूसरे पर रखा है। हर घरा दो फुट दो इच चौडा बीच मे तथा लगभग 7 इच ऊचा है। इनकी मोटाई आधी इच है। इनके अन्दर टूटे प्याले, मणके, मृण्मय कलाकृतिया आदि पाये गये थे। कुछ घरो के अन्दर अनाज के दाने भी पाये गये थे। कुछ शोपण गर्त के रूप मे निवास गृहो मे पाये गये थे। उनकी गहराई 17 इच से लेकर 19 फुट 4 1/5 इच पाई गई। यहा से तीन सहस्त्र से अधिक आहत मुद्रायें, मालव एव मित्र सिक्के आदि भी खुदाई के आधार पर प्राप्त हुये है। 14 मित्र सिक्को के साथ यहा से 6 सेनापति सिक्के, सात वपु सिक्के, एव ٤टा अपोलोडोट्स का सिक्का, 189 अज्ञात ताम्र सिक्के, थोडे इण्डोससेनियन सिक्के भी मिले थे। यहा से प्राप्त मृण्मय कलाकृतिया जो नाना रूपो की मातृकाओ की पशु आकृतियो के साथ है यहा की अमूल्य सामग्री मे है। यहा से प्राप्त मणके तथा माहरे भी उल्लेखनीय है। यहा से प्राप्त एक सीसे की मुहर 'मालव जनपद - स'' ब्राह्मी लिपि मे अकित है, इस क्षेत्र मे किसी समय मालव जनपद होने का स्पष्ट प्रमाण उपस्थित करता है। यहा से बहुत बडी सख्या मे लोहे के औजार प्राप्त हुए हैं। अत प्राचीन काल मे सम्भवत यहा पर कोई लोहे की वस्तु बनाने का कारखाना था।

स्पष्ट छापेदार कलाचिन्हो की स्थान देने वाले पात्रो के टुकडे घुमावदार हत्था, अन्दर से खोखने ढक्कन, उठाने के लिये घुण्डी के पात्रो के ढक्कन, छोटी बोतलनुमा सुराहिया, जिनमे पैंदे से ऊपर कारीगरी की गई है .सा की प्रथम शताब्दी की सस्कृति के परिचायक है। रेढ की खुदाई की विशेप उपलब्धि यहा से प्राप्त लगभग समानान्तर भित्तिया है। ऐसी भित्तीया प्रागतिहासिक युगीन मोहनजोदडो से ही प्राप्त हुये थे। रेढ से बहुत सख्या मे विभिन्न धातुओ से निर्मित वस्तुएं प्राप्त हुई है। ये ताम्बे, सीसे, चाँदी तथा सोने की है।

यहा से प्राप्त पालिशदार रगीन मणिया जिन पर कलात्मक काम है तथा यहा से मिली हाथी दात, कासे आदि की वस्तुऐं ये सिद्ध करती है कि रेढ ईसा पूव की

तीसरी शताब्दी से लेकर ईसा की तीसरी शताब्दी तक एक बहुत ही सम्पन्न स्थान था। सभवत उत्तरी-पश्चिमी भारत मे रहने वाली मल्लोइ जाति के लोग सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् यहा जब बसे तब यहा सुख शाति का वातावरण पाकर अपनी सुख-सुविधा की समस्त सामग्री जुटाकर अपनी सस्कृति को, जो मालव सस्कृतिवाद की जन्म देने वाली हुई और जो यहा भी समृद्ध हुइ, पुष्ट करने मे सहायक हुए।

नलियासर-जयपुर से 83 किलोमीटर पश्चिम मे साभर झील से लगभग 3 मील दूर पर नलियासर गाव है। यहा पर एक बहुत बडा टीला है। जिस पर की गई खुदाई से ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी से लेकर 10वी शताब्दी इ के अवशेष प्राप्त हुये हैं। शाकम्भरी के चौहानो के विषय मे साहित्य एव शिलालेखो से ज्ञात होता है, पर इस खुदाइ द्वारा चौहान युग से पूव पर अच्छा प्रकाश पडा है।

खुदाई से प्राप्त सामग्री मे आहत मुद्राये,उत्तर इण्डोससेनियन सिक्के, हुविष्क के सिक्के, इण्डोग्रीक सिक्के योधेयो के सिक्के (जिनमे छोटे सिक्केपर एक पक्तिपर बहुधा व तथा दूसरे पर गण अकित है) गु प्तयुगीन चादी के सिक्को के अतिरिक्त कई सोने तथा ताम्बे की वस्तुऐ है। इन वस्तुओ मे सोने का एक गले के हार का लटकन है जिस पर पखदार शिर की खुदी आकृति है। सोने की अन्य वस्तुओ मे सोने के पतरे से निर्मित मणका है जो सम्भवत मन्त्र के रूप मे कभी प्रयोग किया जाता था इसी प्रकार का बना एक हृदय के आकार की वह वस्तु है जिसके दोनो ओर सीग के रूप की एक आकृति है जो कि तुरही हो सकती है। यहा सोने से निर्मित खुदा हुआ सिंह शिर या कीर्तिमुख भी प्राप्त हुआ है। ताम्बे की वस्तुओ मे यहा से घण्टिका, चम्मच, छोटे पात्र आदि प्राप्त हुये थे। फुटकर मिट्टी की बनी सामग्री मे तोलने के बाट है। ये बहुधा चौकोर है। अन्य सामग्री मे बडे गेद, छोटे गेद, मिट्टी की छोटी तलवार, भुनभुने आदि है। शरीर का मैल दूर करने के झापे, गोल गोल मिट्टी के छोटे छोटे तवे के समान वस्तुए अलकरण युक्त ईटे, नालियों के गोल पाइप, पुजा हेतु छोटे कुण्ड या पात्र, मिट्टी के आभूषण।जिनमे पचमणिया विशेषतया उल्लेखनीय है) मणके मिट्टी, शीशे धातु एव मणियो से निर्मित भी यहा से प्राप्त हुये हैं। शीशे की चूडियो के साथ पत्थर के बने सिल-वट्टे, हड्डी का बना पासा, कासे के बने बच्चा के कडे तथा उनकी अगूठिया व कासे की बनी घण्टे का हत्था विशेषतया उल्लेखनीय है। ऐतिहासिक सामग्री मे यहा से प्राप्त 105 ताम्बे की मुद्रायें महत्वपूर्ण है। ये सिक्के कुषाणकालीन राजस्थान की स्थिति पर प्रकाश डालते है। सबसे महत्वपूण ऐतिहासिक सामग्री मे वह लेखयुक्त छोटा फलक है जो इस प्रकार पढा गया है—

तत (तत) शसक काल(ति)
त सूयँ

(मव) ता राव
प्रिय ति
नीता ग

यद्यपि इस अधूरे लेख को पढकर अर्थ निकालना असम्भव है लेकिन यह लेख ईसा की दूसरी शती से लेकर ईसा की चौथी शती का हो सकता है। यह लेख सस्कृत भाषा मे है पर इसकी लिपि ब्राह्मी है।

यहा से एक कासे की मुहर भी मिली है। इस पर अ र-ल (?) द स अकित है। सम्भवत यह किसी का नाम है। यह ब्राह्मी लिपि मे है और अक्षरो की बनावट के आधार पर ईसा की तीसरी शताब्दी की मानी जा सकती है। प्राप्त सामग्री के अध्ययन से पता चलता है कि साभर की सस्कृति ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी मे जन्मी व विकसित हुइ पर ईसा की छठी शति से पूर्व ही लुप्त हो गइ।

नित्य प्रति प्रयोग की ताम्बे के पात्रो के अतिरिक्त यहा से असख्य मृण्मय वस्तुऐं तथा कलापूर्णलाल तथा श्वेत मिट्टी पर उभरे हुये काम को स्थान देते हुये मृद्भाण्डो के टुकडे भी मिले है। ऐसे बर्तनो के टुकडे कुषाण तथा गुप्तयुगीन है। यहा से कलापूर्ण बर्तनो के टुकडो तथा मृण्मय कलाकृतियो की बहुत बडी सख्या मे प्राप्त होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि कुषाण एव गुप्तकाल मे साभर मे अच्छे कलाकार रहते थे और यह कलात्मक मृत्पात्रो एव मृण्मय कलाकृतियो के निर्माण मे सिद्ध हस्त थे।

मृण्मय कलाकृतिया गोल होने के साथ-साथ उभरी कला को अपने मे स्थान देती है। इनमे एक कृति शिव के मुकुट मे डमरू तथा गले मे सर्प माला धारण किये प्रस्तुत करती है। यह द्विबाहुधारी आकृति है।

एक कृति एक विचित्र देवी की है जो कि एक अद्भुत शिरोवेष्टन को स्थान देती है तथा जिसके बाये हाथ मे एक पात्र है। हाथ से बनी अन्य कृतियो मे एक पुरुषाकृति आसीन मुद्राये है तथा दूसरी ऐसे तोदधारी मानव की है जो कि शिखा के साथ-साथ यज्ञोपवीत धारण किये है। एक कृति मे महिषासुर का अकन है इसमे माला धारण किये या तो महिषासुर है या भैसे पर आरूढ यम है। उल्लेखनीय सामग्री मे यक्षणियो की आकृतिया, उमा महेश्वर, पात्रधारी कुबेर आदि है। इसी प्रकार की मानव तथा पशु आकृतिया बहुत बडी सख्या मे यहा से प्राप्त हुई थी। इनके अतिरिक्त यहा से बहुत से चौपड के पासे प्राप्त हुए हैं। वे मिट्टी तथा हड्डी के बने हैं।

लोहे की बनी वस्तुओ मे यहा से लकडी के दो टुकडो को जोडने के लोहे के टुकडे, हसिया, लटकने वाले दीप, लोहार के प्रयोग के कई औजार आदि भी प्राप्त

हुए है। नित्य प्रति प्रयोग के मृद पात्रो मे सुराही का वह भाग है जिस पर शिव की जटा से गगा निकलती प्रदर्शित की गई है। कई पात्रो की टोंटिया झुकती हुई महिलाओ को घडे धारण किये प्रदर्शित करती है। अन्य मे मकरशिर, सिंह शिर वाराहशिर आदि है।

यही नही नलियासर (साभर) मे कुषाण एव गुप्तकालीन भवनो के अवशेष भी प्राप्त हुये है। इन भवनो के प्र रूप को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ई पू की द्वितीय शताब्दी से लेकर नौवी शताब्दी तक किस प्रकार के घरो मे लोग निवास किया करते थे। जयपुर राज्य के पुरातत्व विभाग द्वारा की गई खुदाई से पूर्व भी साम्भर मे लगभग सौ वर्ष पूर्व खुदाई की गई थी और तब छोटी छोटी वस्तुओ के साथ एक छोटी मुहर प्राप्त हुई थी जिस पर अंकित अक्षरो के अध्ययन से यह अनुमान लगाया गया था कि मुहर ई पूर्व की तीसरी शताब्दी की थी। इस अनुमान की पुष्टि आगे की गई क्योकि इस स्थान से इसकी अन्य सामग्री भी प्राप्त हुई। इस प्रकार से साभर मे ईसा पूर्व की तीसरी शताब्दी से लेकर चौहान युग तक यहा सस्कृति पनपी एव विकास को प्राप्ति हुई। यह यहा पर हुई खुदाईयो से स्पष्ट हो गया।

नगर—(जिला टोंक) (ई पूर्व 00 से ई सन् ⁴00) इसी सस्कृति का पोषक दूसरा नगर जो किसी समय मालव नगर कहलाता था और जो "नगर" नाम से भूतपूर्व जयपुर राज्य के उणियारे ठिकाने मे स्थित था, खुदाई का आधार बना। यहा पर सौ वर्ष से अधिक पूर्व कार्लाईल महोदय को 6000 मालव सिक्के इस प्रकार पडे मिले थे जैसे घोंघे समुद्र के तट पर पडे पाये जाते है। यहा से प्राप्त अवशेष ई पू की प्रथम शताब्दी से लेकर ईसा की तीसरी शताब्दी तक के है। एक हजार से अधिक पात्रो के टुकडे तथा लगभग 500 अन्य छोटे छोटे अवशेष यहा से खुदाई द्वारा प्राप्त हुए थे। लगभग 1000 मालव सिक्के तथा बहुत सी आहत मुद्रायें टीले के ऊपर से उत्खननकर्त्ता द्वारा बटोरे गये थे। यहा के मृद-भाडो के अवशेष अधिकतर लाल थे। कुछ थोडे खण्ड स्लेटी रग के भी पाये गये थे। यहा पर जो अन्न भरने के मटको के टुकडे प्राप्त हुये उससे हमे यह ज्ञात होता है कि उस समय ऐसे पात्रो पर उगली से डिजाइन बनाये जाते थे। कुछ मटको के अवशेष इस कथन की पुष्टि करते है कि उन पर फिसलाहट के साथ साथ अलकृत कलात्मक नमूने है। ऐसे अलकरण हाथ की उगलियो से बनाये गये थे। खाना पकाने के पात्रो मे अधिकतर लाल रग के पात्र ही है। इन पात्रो मे एक मृदभाण्ड गोल पैंदे का चौडे मुख का मिला था जिसके बैठकीदार घेरा था।

उत्खनित खईयो से जो मृदपात्रो के टुकडे मिले वे असख्य होने के साथ नाना प्रकार के भी है। बडे बडे अन्न सग्रह-मटको के टुकडो से लेकर छोटी छोटी हाडियो

के टुकडे भी यहा से मिले। ये सुन्दर होने के साथ साथ बहुत ही उपयोगी भी थे। पूरे पात्र तो बहुत कम मिले पर पात्रों के टुकडो की सख्या तो इतनी थी कि एक ठेला भराया जा सकता था। जिस मिट्टी का प्रयोग पात्रो मे किया गया वह सब लाल, गुलाबी व भूरी होने के साथ साथ पानी का सोखने वाली थी। सलेटी रग के पात्र सम्भवत वे पात्र थे जो कम पके छोड दिये गये। बहुत से पात्रो पर पकाने से पूर्व चिकनाहट कर दी गई थी। चिकनाहट करने से पूर्व उन पर गुलाबी, हल्का लाल रग गहरा लाल रग गेरू के माध्यम से लगा दिया गया था। काली चिकनाहट काजल के प्रयोग से सम्भवत पाई गई थी।

पात्रो के ढक्कन को उठाने की घु डी भी लगी है। छिडकाव के लिये छेददार पात्र तथा टोंटीदार पात्र भी यहा से पर्याप्त सख्या मे मिले ह। पात्रो मे धूपदान, हत्थेदार सुराही,लोटे, टोंटीदार तथा साधार बैठकीदार प्याले उल्लेखनीय है। ये सब पात्र सामग्री गुप्तकालीन है।

उत्तर कुषाण व गुप्तकालीन पात्रो मे एक हत्थेदार तश्तरी तथा एक आकर्षक फूल पत्तियो से अलकृत पात्र है। इस समय के अन्य सग्रह पात्र मोटी बनावट के न होकर पतले है।

यहा से पर्याप्त मात्रा मे सफेद खडिया के बने उभरे अलकृत पात्र प्राप्त हुये ह। इस प्रकार की सफेद खडिया चमकदार चीनी के समान है। यहा के अलकरण की विशेषता निम्न प्रकार है —

(अ) कुछ पर मानव एव पशु आकृतिया है।

(ब) कुछ पर रेखा और रगयुक्त चित्र ह।

(स) कुछ पर छापो द्वारा आलेखन है।

(द) कुछ पर अन्दर कुरेदे हुये या खुदाई द्वारा किये आलेख है।

(इ) कुछ पर आलेख उभरे हुये हैं।

(ञ) श्रेणी मे प्राप्त मृदपात्रो के अवशेष श्वेत खडिया और लाल रग के पात्रो के हत्थो का है। इन पर कही बन्दर की आकृति है और कही स्त्री तथा पुरूष की आकृतिया भी बनी मिलती है।

कुछ पात्रो मे मकर का शिर धारण किये हुये टोटिया भी मिली है। सफेद खडिया के बने पात्रो मे दो कटोरो के टुकड सुदर हसो की किसी लता से घिरा हुआ प्रदर्शित करते हैं। कुछ पर अगूर की पत्ति का आलेखन है।

इन अवशेषों के साथ ही भवनो के भग्नावशेष पूरी ईंटे तथा ईंटो के टुकडो के रूप मे भी यहा से प्राप्त हुये है। पूरी ईंटो आकार मे 3इच मे 13 5 इच ×9इच

×2 25 से 2 52 इच की है। इस स्थान से कुछ स्लेटी पत्थर मे बनी आकृतिया भी प्राप्त हुई है। इनमे एक ऐसी प्रतिमा का अवशेष मिला है जिसमे कमल पर किसी देवता का पैर रखा है। यहा से प्राप्त महिषासुरमर्दिनी का अकन भी सुन्दर है। एक छोटे फलक मे मछली तथा दूसरे आलेखन खुदे हुए है। गोलाई मे खुदा एक मुख शिवलिंग यहा से प्राप्त हुआ है। यहा से एक गणेश का अकन भी खुदा हुआ स्लेट पत्थर पर मिला है। यह अकन बहुत ही सुन्दर है। इसमे गणेश के दो हाथ है, तथा तोंद निकली है तथा इनके दाहिने हाथ मे पाशा है तथा बायें मे मोदक है। एक अन्य अकन मे एक देवी बैठी हुई है। देवी सम्भवत दुर्गा है किन्तु उसका दाहिना हाथ ऊपर की ओर उठा है। एक खडी प्रतिमा लक्ष्मी की हाथ मे कमल लिये हुये भी यहा से मिली है। स्लेट पत्थर मे एक सुन्दर अकन तीन फणधारी नाग का है। मकराकृति को धारण करते हुये दूसरे स्लेट-पत्थर के कोने पर टूटे फलक मे भी कला का अच्छा प्रदशन है। ये सब कलाकृतिया गुप्तोत्तर काल की है।

उत्खनन से कुछ लेख भी प्राप्त हुये थे। ये पात्रो पर बहुधा अकित लेख प्राप्त हुये थे। ये लेख या तो किसी का नाम है या यो ही प्रदशन हेतु दिये गये है। ये प्रारम्भिक गुप्त लिपि मे लिखे है — इनमे से एक है। क्षरोस, योग, "स", "अ" यदि पात्र खण्डित न होते तो उनके पूरे होने से अर्थ निकाला जा सकता था।

एक मृदपात्र पर "पशु" भी लिखा मिलता है। केवल दो मिट्टी की थालियो पर दो ऐसे लेख मिलते है जो सम्भवत कुम्हारो के नाम थे। एक पर "डोमर" तथा दूसरे पर "मागे" लिखा मिलता है। इन सबकी लिपि गुप्त तथा गुप्तोत्तर कालीन ब्राह्मी हैं।

नगर से प्राप्त अन्य सामग्री हैं – उपरिलिखित सामग्री के अतिरिक्त सीप की चूडिया, मणके, पत्थर की मूर्तिया, धातु (विभिन्न प्रकार), शीशे, हड्डी आदि की बनी वस्तुओ के अवशेष।

"नगर से प्राप्त अवशेषो मे मुख्यतया सफेद प्लास्तर की तरह की मिट्टी की बनी मृण्मय कलाकृतिया तथा इसी मिट्टी के बने मृदपात्र है। इस श्वेत मिट्टी से कल त्मक ढग के पात्र तथा कलाकृतियो मे उस समय मे पर्याप्त सख्या मे बने मृदपात्रो मे साधारण तथा उभरे डिजाइनदार पात्र भी है। कुछ ऐसे कलापूर्ण है कि उनकी कला को देखते ही बनता है। ऐसे मृदपात्रो मे कलापूर्ण चम्मच है जिन पर कई आकृतिया बनी है। कलापूण कृतियो मे पुरुष व पशु आकृति वाले पात्र, रेखा व रग से चित्रो वाले पात्र तथा बेलदार डिजाईनो के पात्र, कुरेदी हुई डिजाईनो को पात्र तथा उभरे हुए डिजाइन वाले पात्र हैं।

श्वेत प्लास्तर के समान मिट्टी से बनी मृण्मय कलाकृतियो मे कामदेव व रति

का अकन है। यह छोटा मानव सिर जो कि शोक-सतप्त मुद्रा मे दर्शाया गया है। तथा यक्षी की प्रतिमा खडी त्रिभग मुद्रा मे।बायें हाथ को कटयावलम्बित मुद्रा में किये हुए तथा दाहिने हाथ से एक वृक्ष की डाल पकडे हुये, (शालभञ्जिका), महिषासुर मर्दिनी आदि विशेषतया उल्लेखनीय है।

प्राप्त सामग्री से यह निश्चयत सिद्ध हो जाता है कि यह क्षेत्र भी रेढ क्षेत्र के समान मालवो का एक प्रमुख क्षेत्र कभी रहा होगा। मालवो के पश्चात् भी यह क्षेत्र आबाद रहा और गुप्तकाल के पश्चात् तक सम्भवत यहा पर सास्कृतिक चहल-पहल रही।

रगमहल (जिला गगानगर)—उत्तरी राजस्थान के बीकानेर क्षेत्र मे सूरतगढ के निकट (5 कि मी) जिला श्री गगानगर मे घग्घर के पेटे मे कई टीले है। मुख्य टीला 250 मीटर का है जो लगभग 10 मीटर ऊचा है। रगमहल मे जो खुदाई की गई उसने भी ईसा के प्रारम्भिक युगो की सस्कृति पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस क्षेत्र से तथा इसके आसपास तेस्सीतोरी को प्रारभिक गुप्तयुग की बडी मृण्मय कलाकृतिया सन् 1918 मे प्राप्त हुई थी। रगमहल के उत्तर पूर्व मे 2 किलोमीटर की दूरी पर स्थित स्थान पर स्लेटी रग के मृदपात्रो की प्राप्ति ने यह आशा दिलाई थी कि रगमहल से आर्य सभ्यता के सूचक अवशेषो की सभवत प्राप्ति हो पर "रॉयल स्वैडिश एक्सपीडीशन" द्वारा डॉ हन्नारिड के निदेशन मे की गई खुदाई द्वारा यहा से ऐसे लाल पात्र मिले जिन पर काले रग के डिजाइन बने हुये है। यद्यपि कुछ पात्रो के टुकडो पर वही डिजाइन पाये गये जिनको देखकर पात्रो पर हडप्पाकालीन डिजाइन के होने का भ्रम होता था पर छानबीन के पश्चात् उस क्षेत्र मे एक नई सस्कृति होने की पुष्टि हुई। यह सस्कृति अपने लाल पात्रो पर काले रग से डिजाइनो के कारण तथा हडप्पा मे प्राप्त चित्रो की समता वाले अलकरणो के कारण तथा अन्य सामग्री के आधार पर रगमहल सस्कृति कहलाई। यहा की सस्कृति कुषाण कालीन एव पूर्व गुप्तकालीन के समकक्ष कही जाय तो अत्युक्ति न होगी। यहा के पात्र क्षेत्रीय कारीगरी का अकन होने के कारण राजस्थान के बाहर की सस्कृति से अछूते रहे, यह ध्यान देने की बात है।

रगमहल से खुदाई के आधार पर प्राप्त सामग्री मे घटाकार मृदपात्र अपनी विशेषता रखते है। इन पर चित्रित चिन्ह है। ये कलात्मक अलकरण लाल भूमि पर काले रग से बने हुये है। कुछ पात्रो पर ये मिट्टी मे कुरेदे हुये भी हैं। ये उसी प्रकार के है जैसे हस्तिनापुर से प्राप्त हुये है और जिनको ईसवी सन् के प्रारम्भिक युगो का माना गया है। कुछ पात्र लाल रग से रगे पात्रो पर काले रग का पुट रखते है। ये भी ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी के है।

यहा की अन्य उपलब्धियो मे टोटीदार घडे है। ये छोटे व बडे दोनो प्रकार

के है। कुछ वैसे ही है जैसे भीटा से प्राप्त हुये है। कुछ का आकार वैसा ही है जैसा भमन थेरी से प्राप्त घडो का है। लाल पालिशदार वे पात्र भी जो छिडकाव मे प्रयोग किये जाते होगे, इस स्थान से पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त हुये थे। इन पात्रो मे कुछ सलेटी रग के भी है और तक्षशिला के सिरकप स्थान से प्राप्त पात्रो से सहज मे ही साम्य प्रस्तुत करते है। कुछ मृदपात्रो पर कपडो की छाप है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुम्हार ने पात्र बनाते समय कपडे को गीली मिट्टी पर रख दिया और कपडे को बुनने की छाप पात्र पर पड गई हो। दिन-प्रतिदिन के उपयोग के पात्रो मे खाना पकाने के बतन तथा कढाई आदि भी यहा से प्राप्त हुये है। अन्य पात्रो मे छोटे-बडे प्याले, कटोरे तथा बतनो के ढक्कन हैं। इनके साथ ही दीपक, दीपदान, दीप-बैठकें तथा धूपदान भी यहा से प्राप्त हुये हैं।

रगमहल से 12 कि मी पूर्व मे बडा पाल के टीले से भी मूर्तियां मिली है। सूरतगढ के पश्चिम मे सरदारगढ मे भी चित्रित बतन मृदपात्र मिले है। सरदारगढ के दक्षिण पूर्व मे भैरापुर मे भी बर्तन मिले है।

यहा से प्राप्त पात्र छेददार साचे से बने तथा रोगनदार है। सम्भवत लाल रग का प्रयोग अलकरण एव चमक देने के लिये पात्रो पर हुआ करता था।

कलाकृतियो मे मानव आकृतिया भी प्राप्त हुयी है। मृण्मय कलाकृतियो मे कतिपय पशु-आकृतिया है। इनके साथ ही कई बच्चो के खेलने की पहियेदार छोटी मिट्टी की गाडिया भी यहा से मिली है।

भीनमाल (जिला जालोर) राजस्थान पुरातत्व विभाग द्वारा जालोर जिले मे स्थित भीनमाल स्थान पर सन 1954 मे खुदाई की गई थी पर टीले को ग्रामीणो द्वारा ईंटो की प्राप्ति की धुन मे खोद दिये जाने के कारण भीनमाल के विषय मे कुछ ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश मे नही आ सके। साहित्य के आधार पर हम सब जानते हैं कि भीनमाल को श्रेय महाकवि माघ को जन्म देने का है पर हमको गुप्तोत्तर काल से पूव का भीनमाल का इतिहास नही ज्ञात है। खुदाई द्वारा प्राप्त मृदभाण्ड खण्डो से तथा क्षत्रप सिक्को की वहा से प्राप्ति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसा की द्वितीय या प्रथम शताब्दी से यहा पर सास्कृतिक जीवन पनपा। यह हमे यहा से बहुत बडी सख्या मे प्राप्त लाल रगी भूमि पर काले रग के चित्रण से स्पष्ट होता है। ऐसे पात्र रगमहल से भी प्राप्त हुये है। माघ के समय तक और उसके पश्चात भी यह स्थान सास्कृतिक क्षेत्र बना रहा। इसका अनुमान यहा पर और यहा के आसपास स्थित भवनो के अध्ययन से भी होता है। यहा के मृदपात्रो पर विदेशी प्रभाव देखा गया है। इनमे यूनानी दुहत्थी सुराही की प्राप्ति विशेष उल्लेखनीय है। यों भीनमाल को प्राचीन काल मे श्रीमाल भी कहते थे।

इस प्रकार राजस्थान के विभिन्न भागो मे किये गये उत्खननो से प्रागैतिहासिक राजस्थान की काफी जानकारी मिली है। इससे स्पष्ट हो गया है कि राजस्थान के निवासी ससार के अन्य सभ्य देशो के निवासियो की भाति ही भाजन सग्रह की अवस्था से लेकर भोजन उत्पादन की विभिन्न अवस्थाओ तक निरन्तर प्रगति करते रहे। उपयोगी, अलकारिक तथा ललित कलाओ के विकास मे भी वे किसी से पीछे न रहे। यहा मानव सवप्रथम दक्षिण-पूर्वी राजस्थान मे आया और वह यहा ऐतिहासिक काल तक बराबर रहा। पश्चिमी राजस्थान व उत्तरी राजस्थान मे दूसरी व तीसरी खेप मे आये। उत्तरी राजस्थान में प्रथम तीन खेपो का पता नही चला है लेकिन उनकी नगर सस्कृति का अवश्य पता चला है। इसके समाप्त होने के बाद वे लोग आये जो काश्त करते थे तथा पशुपालन मे भी रुचि लेते थे।

इस निबन्ध मे सक्षेप में राजस्थान के प्रागैतिहास पर प्रकाश डाला गया है। अभी तक राजस्थान के प्रागैतिहासिक पुरातत्व का व्यवस्थित रुप से अध्ययन नही हुआ है ताकि उस युग का सुसगत वर्णन किया जा सके। अभी भी प्रागैतिहास को और ज्यादा जानने के लिये विस्तृत उत्खनन की आवश्यक्ता है। अभी तक जो भी पुरातात्विक स्थलो का अध्ययन हुआ है तथा यहा के उत्खनन कार्यो की रिपोर्टें व उनके सम्बन्ध मे निबन्ध प्रकाशित हुए हैं, उनसे सुसगत जानकारी नही मिली है। आवश्यकता है कि पश्चिमी, उत्तरी व दक्षिण-पूर्वी राजस्थान के पुरातत्व पर विस्तार से अध्ययन हो तथा सर्वेक्षण रिपोट प्रकाशित हो।



ऐतिहासिक राजस्थान

राजस्थान अथवा रायथान का शब्दिक अर्थ राजधानी है। इस अर्थ से यह शब्द बहुत पहले से प्रचलन मे था। जोधपुर महाराजा भीमसिंह ने 1791 ई मे मराठो के विरुद्ध सम्मिलित कायवाही के उद्देश्य से जयपुर नरेश को लिखे पत्र मे 'राजस्थाना' (राजधानियो) मे एकता की इच्छा प्रकट की अत इतना तो निश्चित है कि कनल जेम्स टॉड से बहुत पूव राजस्थान शब्द प्रचलित था। टॉड ने अपने ग्रथ 'एनाल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज आफ राजस्थान' मे सर्वप्रथम इस शब्द को प्रदेशवाची अथ दिया। वास्तव मे राज + स्थान का अथ स्थानो का राजा 'अथवा 'श्रेष्ठ स्थान' है। इस प्रकार आरम्भ मे राजस्थान शब्द का अथ राजा का स्थान था किन्तु आज उसका अथ स्थानो का राजा या श्रेष्ठ स्था है। कर्नल जेम्म टॉड ने ही राजस्थान के घर घर मे लियोनीडाज और कण कण पर थर्मोपाली जैसे युद्ध होने की बात कही थी जो कीर्तिस्तम्भ व हवामहल की भाँति राजस्थान की पहचान बन गई।

शिलालेखो व प्राचीन ग्रथो में राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो के अनेक नाम मिलते है। यहा समय समय पर शासन करने वाली जातियो तथा भौगोलिक विशेषताओ के कारण यह नामकरण हुए थे। मरू व धन्व नाम रामायण व भागवत मे जोधपुर सम्भाग के विभिन्न क्षेत्रो के लिये प्रयुक्त किये गये। 'जागल' बीकानेर प्रदेश का महाभारत कालीन नाम है। कालान्तर मे 'जगलधर बादशाह' बीकानेर के नरेशो की उपाधि थी। मत्स्य महाजनपद की राजधानी विराट-नगर थी और इसका क्षेत्र वतमान जयपुर अलवर व भरतपुर के कुछ भागो तक विस्तृत था। ब्रज से सटे राजस्थान के वर्तमान क्षेत्र मे ही प्राचीन शूरसेन स्थित था। बीकानेर-नागोर सीमात क्षेत्र साल्व राज्य था। शिवि जनपद का स्थान चित्तोड के निकट था जबकि भादानक क्षेत्र भरतपुर-बयाना सीमा था। आधुनिक मेवाड को मेदपाट, प्राग्वाट आदि नामो से जाना जाता था। सीकर से साभर तक का क्षेत्र अनतगोचर, साभर सवा लाख गावो के कारण सपादलक्ष कहलाता। जालोर का प्राचीन नाम जबालिपुर, मेडता का मेदान्तक, पाली का पल्लिकानगरी, मडोर का माण्डव्यपुर, चित्तोड का चित्रकूट, जैसलमेर का माड नागोर का अहिछत्रपुर, आबू का अबुद।

राजस्थान की धरती पर मनुष्य का निवास आज से एक लाख वष पूर्व से माना जाता है। बनास गभीरी, वेडच इत्यादि नदियो के किनारे मिले भौडे घडे हुए पत्थर के औजारो के बल पर विद्वान यह स्वीकार करते हैं कि आरम्भिक

था। भरतपुर साभर तथा अजमेर से काफी बडी मात्रा मे गुप्त राजाओ के सिक्के प्राप्त हुए हैं। गुप्त कालीन स्थापत्य सम्बन्धी विशेषताओ से युक्त मन्दिर गोडवाड, मुकुन्दडा, भीनमाल, मडोर, कामा, ओसिया, और बेदला आदि राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो मे निर्मित किये गये अत राजस्थान का गुप्तो के आधीन होना निश्चित है। सामान्यत यह स्वीकार किया जाता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम के शासन काल से लेकर कुमारगुप्त के बाद तक राजस्थान मे गरुड युक्त गुप्त राज्य मुद्रा से शासन कार्य सम्पन्न होता रहा। गुप्त शासन की अवधि डेढ सौ वर्ष के लगभग थी। मालव, योधेय और शको के छोटे छोटे राज्यो को समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की विजयवाहिनियो ने कुचल दिया। परवर्ती निर्बल गुप्त शासको के समय राजस्थान पर हूण आक्रमण हुए। शक्तिकुमार के अटपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि गुहिल वशी अल्लट के शासक का विवाह हरियादेवी नामक हूण राजकुमारी से हुआ था। पद्मनाभ द्वारा रचित कान्हडदे प्रबन्ध के अनुसार जालोर के शासक कान्हडदे के अधीन हूण, यादव, परमार गुहिल आदि थे। दसवी शताब्दी के जैन विद्वान सोमदेव सूरी ने नीतिवाक्यामृत नामक ग्रन्थ मे एक परम्परा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार एक हूण शासक (सम्भावत मिहिरकुल) ने चित्रकूट पर विजय प्राप्त की थी। प्राचीन माध्यमिका अथवा वर्तमान चित्तोड का क्षेत्र चित्रकूट नाम से जाना जाता था इसका साक्ष्य गुहिल रायमल्ल का उदयपुर अभिलेख प्रस्तुत करता है जिसमे कहा गया है कि अरिसिंह ने चित्रकूट (चित्तोड) की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग कर दिया। कोटा क्षेत्र का भीमचौरी अभिलेख भी राजस्थान पर हूण आक्रमण का प्रमाण देता है। इस अभिलेख के अनुसार ध्रुवस्वामी नामक व्यक्ति हूणो के विरूद्ध युद्ध करते हुए मारा गया। राजस्थान के अनेक क्षेत्रो से हूणो की मुद्राए भी मिली है। हार्नले नामक विद्वान ने मारवाड के किसी क्षेत्र से मिली हुई 175 मुद्राओ का परीक्षण कर उन्हे हूण शासक तोरमण की मुद्राऐ बताया। रनियावास, खोह, अबनेरी, खेजरोली, लोसल (सीकर जिला), साभर, देसूरी, नागोर, जालोर, चोहटन मरदारगढ, पीपलाज, सायरा-रणकपुर भाग, जूनाखेडा (झालावाड जिला) तथा मेवाड से भी हूणो के चादी और ताबे के सिक्के मिले है। अत इतिहासकारो द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात राजस्थान के कुछ भागो पर हूणो की सत्ता स्थापित रही।

माण्डव्यपुर (मडोर) के प्रतिहारो का आरम्भ छठी शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। पौराणिक मान्यताओ के अनुसार माडू ऋषि ने मडोर की स्थापना की थी। वर्तमान जोधपुर से आठ किलोमीटर उत्तर मे स्थित मडोर के प्रतिहार वश की जानकारी के अधिक साधन उपलब्ध नही है। मडोर के प्रतिहार वशी शासक बाउक का जोधपुर अभिलेख तथा उसके भाई कक्कुक के जोधपुर मे 32 किलोमीटर उत्तर पश्चिम मे स्थित घटियाला (प्राचीन नाम रोहिंसक्प) से प्राप्त

पाषाण युग के मानव ने राजस्थान को धरती पर अपने क्रिया-कलाप आरम्भ कर दिये थे । सिन्धु घाटी सभ्यता के समय राजस्थान मे समृद्ध सभ्यता के अवशेष कालीबगा से मिले हैं । महाकाव्य काल की अनेक घटनायें जागल विराट-नगर (बैराठ), मरु-धन्व मरुकान्तार उलूक, अर्बुद, अहिछत्रपुर तथा अनेक अन्य राजस्थानी प्रदेशो से सम्बन्धित रही । आहड, बागोर (भीलवाडा) रगमहल (गगानगर), रैड (जयपुर), साभर, नोह (भरतपुर) इत्यादि स्थानो मे प्राप्त पुरातात्विक सामग्री के बल पर पुरातत्ववेत्ता यह स्वीकार करते ह कि ईसा से बहुत पहले ही राजस्थान में सुविकसित सभ्यता विद्यमान थी ।

ईसा से लगभग छ सौ वष पूर्व मत्स्य और शूरसेन जैसे महाजनपदो का उत्थान व पतन भी राजस्थान की भूमि पर ही हुआ । कठिन भौगोलिक परिस्थितियो के कारण आवागमन दुष्कर था और प्रारम्भ से ही बडी बडी फौजे इस क्षेत्र की ओर मुह करने से कतराती थी । रेगिस्तान और पहाडो के कारण प्रारम्भ से ही इस धरती ने शरणागत की रक्षा की । यूनानी विजेता सिकन्दर से पराजित मालव, योधय तथा शिवि जातियो ने राजस्थान मे ही आश्रय लिया था । शिवि चित्तोड के समीप गिरी, मालव जयपुर के पास बागरछल और योधय बीकानेर के निकट जोहियावाटी मे आ कर बस गये । जयपुर के नजदीक 'बीजक पहाडी' पर ईंटो से चुना हुआ गोल मन्दिर, अशोक का भाब्रू अभिलेख, चित्तोड दुर्ग का निर्माता चन्द्रराव मोरी, बप्पा रावल का मौर्य शासक मान मोरी से चित्तोड छीनने सम्बन्धी परम्परा, मेजर एस्किनी द्वारा राजस्थान की जातियो की सूची मे मौर्य जाति को सम्मिलित करना आदि कुछ ऐसे तथ्य है जो यह साक्ष्य प्रस्तुत करते है कि चन्द्रगुप्त व अशोक के समय राजस्थान भी मौर्य साम्राज्य का ही अग था । मौर्य वश के शासन का अत कर पुष्यमित्र ने मगध मे एक नये वश की स्थापना की जो इतिहास मे सु ग वश के नाम से प्रसिद्ध है । सु ग शासन काल मे माध्यमिका और साकेत पर यूनानी आक्रमण का उल्लेख प्रसिद्ध विद्वान पातजली ने किया है । माध्यमिका वर्तमान चित्तोड के निकट स्थित नगर था । अधिकाश विद्वान पुष्यमित्र सु ग के समय हुए इस आक्रमण का नेता डेमेट्रियस अथवा मनेन्डर को मानते हैं । नलियासागर, बैराठ तथा नगरी म यूनानियों के सिक्के मिले ह जो यह साक्ष्य प्रस्तुत करते ह कि राजस्थान पर यूनानियो के आक्रमण हुए । कुषाण और शक क्षत्रपो का प्रभाव भी राजस्थान के कुछ क्षेत्रो पर रहा । इसकी पुष्टि करते हैं बासवाडा चित्तोड, साभर तथा पुष्कर से प्राप्त शको के सिक्के और गगानगर से मिली हुई कुषाणो की मुद्राए । सौराष्ट्र के शक शासक रूद्रदामा के 150 ई के जूनागढ अभिलेख स भी राजस्थान के कुछ भागो पर शक शासन की पुष्टि होती है । रूद्रदामा का जूनागढ अभिलेख ऐसा प्राचीनतम अभिलेख है जिसमें मरुदेश का वणन मिलता है ।

ईसा की चौथी शताब्दी के आरम्भ मे राजस्थान गुप्त साम्राज्य मे सम्मिलित

था। भरतपुर साभर तथा अजमेर से काफी बडी मात्रा मे गुप्त राजाओ के सिक्के प्राप्त हुए है। गुप्त कालीन स्थापत्य सम्बन्धी विशेषताओ से युक्त मन्दिर गोडवाड, मुकुन्दडा, भीनमाल, मडोर, कामा, ओसिया, और वेदला आदि राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो मे निर्मित किये गये अत राजस्थान का गुप्तो के आधीन होना निश्चित है। सामान्यत यह स्वीकार किया जाता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम के शासन काल से लेकर कुमारगुप्त के बाद तक राजस्थान मे गरुड युक्त गुप्त राज्य मुद्रा से शासन कार्य सम्पन्न होता रहा। गुप्त शासन की अवधि डेढ सौ वर्ष के लगभग थी। मालव, योधेय और शको के छोटे छोटे राज्यो को समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की विजयवाहिनियो ने कुचल दिया। परवर्ती निर्बल गुप्त शासको के समय राजस्थान पर हूण आक्रमण हुए। शक्तिकुमार के अटपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि गुहिल वंशी अल्लट के शासक का विवाह हरियादेवी नामक हूण राजकुमारी से हुआ था। पद्मनाभ द्वारा रचित कान्हडदे प्रबन्ध के अनुसार जालोर के शासक कान्हडदे के अधीन हूण, यादव, परमार गुहिल आदि थे। दसवी शताब्दी के जैन विद्वान सोमदेव सूरी ने नीतिवाक्यामृत नामक ग्रन्थ मे एक परम्परा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार एक हूण शासक (सम्भावत मिहिर-कुल) ने चित्रकूट पर विजय प्राप्त की थी। प्राचीन माध्यमिका अथवा वर्तमान चित्तोड का क्षेत्र चित्रकूट नाम से जाना जाता था इसका साक्ष्य गुहिल रायमल्ल का उदयपुर अभिलेख प्रस्तुत करता है जिसमे कहा गया है कि अरिसिंह ने चित्रकूट (चित्तोड) की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग कर दिया। कोटा क्षेत्र का भीमचौरी अभिलेख भी राजस्थान पर हूण आक्रमण का प्रमाण देता है। इस अभिलेख के अनुसार ध्रुवस्वामी नामक व्यक्ति हूणो के विरुद्ध युद्ध करते हुए मारा गया। राजस्थान के अनेक क्षेत्रो से हूणो की मुद्राऐ भी मिली है। हानले नामक विद्वान ने मारवाड के किसी क्षेत्र से मिली हुई 175 मुद्राओ का परीक्षण कर उन्हे हूण शासक तोरमण की मुद्राऐ बताया। रनियावास, खोह, अबनेरी, खेजरोली, लोसल (सीकर जिला), साभर, देसूरी, नागोर, जालोर, चोहटन मरदारगढ, पीपलाज, सायरा-रणकपुर माग, जूनाखेडा (झालावाड जिला) तथा मेवाड से भी हूणो के चादी और ताबे के सिक्के मिले है। अत इतिहासकारो द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात राजस्थान के कुछ भागो पर हूणो की सत्ता स्थापित रही।

माण्डव्यपुर (मडोर) के प्रतिहारो का आरम्भ छठी शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। पौराणिक मान्यताओ के अनुसार माडू ऋषि ने मडोर की स्थापना की थी। वर्तमान जोधपुर से आठ किलोमीटर उत्तर मे स्थित मडोर के प्रतिहार वंश की जानकारी के अधिक साधन उपलब्ध नही है। मडोर के प्रतिहार वंशी शासक बाउक का जोधपुर अभिलेख तथा उसके भाई कक्कुक के जोधपुर मे 32 किलोमीटर उत्तर पश्चिम मे स्थित घटियाला (प्राचीन नाम रोहिंसकूप) से प्राप्त

पाच अभिलेखो मे अंकित तथ्यो के आधार पर डा दशरथ शर्मा, आर सी मजुमदार, दिनेशचन्द्र शुक्ल, बैजनाथ पुरी आदि ने इस वश का इतिहास निर्मित करने के प्रयत्न किये है। बाउक का अभिलेख वि स 894 (837 ई) का है तथा घटियाला मे प्राप्त कक्कुक के कुल पाच अभिलेखो मे मे तीन की तिथि वि स 918 (861 ई) है। बाउक व कक्कुक के अभिलेखो के आधार पर उनका आदि पूवज हरिशच द्र था जिसका समय इतिहासकारो ने छठी ईस्वी शताब्दी का मध्य भाग माना है। इतिहास मे मडोर के प्रतिहार वश के अतिरिक्त दो अन्य वश भी प्रतिहार कहे जाते थे। इन तीनो राजवशो मे परस्पर क्या सम्बध था? यह प्रश्न आज तक बिवाद का विषय बना हुआ है। मडोर के अलावा जो दो अ य वश ज्ञात हैं उनमे से एक कन्नोज पर शासन करने वाला प्रतिहार वश है जिसमे नागभट्ट, व सराज, मिहिरभोज व महे द्रपाल जसे पराक्रमी नरेश हुए। इस वश से सम्बधित अधिकाश साधनो मे इस वश को गुजर-प्रतिहार वश कहा गया है। एक अ य वश दक्षिणी गुजरात स्थित लाट देश पर शासन करता था, नन्दिपुरी इसकी राजधानी थी।* लाट के शासक दद्द ने हप वद्ध न से पराजित वल्लभी के ध्रुव भट्ट को शरण दी थी। लाट के शासक गुजर कहलाते थे। सामान्यत यह स्वीकार किया जाता है कि मडोर, कन्नोज व लाट मे शासन करने वाले राजवशो मे परस्पर रक्त सम्ब ध था। इस मान्यता के समथन मे निम्न तक दिये जाते है—

(1) कन्नोज व मडोर के राजवशो की वशावलिया देखने से ज्ञात होता है कि दोनो के कई शासको के एक जैसे नाम थे यथा नागभट्ट व कक्कुक।

(2) माण्डव्यपुर व लाट दोनो राजवशो मे दद्द नामक शासक हुए।

(3) आर सी मजूमदार की मान्यता है कि मडोर तथा कन्नोज दोनो ही राजवशो के लेखो मे उन्होने लक्ष्मण को अपना आदि पूवज बताया है। तीनो राजवशो मे सम्बन्ध स्थापित करने के लिये दिये गए तर्को का विश्लेषण करन पर यह धारणा सत्य नही लगती क्योकि—(अ) माण्डव्यपुर के शासको ने अपने लेखा मे स्वय को सदैव प्रतिहार कहा है। कभी भी उन्होने अपने नाम के साथ गुर्जर नही जोडा। इसके ठीक विपरित लाट शासक सदैव ही गुजर कहे जाते थे, उन्होने कभी भी स्वय को प्रतिहार नही कहा। इन दोनो वशो से पूणतया अलग कन्नोज के शासक गुजर प्रतिहार कहलाते थे। (ब) यद्यपि माण्डव्यपुर तथा कन्नोज के शासको के लेखो मे श्रीराम के छोट भाई लक्ष्मण के उल्लेख मिलते है किन्तु जैसा कि डा दशरथ शर्मा ने स्पष्ट किया है कन्नोज के प्रतिहारो ने लक्ष्मण को अपना आदिपूवज बताया और उन्होंने स्वय को सूयवशी, रघुवशी, रघुकुल चूडामणि आदि कहा। इसके विपरीत मडोर के प्रतिहारो ने लक्ष्मण का उल्लेख केवल इस-लिय किया कि उसने प्रतिहार का कार्य सम्पन्न कर इस काय को गौरव तथा प्रतिष्ठा

प्रदान की। साथ ही मडोर के प्रतिहारा ने सदैव ही हरिशचद्र नामक ब्राह्मण को अपना आदिपूर्वज बताया।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि कन्नोज के प्रतिहार रघुवशी क्षत्रिय थे। सम्भवत प्रारम्भ मे गुर्जर क्षेत्र से सम्बन्धित होने के कारण स्वय को गुजर-प्रतिहार कहते थे। माण्डव्यपुर के प्रतिहार वश का गुजर जाति अथवा क्षेत्र से कुछ भी सम्बन्ध नही था और वे क्षत्रिय नही वल्कि ब्राह्मण थे। लाट के शासको ने स्वय को कभी प्रतिहार नही कहा इसलिये वे गुर्जर जाति के ही थे। वास्तव मे तीनो राजवशो का परस्पर कोई सम्बन्ध नही था।

मण्डोर का प्रतिहार वश मूल रूप से ब्राह्मण वश था क्योकि जोधपुर अभिलेख और घटियाला अभिलेखो मे इस वश का आदि पूर्वज ब्राह्मण हरिशचन्द्र नामक व्यक्ति बताया गया है। ऐतेय ब्राह्मण मे यज्ञ के समय विशेष काय करने वाले ब्राह्मणो को प्रतिहार कहा गया है। राजपूत काल मे द्वाररक्षक को प्रतिहार कहा जाता था। मडोर के प्रतिहार निश्चित रूप से आरम्भ मे द्वारपाल का काय करते होगे क्योकि उन्होने अपने लेखो मे लक्ष्मण की केवल इस कारण प्रशसा की है कि उसने द्वारपाल के काय को गौरव प्रदान किया। जोधपुर तथा घटियाला लेखो के अनुसार बाउक तथा कक्कुक हरिशचद्र के बारहवे वशज थे। इस कारण विद्वान हरिशचद्र का समय 550 ई के लगभग मानते है। अभिलेखो के अनुसार हरिशचद्र के दो रानिया थी—एक ब्राह्मणी तथा दूसरी क्षत्राणी। भद्रा नामक क्षत्राणी के पुत्र क्षत्रिय प्रतिहार कहलाये। हरिशचद्र के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी उपलब्ध न होने से यह कहना कठिन है कि वह स्वय शासक था अथवा नही। उसे रोहिल्लधी की उपाधि अवश्य ही दी गई है। इस उपाधि का अथ अभी तक ज्ञात नही है। मजूमदार तथा रे इस उपाधि के आधार पर प्रतिहारो को विदेशी बताते है। डा दशरथ शर्मा के अनुसार रोहिल्लधी का अथ है योग की क्रिया मे निपुण।

हरिशचद्र के क्षत्राणी भद्रा से उत्पन्न चार पुत्र थे—भोगभट्ट, कक्क, रज्जिल व दद्द। अभिलेखो के अनुसार हरिशचद्र के चारो पुत्रो ने अपनी शक्ति से माण्डव्यपुर पर अधिकार स्थापित कर लिया मजूमदार की मान्यता है कि हरिशचद्र के चारो पुत्रो ने चार पृथक राज्य स्थापित किये तथा दद्द ने ही नन्दिपुर मे इस वश का शासन स्थापित किया। मजूमदार महोदय की धारणा स्वीकार करने योग्य नही है। यदि हरिशचद्र के पुत्र ने सुदूर गुजरात तक साम्राज्य स्थापित किया होता तो इसका उल्लेख अभिलेखो म अवश्य ही किया गया होता जसे कि सगव मडोर विजय का वणन किया गया है। हरिशचद्र का उत्तराधिकारी उसका तीसरा पुत्र रज्जित बना इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनो बडे पुत्रो की मृत्यु उसके जीवन काल मे ही हो गई। रज्जिल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र नरभट्ट बना जिसे पेल्ला पेल्ली की उपाधि प्राप्त थी। उसके सम्बन्ध म विशेष कुछ भी जानकारी उपलब्ध

नही है। नरभट्ट का उत्तराधिकारी नागभट्ट था जिसने मेदान्तक अथवा वर्तमान मेडता को अपनी राजधानी बनाया। वह हर्ष वर्द्धन का समकालीन था। प्रतिहार इतिहास का एक भी ऐसा साधन नही है जिससे आभास होता हो कि उसने हर्ष की आधीनता मान ली थी। नागभट्ट के बडे पुत्र तात ने अपने छोटे भाई भोज के पक्ष मे सिंहासन त्याग दिया और मडोर स्थित आश्रम मे स्वय ईश्वर आराधना मे तल्लीन हो गया। मजूमदार की यह मान्यता निराधार है कि चीनी यात्री ह्युनसाग की यात्रा के समय तात शासन कर रहा था। चीनी यात्री द्वारा उल्लिखित पी लो मा-लो की पहचान लगभग सभी विद्वान भीनमाल से करते है जहा उस समय चापवश का शासन था। भोज के उत्तराधिकारी क्रमश यशोवर्द्धन तथा चण्डुक बने किन्तु घटियाला और जोधपुर अभिलेखो से इन तीनो शासको के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी नही मिलती। चण्डुक के पश्चात सिलुक शासक बना जो इस वश का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण शासक सिद्ध हुआ। सिलुक का समय आठवी शताब्दी इस्वी का प्रारम्भ माना जाता है। जोधपुर अभिलेख के अनुसार उसने आवानी तथा वल्ल की सीमा निर्धारित की। उसने भट्टी देवराज को परास्त किया। डॉ दशरथ शर्मा की मान्यता है कि सिलुक के पूर्वज जैसलमेर के भाटियो के अधीनस्थ थे। सिलुक ने देवराज को पराजित कर स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करदी। अभिलेखो मे उसे 'वल्ल मण्डल पालक' की उपाधि प्रदान की गई है। यद्यपि इस उपाधि का स्पष्ट अर्थ ज्ञात नही हैं किन्तु यह माना जाता है कि प्रतिहारो के पडोस मे स्थित वल्ल राज्य की सेनाओ द्वारा प्रतिहारो पर बार बार आक्रमण किये जाते थे। सिलुक ने वल्ल राज्य पर विजय प्राप्त की। मजूमदार की मान्यता है कि मालवा, लाट तथा मडोर के प्रतिहारो के सघ का नेतृत्व करने के कारण सिलुक ने 'वल्ल मण्डल पालक' की उपाधि धारण की थी। यह मत इस धारणा पर आधारित है कि तीनो राजवशो मे रक्त सम्बन्ध था।

जोधपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि सिलुक धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। त्रेता नामक स्थान पर उसने एक जलाशय तथा सिद्धेश्वर महादेव के मन्दिर का निर्माण करवाया। सिलुक के शासन के अन्तिम वर्षो मे सिंध के अरबो के आक्रमण हुए। अरब सेनापति जुनैद ने भीनमाल, जुर्ज व ममद पर आक्रमण किये। इनमे से मर्मद सिलुक के साम्राज्य के अन्तर्गत था। इस समय अरब आक्रमणो का सामना कन्नोज शाखा के नागभट्ट प्रथम द्वारा किया गया था। सिलुक के उत्तराधिकारी झोट, भिल्लादित्य, कक्क, बाहुक तथा कक्कुक के इतिहास की विशेष जानकारी नही है। इतना निश्चित है कि बाद के राजाओं को कन्नौज के प्रतिहारो की आधीनता स्वीकार करनी पडी। इस प्रकार मडोर के इस प्रतिहार वश का स्वतन्त्र राज्य समाप्त हो गया।

भारतीय इतिहास के प्राचीन काल का 700 ई से 1200 ई तक का युग

'परवर्ती प्राचीन काल' 'प्रारम्भिक मध्य युग' सामन्तीय युग' आदि नामो से भी सम्बोधित किया जाता है किन्तु अधिकाशत इस युग को 'राजपूत काल' के नाम से जाना जाता है। इस युग मे गुजरात मे सोलकी (चौलुक्य),मालवा मे पवार(परमार), बुन्देलखण्ड मे चदेल, कन्नोज मे गहडवाल, दिल्ली मे तवर (तोमर), बगाल मे पाल तथा कर्नाट मे राष्ट्रकूट वश का शासन स्थापित था। राजस्थान मे गुहिल, राठोड, कच्छवाह, भाटी, मालनी, गौड, प्रतिहार (परिहार), चौहान, पवार इत्यादि वशो के राज्य स्थापित हुए। राजस्थान मे राजपूत राज्यो की स्थापना के साथ ही विदेशी आक्रमणो की झडी लग गई तथा पूरे उत्साह से इन आक्रमणो का सामना करने की परम्परा भी आरम्भ हो गई। इस दृष्टि से सब प्रथम जालोर और भीनमाल के प्रतिहारो ने उल्लेखनीय कार्य किया। 740 ई के लगभग भीनमाल पर सिन्ध के अरबो का आक्रमण हुआ। प्रतिहार नागभट्ट प्रथम ने अपने राज्य की तो सफलतापूर्वक रक्षा की ही साथ ही भडोच पर आक्रमण करने वाले अरबो को पराजित कर वहा अपने वश की सत्ता स्थापित की। इस प्रतापी वश मे वत्सराज, नागभट्ट द्वितीय जैसे पराक्रमी नरेश हुए। नागभट्ट द्वितीय ने कन्नोज जीता और उसे अपनी राजधानी बनाया। इस वश के शासको ने पूर्वी बगाल (वतमान बगला देश) तक अपनी धाक जमाई। पाल-प्रतिहार-राष्ट्रकूट वशो के बीच पीढियो तक चलने वाले त्रिकोणात्मक सघर्ष मे सफलता प्राप्त कर इस वश के राजाओ ने लगभग समस्त उत्तरी भारत पर अपने वश का साम्राज्य स्थापित किया। मिहिरभोज ने अनेक अरब आक्रमणो को विफल किया। बिलादुरी और सुलेमान सौदागर जैसे अरब इतिहासकारो ने लिखा कि भारत मे प्रतिहार भोज अरबो का सबसे प्रबल शत्रु था।

प्रतिहारो का प्रतापदीप धीमा पडा तब तक चौहानो का उदय होने लगा। साभर आदिस्थान होने तथा साकम्भरी देवी का उपासक होने के कारण यह चौहान वश सभरीस व साकम्भर नामो से भी प्रसिद्ध हुआ। चौहान आधिपत्य के समय साभर राज्य के आधीन सवा लाख गाव होने के कारण इस वश को सपादलक्षी भ कहा गया। इस चौहान वश मे अजयराज अर्णोराज, विग्रहराज चतुथ वीसलदेव तथा पृथ्वीराज तृतीय जैसे प्रतापी नरेश हुए। अजयराज ने अजमेर नगर की स्थापना की। अर्णोराज ने अनासागर तालाब बनवाया और एक आक्रमणकारी मुस्लिम सेना को बुरी तरह पराजित किया तथा जयसिंह सिद्धराज व कुमारपाल जैसे चौलुक्य शासको से युद्ध किये। विग्रहराज वीसलदेव ने अनेक नवीन विजयो द्वारा चौहान साम्राज्य की सीमाओ मे वृद्धि की। वीसलदेव के दिल्ली शिवालिक अभिलेख तथा बिजोलिया अभिलेख यह साक्ष्य प्रस्तुत करते है कि उसने तोमरो को युद्ध क्षेत्र मे पराजित कर दिल्ली पर चौहानो का अधिकार जमाया और अपने वश को अखिल भारतीय स्तर पर मान-प्रतिष्ठा दिलाई। वीसलदेव के दोनो अभिलेख पृथ्वीराज रासो द्वारा उत्पन्न इस परम्परा को असत्य सिद्ध करते हैं कि दिल्ली के

तोमर शासक अनगपाल ने अपने दोहित्र पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य सौंपा था। अनेक सबल प्रमाणों से अब यह सिद्ध हो गया है कि न तो अनगपाल की पुत्री कमलादेवी पृथ्वीराज की माता थी और न पृथ्वीराज को अपने नाना से दिल्ली का राज्य ही प्राप्त हुआ। पृथ्वीराज चौहान की माता का नाम कपूरदेवी था और वह त्रिपुरी के अचलराय की कन्या थी व पृथ्वीराज के ताऊ बीसलदेव ने तोमरों को पराजित कर दिल्ली पर आधिपत्य स्थापित किया था। पृथ्वीराज तृतीय चौहान 'राय पिथौरा' नाम से भी प्रसिद्ध था। उसने भदानकों को पराजित कर उनके राज्य को चौहान साम्राज्य में मिलाया तथा सोलकियों चदेलों व गहडवालों पर अपनी धाक जमाई। भारत विजय की महत्वकांक्षा से आक्रमण करने वाले मोहम्मद गौरी को 1191 ई में तराइन के प्रथम युद्ध में बुरी तरह पराजित किया। इस युद्ध की एक महत्वपूर्ण बात तो यह थी कि इसमें भारत के अनेक राजाओं ने सम्मिलित होकर पृथ्वीराज के नेतृत्व में युद्ध किया था और इस एकता के परिणाम स्वरूप आक्रमणकारी को पराजित किया गया। दूसरी उल्लेखनीय बात पृथ्वीराज की यह भूल कि उसने भागते हुए शत्रु का पीछा कर उसे पूरी तरह नष्ट नहीं किया जिससे अगले वर्ष 1192 ई में पूर्ण तैयारी के साथ उसने पुन आक्रमण किया और तराइन के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज को पराजित कर दिल्ली पर अपना राज्य स्थापित कर लिया।

चौहानों के तीन अन्य प्रमुख राज्य जालोर, नाडोल और रणथम्भोर में स्थापित हुए। जालोर की शाखा स्वर्णगिरी पर्वतमाला में शासन करने के कारण सोनगरा कहलाई। कीर्तिपाल ने मेवाड के सामतसिंह को अपदस्थ किया, उसी ने सिवाना के परमारों को पराजित किया। कीर्तिपाल के बाद समरसिंह ने जालोर दुर्ग की प्राकार बनवाकर तथा अनेक भवनों का निर्माण कर यश अर्जित किया। उसके पुत्र उदयसिंह के आधीन नाडोल व साचोर तक फैला हुआ बहुत विशाल साम्राज्य था। मेवाड के गुहिलों, गुजरात के सोलकियों तथा मारवाड के परमारों पर उसने अपने वंश की धाक जमाई। उदयसिंह के पुत्र चाचिगदेव ने भी साम्राज्य की सीमाओं में वृद्धि की। उसकी बहिन का विवाह मेवाड के राणा तेजसिंह से हुआ था। उसका पुत्र सामतसिंह व पौत्र कान्हडदेव क्रमश उसके उत्तराधिकारी हुए। कान्हडदेव के समय जालोर पर अलाउद्दीन खिल्जी का आक्रमण हुआ।

साभर के सिंहराव या वाक्पतिराज के पुत्र लाखण को नाडोल शाखा का प्रवर्त्तक माना जाता है। इस शाखा में शोभित, बलिराज, विग्रहराज, महेन्द्र, अणहिल्ल, बालप्रसाद, जेंदुराज, पृथ्वीपाल, जाजलदेव, आशाराज, रत्नपाल, राज्य पाल, कटुदेव, सहजपाल, आल्हण, केल्हण, जेतसिंह तथा सामतसिंह नामक शासक हुए। अणहिल्ल नाडोलिया चौहान शाखा का महत्वपूर्ण शासक था। उसने गुजरात के भीमदेव द्वितीय को पराजित किया और साभर को भी जीता। उसका पुत्र केल्हण भी इस वंश का महत्वपूर्ण शासक था।

रणथम्भोर शाखा मे गोविन्दराज, वाल्हण प्रल्हादन, वीरनारायण, वाग्भट्ट जैत्रसिंह तथा हमीर नामक शासक हुए। हमीर इस वंश का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नरेश था। उसने जलालुद्दीन तथा अलाउद्दीन खिल्जी से युद्ध किये।

1192 ई. के द्वितीय तराइन युद्ध मे विजय से मोहम्मद गौरी का दिल्ली पर अधिकार स्थापित हो गया। फिर दिल्ली के सुल्तानो द्वारा राजस्थान पर वार वार आक्रमण किये गये। दिल्ली के निकट स्थित होने के कारण सामरिक दृष्टि से राजस्थान सुल्तानो के लिये अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था। कुतुबुद्दीन ऐबक ने अजमेर पर आक्रमण किया। अल्तमश ने 1230-34 ई मे भारी फौज बल से रणथम्भोर पर आक्रमण किया। बलबन ने मेवात पर आक्रमण किया। 1291 ई मे जलालुद्दीन खिल्जी ने रणथम्भोर पर असफल आक्रमण किया। दिल्ली सल्तनत के सर्वाधिक शक्तिशाली सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जी ने 1301 से 1311 ई के बीच अपनी समस्त शक्ति राजस्थान पर आक्रमण मे झोक दी। शरणागत की रक्षा की परम्परा का पालन करते हुए रणथम्भोर के चौहान शासक हमीर ने अलाउद्दीन के दो बागी सरदारो को शरण दे दी। यद्यपि रणथम्भोर का सैनिक दृष्टि से महत्व था किन्तु जहा उसके पूर्ववर्ती सुल्तान असफल हुए उस अभेद्य समझे जाने वाले रणथम्भोर को जीतने की अलाउद्दीन की महत्वाकाक्षा इस आक्रमण का वास्तविक कारण थी। किन्तु हमीर द्वारा बागियो को शरण देना तात्कालिक कारण बना। जबरदस्त युद्ध हुआ। समस्त एशिया जीतने की लालसा रखने वाले अलाउद्दीन को काफी लम्बे समय तक असफल होना पडा। अन्त मे 'घर का भेदी लका ढाव' वाली कहावत चरितार्थ हुई। धन के लालच मे पड कर किसी षडयन्त्रकारी ने दुर्ग के द्वार खोल दिये। साके तथा जोहर हुए।

1302 ई मे अलाउद्दीन ने चित्तोड मे समरसिंह के उत्तराधिकारी रतनसिंह पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का कारण रतनसिंह की रूपवती रानी को माना जाता रहा किन्तु आज पद्मिनी कथा की ऐतिहासिकता पर पुन विचार की आवश्यकता है।

मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास की अनेक नायिकाओ के पारम्परिक विवरण विश्लेषण करने पर अस्पष्ट दिखलाई पडने लगते है। जयचद गहडवाल की माता सुन्दरीदेवी और पृथ्वीराज तृतीय चौहान की माता कमलादेवी को आज इतिहास मे कही स्थान नही है और लगभग सभी विद्वान इन दोनो को 'पृथ्वीराज रासो' के लेखक की कल्पना मानते है। रणथम्भौर के चौहान हमीर की कन्या देवलदेवी को भी श्री के एम मुशी, डॉ के आर कानूनगो तथा बाबू जगनलाल गुप्ता ने अनेक ठोस प्रमाणो के बल पर 'हमीर रासो तथा हमीर महाकाव्य' के लेखक की कल्पना की उपज प्रमाणित कर दिया है। सयोगिता एव पद्मिनी की भी लगभग यही दशा है।

डा कानूनगो ने मन 1959 मे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे आर पी नोपाणी भाषणमाला के अन्तर्गत भाषण देते हुए पद्मिनी के अस्तित्व मे सन्देह प्रकट किया और अनेक प्रमाण देकर उसे केवल मलिक मोहम्मद जयसी की कल्पना की उपज ठहराया। वैसे कानूनगो पद्मिनी के अस्तित्व मे सन्देह करने वाले पहले व्यक्ति नही है। पद्मिनी की ऐतिहासिकता को न मानने का सूत्रपात बू दी के प्रसिद्ध कवि सूर्यमल मिश्रण ने अपने 'वश भास्कर' मे किया था। इसके पश्चात् पद्मिनी-कथा इतिहासकारो के आकर्षण का केन्द्र बन गई। डॉ दशरथ शर्मा ने लिखा है —

' Perhaps no other heroine of Rajesthan has attracted greater attention of poets and writes Rajasthanis and non Rajasthanis as well, than the far famed queen Padmini of Chittor '

पद्मिनी कथा की ऐतिहासिकता के विषय मे एक विवाद सा उठ खड़ा हुआ। तर्क-वितर्क के परिणाम स्वरूप दो स्पष्ट मान्यताए सामने आई। खलजी वश के इतिहास के लेखक डॉ किशोरी शरणलाल ने पद्मिनी कथा मे सन्देह उत्पन्न करने वाली धारणा को अनेक प्रमाणो और तर्को द्वारा बल प्रदान किया। श्यामलदास, जी एच ओझा ईश्वरीप्रसाद, दशरथ शर्मा एव जी एन शर्मा ने पद्मिनी कथा को सत्य माना है।

पद्मिनी कथा की ऐतिहासिकता मे सन्देह का मूल कारण यह है कि अलाउद्दीन के चित्तोड आक्रमण (1303 ई) के 237 वर्ष पश्चात तक के एक भी ग्रन्थ, लेख या किसी अन्य साधन मे पद्मिनी कथा का उल्लेख तक नही किया गया है। यद्यपि इस लम्बी अवधि मे मध्यकालीन इतिहास के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचे गये जिनमे अलाउद्दीन के चित्तौड अभियान का उल्लेख तो है पर पद्मिनी-कथा तो दूर स्वय पद्मिनी के नाम का उल्लेख तक किसी भी स्रोत मे उपलब्ध नही है। प्रस्तुत विवरण मे केवल यह बताने का प्रयास किया गया है कि सर्वप्रथम जायसी ने पद्मिनी कथा को रचा। पद्मावत की ऐतिहासिकता सदिग्ध है व बाद के सभी साधनो ने मूल कथा जायसी से ही प्राप्त की है अत इसे प्रमाणिक इतिहास का अग नही माना जाना चाहिये।

पद्मावत की रचना जायसी ने शेरशाह के शासन-काल मे 1540 ई मे अवध मे की थी। पद्मावत की कथा सक्षेप मे इस प्रकार है कि सिहल के गन्धर्वसेन नामक शासक की पुत्री पद्मिनी का एक हीरामान नामक तोता जो बोलता भी था विकता-बिकाता चित्तौड के शासक रत्नसेन के पास पहुँचा व उसे पद्मिनी के गुणो व सौन्दर्य की सूचना दी। जोगी भेष मे रत्नसेन सिहल पहुँचा, लगभग 12 वर्ष भटका व तत्पश्चात् पद्मिनी से विवाह कर वापस लौटा। राघवचेतन नामक एक ब्राह्मण ने रत्नसेन द्वारा अपमानित होकर निष्कासित किये जाने पर अलाउद्दीन को पद्मिनी के

गुणो व सौन्दर्य से अवगत करा कर उसे प्राप्त करने का प्रेरित किया। अलाउद्दीन ने आक्रमण कर आठ वर्ष तक चित्तौड को घेरे रक्खा। हताश होकर अलाउद्दीन का दपण मे पद्मिनी का बिम्ब देखना धोखे से रत्नसेन का बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाना, 1600 पालकियो मे बैठ राजपूतो द्वारा दिल्ली से रत्नसेन को छुडा लाना, गोरा-बादल की वीरता व चित्तौड पहुच रत्नसेन का कुम्भलगढ के शासक देवपाल पर आक्रमण कर मारा जाना आदि तथ्य पद्मावत की मूल कथा के आधार है। निम्नलिखित ऐतिहासिक विश्लेषण करने पर पद्मावत मे अधिक सच्चाई दिखलाई नही पडती।

इतिहास मे केवल सत्य घटनाओ का लेखा जोखा ही होता है जबकि पद्मावत मे बोलने वाला तोता हीरामन भी मूल कथा की एक महत्वपूण कडी है।

कुम्भलगढ अभिलेख से ज्ञात होता है कि अपने पिता समरसिंह के पश्चात् रत्नसिंह ने 1359 वि स (1302 ई) मे शासन आरम्भ किया। सभी फारसी तवारीखें 25 अगस्त 1303 अलाउद्दीन की चितौड विजय की निश्चित तिथि बताती है। इसी प्रकार रत्न सिंह को शासन की एक या डेढ वर्ष की अवधि ही मिली थी। यदि हीरामन ने रत्नसिंह को शासक बनते ही सूचित कर दिया और वह उसी क्षण पद्मिनी को प्राप्त करने के लिये रवाना हो गया होगा तब भी सीमित आवागमन के साधनो के कारण एक-दो वर्ष उसे चितौड से सिंहल पहुचने व वापस आने मे भी लगे होंगे। 12 वष वह जोगी बना घूमता रहा। वापस आते ही यदि उसने राघव-चेतन को अपमानित कर दिया व उसकी प्रेरणा पर अलाउद्दीन ने उसी क्षण चितौड पर धावा बोल दिया तब भी आठ वष तक उसे चितौड दुग को घेरे रखना पडा। इस प्रकार कम से कम समय जोडने पर भी अलाउद्दीन की चित्तौड विजय का समय 1325 ई के आस पास ठहरता है जबकि स्वय अलाउद्दीन की मृत्यु भी 1317 ई मे निश्चित रूप से हो चुकी थी। साथ ही केवल एक- ढ वष ही शासन करने वाले रत्नसिंह का 12 वर्ष सिंहल मे भटकते रहने व आठ वर्ष अलाउद्दीन की सेना से घिरे रहने का वर्णन उपलब्ध करने वाला जायसी का पद्मावत निश्चित रूप से ऐतिहासिक नही माना जा सकता।

सिंहल के इतिहास से पता चलता ह कि 14 वी शताब्दी के आरम्भिक वर्षो मे चितौड के रत्नसिंह का समकालीन सिंहल का शासक भुवनेकबाहु या कीर्तिनिशक देव पराक्रमबाहु था। साथ ही सिंहल के समूचे इतिहास का अध्ययन करने पर भी वहा गन्धर्वसेन नामक किसी शासक का नाम नही मिलता अत पद्मावत की पद्मिनी का पिता गन्धवसेन तो निश्चित रूप से एक काल्पनिक पात्र ह।

जायसी के अनुसार अलाउद्दीन ने चितौड पर एक असफल व एक सफल, कुल दो आक्रमण किये थे किन्तु सभी मध्यकालीन फारसी तवारीखो मे अलाउद्दीन के केवल एक ही आक्रमण का उल्लेख किया गया है।

जायसी ने अलाउद्दीन द्वारा चितोड के घेरे की अवधि आठ वर्ष बताई है जबकि सभी फारसी तवारीख इस घेरे का समय छः माह से आठ माह के बीच बताती है।

जायसी के पात्रो मे निश्चित रूप से हीरामन, राघवचेतन, कुम्भलगढ का देवपाल व गन्धर्वसेन आदि चरित्र काल्पनिक हैं। जहा इतने काल्पनिक पात्र हैं वहा पद्मिनी भी यदि कल्पना ही हो तो अधिक आश्चर्य नही। अत जायसी ने अलाउद्दीन के रत्नसिंह पर आक्रमण को आधार बनाकर एक विशुद्ध साहित्यिक कृति तैयार की है। पद्मावत की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध मे यह कहावत ठीक बैठती है 'मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त"। बेचारे जायसी ने स्वय पद्मावत की कथा को केवल अपनी कल्पना की उपज मानते हुए सार्वजनिक रूप से घोषणा करदी फिर भी आधुनिक विद्वान् उसे विशुद्ध इतिहास मानने पर तुले हुए है। जायसी ने इसे अपनी कल्पना की उपज बताते हुए लिखा—

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल, बुधि पदिमिनि चीन्हा।
नागमती यह दुनिया धन्धा। बाचा सोई न एहि चित बधा।।
राघवदूत सोई सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू।
प्रेम कथा एहि भाति विचारहु। बूझ लेहु जो बूझ पारहु।।

जायसी ने अपने रत्नसेन को चितौड के किसी चित्रसेन नामक शासक का उत्तराधिकारी पुत्र बनाया है। अलाउद्दीन के आक्रमण के समय चितौड का शासक रत्नसिंह था व कुम्भलगढ लेख से निश्चित ज्ञात है कि वह समरसिंह का पुत्र था। चित्रसेन नामक शासक चितौड मे हुआ ही नही अत वह और सम्भवत रत्नसेन भी जायसी के अन्य काल्पनिक पात्रो की तरह ही होगे। कम से कम जायसी को रत्नसिंह का न तो सही नाम ही ज्ञात था न उसके पिता की जानकारी ही थी।

अलाउद्दीन समस्त सल्तनत काल के सभी सुल्तानो मे सर्वाधिक विशाल सेना का स्वामी था। 1600 पालकियो मे बैठे अधिक से अधिक 6 000 व्यक्तियो द्वारा अलाउद्दीन की शक्ति के केन्द्र दिल्ली, से अलाउद्दीन की महासेना का सफलतापूर्वक विरोध कर, रत्नसिह को न केवल छुडाना बल्कि लडते भिडते चितौड पहुचा देना कल्पना के अतिरिक्त और क्या हो सकता है।

अलाउद्दीन की गुप्तचर व्यवस्था की सभी विद्वान भूरि-भूरि प्रशसा करते नही थकते। चितोड से रवाना 1600 पालकियो मे बैठे व्यक्तियो को दिल्ली पहुचाने मे काफी समय लगा होगा। इस बीच मार्ग मे उन्होने कई रातें विश्राम की बिताई। सैकडो बार शौच-स्नान से भी निवृत हुए होगे फिर भी मध्यकाल के श्रेष्ठतम अलाउद्दीन के गुप्तचरो को इसका तनिक भी पता न चल सका। प्रसिद्ध है कि

साम्राज्य के कोने कोने से पत्ते हिलने तक की सूचनाएं सुल्तान के पास पहुँचती थी। केवल इन सोलह सौ डोलियो की किसी गुप्तचर ने बिलकुल परवाह नही की शायद इसलिये कि सुल्तान इनके आगमन की बडी कौतुहल से प्रतीक्षा कर रहा था। फिर सोलह सौ पालकिया यदि पक्तिबद्ध खडी हो कर दी जाये तो पहली और अन्तिम के बीच एक-दो मील की दूरी अवश्य रहेगी। इस परिस्थिति मे वह बंदी गृह कितना विशाल होगा ?

पद्मावत मे रत्नसेन का कुम्भलगढ के शासक देवपाल से युद्ध करना व घायल होकर मारे जाने का उल्लेख है। स्मरण रहे कुम्भलगढ की स्थापना महाराणा कुम्भा ने रत्नसिंह के मारे जाने के भी 156 वर्ष पश्चात 1459 ई मे की थी। अत रत्नसेन का कुम्भलगढ के शासक देवपाल के हाथो घायल होकर मारा जाना कितना हास्यास्पद है।

सामान्यतया इतिहासकार अलाउद्दीन के चित्तौड अभियान का कोई स्पष्ट कारण न बता केवल पद्मिनी की प्राप्ति की इच्छा को ही इस आक्रमण का आधार बना लेते हैं। आक्रमण के किसी अन्य स्पष्ट कारण के अभाव मे भी पद्मिनी के अस्तित्व को स्वीकारना उचित नही माना जा सकता था। वैसे अलाउद्दीन के चित्तौड अभियान के काल्पनिक कारण ढूँढने की आवश्यकता नही क्योकि इस आक्रमण के निम्न लिखित कारण तो ज्ञात है ही—

अलाउद्दीन समस्त एशिया को जीतने का इच्छुक था। काजी की मन्त्रणा ने उसकी एशिया विजय योजना को भारत विजय योजना का रूप दे दिया था। अत भारत के किसी भी क्षेत्र पर अलाउद्दीन के आक्रमण का कारण उसकी भारत विजय की महत्वकाक्षा ही था।

समकालीन आर्थिक गतिविधियो के अध्ययन से पता चलता है कि चित्तौड उस समय व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। सिंध, मालवा, गुजरात, मध्यप्रदेश व उत्तर प्रदेश सभी क्षेत्रो के व्यापारी अत्यन्त ही प्राचीन काल से माध्यमिका (चित्तौड) के मार्ग से व्यापार करते थे। अलाउद्दीन के राजस्व सुधार व बाजार नियन्त्रण हेतु यत्न सिद्ध करते है कि उसमे आर्थिक सूझ थी। यदि चित्तौड के आर्थिक महत्व के कारण अलाउद्दीन ने आक्रमण किया हो तो आश्चर्य नही।

राजनैतिक दृष्टि से भी चित्तौड-नियन्त्रण महत्वपूर्ण था। उस समय अभेद्य दुर्ग सुरक्षा के सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन थे। जिसके पास जितने अधिक सुदृढ दुर्ग होते उसकी स्थिति भी उसी अनुपात मे सुरक्षित समझी जाती।

अलाउद्दीन के पूर्व दिल्ली सल्तनत के किसी भी शासक ने चित्तौड को न

(1540 ई) व छिताई-चरित के बताये गये रचना काल (1526 ई) मे बहुत थोडा अन्तर है। 'छिताई-चरित' की तिथि 1526 ई मान लेने से भी पद्मिनी का अस्तित्व निश्चित रूप से प्रमाणित नही होगा क्योकि यह मूल प्रश्न फिर भी अपनी जगह बना रहेगा कि अलाउद्दीन के चित्तौड आक्रमण के 237 वर्ष पश्चात तक के किसी साधन मे पद्मिनी कथा का उल्लेख क्यो नही है। हा प्रश्न मे 237 वर्ष के स्थान पर 223 वर्ष हो जायेगे पर इससे प्रश्न की महत्ता मे विशेष अन्तर न होगा। अत छिताई चरित की तथाकथित तिथि तो सदिग्ध है ही पर उसे स्वीकार कर लिये जाने पर भी पद्मिनी का अस्तित्व निश्चित रूप से सिद्ध नही होगा।

आरम्भ मे प्रो हबीब तथा अन्य कई विद्वान तो अलाउद्दीन के दरबारी अमीर खुसरो की 'खजेनुल फतुह' मे भी पद्मिनी सम्बन्धी विवरण का उल्लेख बताने लगे थे। इस पुस्तक मे एक स्थान पर खुसरो ने स्वय को हुद हुद कहा है। लेखक गण हुद हुद की खोज मे जुट गये और अन्तत मालुम कर ही लिया। शेबा की रानी बिलकिश की सूचना जिसने सुलेमान तक पहुचाई वह हुद हुद नामक पक्षी था। इतनी जानकारी हो जाने पर सुलेमान को अलाउद्दीन व बिलकिश को पद्मनी बताकर पद्मिनी कथा को सत्य स्वीकार कर लिया गया। किन्तु स्वय खुसरो के वर्णन मे पद्मिनी तो दूर की बात बिलकिश तक का उल्लेख भी नही है। डॉ कानूनगो ने एक फारसी के विद्वान वाहिदमिर्जा के हवाले से गलत सत्य प्रकट किया कि अमीर खुसरो के वर्णन का चाहे कितना ही तोडा-मरोडा जाए उसमे पद्मिनी का उल्लेख कही नही मिलेगा।

जायसी के पचास वर्ष पश्चात अबुल फजल की आईन-ए-अकबरी, फरिस्ता की तवारीख और कुछ समय पश्चात हाजीउदबीर की जफरूलवाली, फ्रासीसी मनूची की स्टोरिया डो मोगोर तथा जेम्स टॉड की 'एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज आफ राजस्थान' नामक पुस्तको मे पद्मिनी का कुछ वर्णन मिलता है। अबुल फजल ने पद्मिनी को एक विशेष गुणो वाली स्त्री बताया है। फरिस्ता ने 700 पालकियो सहित दिल्ली पहुच कर रतनसिंह को बदीगृह से छुडाने का श्रेय रतनसिंह की पुत्री को दिया है। हाजीउदबीर ने जफरूलवाली मे लिखा है कि रतनसिंह को बन्दी बना कर अलाउद्दीन उसे दिल्ली नही ले गया बल्कि चित्तोड के पास ही कही कैद रखा। यहा से 500 पालकियो मे पद्मिनी के साथ पहुचने वाले योद्धाओ ने उसे आजाद करवाया। घुम्मकड मनूची जो गप्पे हाकने वाले के रूप मे प्रसिद्ध है, पद्मिनी को जयमल की रानी बताता है। टॉड ने पद्मिनी को हमीर सख की पुत्री और राणा लखमसी के काका की पत्नी लिखा है। कितने असमजस और उहा-पोह मे फसे हुए थे बेचारे इतिहास लेखक। राजस्थान के चारणो तथा भाटो मे पद्मिनी के वर्णन सुन सुन कर बोखलाहट मे जैसा जचा वैसा ही लिख मारा। उपरोक्त सभी विवरणो मे एकता का सूत्र केवल यह है कि सभी के मूल मे जायसी का वर्णन किसी न किसी रूप मे विद्यमान है।

जीता था। अलाउद्दीन इस सैनिक गौरव को प्रथम बार अर्जित करना चाहता था।

सूर्यमल मिश्रण ने 'वंशभास्कर' में अलाउद्दीन के चित्तौड़ अभियान के सबसे महत्वपूर्ण कारण का वर्णन किया है। जोधराज कृत हमीर रासो के आधार पर यह कहा गया है कि रणथम्भौर के हमीर के दो पुत्र अलाउद्दीन के विरुद्ध युद्ध करते हुए मारे गये। तीसरे को जिसका नाम रत्नसिंह था उसने चित्तौड़ के शासक के पास शरण हेतु भेज दिया। बरनी के विवरण से ज्ञात होता है कि हमीर का पुत्र जीवित था क्योंकि जिस मंगोल नेता को शरण देने के कारण हमीर के वंश का नाश हुआ था बन्दी रूप में अलाउद्दीन के समक्ष लाने पर उसने हमीर के पुत्र को शासक बनाने की इच्छा व्यक्त की थी। इस प्रकार निश्चित है कि चित्तौड़ आक्रमण का कारण ठीक वही था जो रणथम्भौर आक्रमण का था। जैसे रणथम्भौर आक्रमण का लक्ष्य देवलदेवी को मानने की आवश्यकता नहीं वैसे ही चित्तौड़ आक्रमण का लक्ष्य पद्मिनी नहीं थी।

अतः यह कहना कि अलाउद्दीन के चित्तौड़ आक्रमण का कोई स्पष्ट कारण दिखलाई नहीं पड़ता और पद्मिनी ही आक्रमण का कारण रही होगी ऐतिहासिक नहीं माना जा सकता।

उल्लेखनीय है कि कानूनगो द्वारा पद्मिनी के अस्तित्व में सन्देह खड़ा करने से अब तक यद्यपि कानूनगो के तर्कों का खण्डन करने का प्रयत्न अवश्य किया गया है परन्तु पद्मिनी थी, इस धारणा के समर्थन में अभी तक किसी विद्वान् द्वारा ठोस प्रमाण नहीं दिये गये हैं। हाँ कानूनगो की आलोचना करते हुए डॉ दशरथ शर्मा ने नोपाणी स्मृति भाषण माला में व्याख्यान देते हुए यह बताने का प्रयास अवश्य किया कि जायसी से पूर्व भी साहित्य में पद्मिनी का उल्लेख मिलता है। उन्होंने 1526 ई में तोमर वंशी शासक सल्हदी के समय रचे 'छिताई चरित' की उस हस्तलिखित प्रति में पद्मिनि का उल्लेख बताया है जो श्री अगरचन्द जी नाहटा के पास सुरक्षित है। इस सन्दर्भ में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न खड़े किये जा सकते हैं जैसे, सल्हदी कौन से क्षेत्र का स्वतन्त्र शासक था? दिल्ली व उसके समीपस्थ क्षेत्र से तो इससे शताब्दियों पूर्व तोमर सत्ता समाप्त हो चुकी थी। 'छिताई-चरित' की तिथि किस आधार पर 1526 ई मानी गई है? क्या इस बात के प्रमाण हैं कि इस तोमरवंशी शासक का समय 1526 ई ही था और 'छिताई-चरित' निश्चित रूप से उसी के समय लिखा गया था? क्या इसकी कुछ अन्य प्रतियाँ भी उपलब्ध हुई हैं? यदि हाँ, तो क्या उनमें भी अलाउद्दीन के आक्रमण तथा पद्मिनी का उल्लेख है? 1526 ई में भारतीय शासक बाबर के विरुद्ध जूझ रहे थे। ऐसे समय साहित्यिक रचनाएँ हुई हों यह सम्भव दिखलाई नहीं पड़ता। अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता इसलिये है कि जायसी की पद्मावत के रचना काल

(1540 ई) व छिताई-चरित के बताये गये रचना काल (1526 ई) में बहुत थोडा अन्तर है। 'छिताई-चरित' की तिथि 1526 ई मान लेने से भी पद्मिनी का अस्तित्व निश्चित रूप से प्रमाणित नही होगा क्योकि यह मूल प्रश्न फिर भी अपनी जगह बना रहेगा कि अलाउद्दीन के चित्तौड आक्रमण के 237 वर्ष पश्चात तक के किसी साधन मे पद्मिनी कथा का उल्लेख क्यो नही है। हा प्रश्न मे 237 वर्ष के स्थान पर 223 वर्ष हो जायेंगे पर इससे प्रश्न की महत्ता मे विशेष अन्तर न होगा। अत छिताई चरित की तथाकथित तिथि तो सदिग्ध है ही पर उसे स्वीकार कर लिये जाने पर भी पद्मिनी का अस्तित्व निश्चित रूप से सिद्ध नही होगा।

आरम्भ मे प्रो हबीब तथा अन्य कई विद्वान तो अलाउद्दीन के दरबारी अमीर खुसरो की 'खजेनुल फतुह' मे भी पद्मिनी सम्बन्धी विवरण का उल्लेख बताने लगे थे। इस पुस्तक मे एक स्थान पर खुसरो ने स्वय को हुद हुद कहा है। लेखक गण हुद हुद की खोज में जुट गये और अ तत मालुम कर ही लिया। शेबा की रानी बिलकिश की सूचना जिसने सुलेमान तक पहुचाई वह हुद हुद नामक पक्षी था। इतनी जानकारी हो जाने पर शुलेमान को अलाउद्दीन व बिलकिश को पद्मनी बताकर पद्मिनी कथा को सत्य स्वीकार कर लिया गया। किन्तु स्वय खुसरो के वर्णन मे पद्मिनी तो दूर की बात बिलकिश तक का उल्लेख भी नही है। डॉ कानूनगो ने एक फारसी के विद्वान वाहिदमिर्जा के हवाले से अन्तत सत्य प्रकट किया कि अमीर खुसरो के वर्णन को चाहे कितना ही तोडा-मरोडा जाए उसमे पद्मिनी का उल्लेख कही नही मिलेगा।

जायसी के पचास वर्ष पश्चात अबुल फजल की आईन-ए-अकबरी, फरिश्ता की तवारीख और कुछ समय पश्चात हाजीउदबीर की जफरूलवाली, फ्रांसीसी मनूची की स्टोरिया डो मोगोर तथा जेम्स टॉड की 'एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज आफ राजस्थान' नामक पुस्तको मे पद्मिनी का कुछ वर्णन मिलता है। अबुल फजल ने पद्मिनी को एक विशेष गुणो वाली स्त्री बताया है। फरिश्ता ने 700 पालकियो सहित दिल्ली पहुच कर रतनसिंह को बन्दीगह से छुडाने का श्रेय रतनसिंह की पुत्री को दिया है। हाजीउदबीर ने जफरूलवाली मे लिखा है कि रतनसिंह को बन्दी बना कर अलाउद्दीन उसे दिल्ली नही ले गया बल्कि चित्तोड के पास ही कही कैद रखा। यहा से 500 पालकियो मे पद्मिनी के साथ पहुचने वाले योद्धाओ ने उसे आजाद करवाया। घुम्मकड मनूची जो गप्पें हाकने वाले के रूप मे प्रसिद्ध है, पद्मिनी को जयमल की रानी बताता है। टॉड ने पद्मिनी को हमीर सख की पुत्री और राणा लखमसी के काका की पत्नी लिखा है। कितने असमजस और उहापोह मे फसे हुए थे बेचारे इतिहास लेखक। राजस्थान के चारणो तथा भाटो से पद्मिनी के वर्णन सुन सुन कर बोखलाहट मे जैसा जचा वैसा ही लिख मारा। उपरोक्त सभी विवरणो मे एकता का सूत्र केवल यह है कि सभी के मूल मे जायसी का वर्णन किसी न किसी रूप मे विद्यमान है।

आधुनिक काल के विद्वानो मे ईश्वरी प्रसाद ने पद्मिनी कथा को ऐतिहासिक स्वीकार कर यह प्रश्न खडा किया कि यदि पद्मिनी कथा असत्य होती तो यह इतने वर्षों तक राजपूत परम्पराओ मे सुरक्षित कैसे रह सकती थी ? एक अन्य विद्वान ने यह तर्क दिया कि पद्मिनी का अस्तित्व नही था तब उसके महल कहा से आए ? इन्हे वापस प्रश्न किया जा सकता है कि राजा भोज और गगू तेली सम्बन्धी तथ्य अब तक प्रचलन मे कैसे है ? पृथ्वीराज रासो की अनेक गप्पे शनै शनै इतिहासकारो ने कैसे स्वीकार की । पीढी दर पीढी मानव कठो मे अठकेलिया करती हुई शुद्ध साहित्यिक बात इतिहास का रूप धारण कर लेती थी । डा कानूनगो ने ऐसे प्रश्नो का अत्यन्त ही विस्तृत तर्कसगत वर्णन प्रस्तुत किया है । एक बार पद्मिनी कथा स्वीकार करली गई तब चित्तोड मे महलो की कमी कहा थी ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अलाउद्दीन के चित्तोड अभियान का कारण पद्मिनी नही थी । पद्मिनी का जन्म पद्मावत से हुआ । पद्मावत विशुद्ध साहित्यिक कृति है । साहित्य की बात धीरे धीरे इतिहास बन गई ।

रणथम्भोर तथा चित्तोड के पश्चात अलाउद्दीन ने जैसलमेर, सिवाणा और जालोर पर आक्रमण किये । 1308 ई मे अलाउद्दीन के हमले के समय शीतलदेव सिवाणा का शासक था । अलाउद्दीन के एक सेनापति कमालुद्दीन 'भेडिया' ने सिवाणा दुर्ग का घेरा डाला । सीढिया इत्यादि लगा कर दुर्ग पर चढने के प्रयत्न किये जाते तब ऊपर से गोफणो से पत्थर फेंके जाते, तीरो की बौछार की जाती तथा उकलता हुआ गर्म तेल फेंका जाता । कमालुद्दीन के सभी प्रयास विफल हो गये । कई महीना तक गढ को घेरने से भी सफलता नही मिली तब अलाउद्दीन स्वय भारी फौज बल से सिवाणा पहुचा । मारवाड के परगनो की विगत मे नैणसी ने इस हमले के सम्बन्ध मे एक बहुत ही आश्चर्यजनक बात लिखी । चार किलोमीटर से गढ की छोटी सी पहाडी को देखकर अलाउद्दीन ने यह वचन लिया कि गढ को जीते बिना वह अन्न जल भी ग्रहण नही करेगा । सुल्तान के वचन के पालनार्थ सैनिको ने पूरे उत्साह से प्रयत्न किया । किन्तु उन्हे सफलता नही मिली । अन्न-जल के बिना सुल्तान की दशा बिगडने लगी । सेनापतियो ने सुल्तान को वचन से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से आटे का गढ बना कर उसे जीतने की योजना बनाई । गढ के सोनगरो को इस योजना की जानकारी मिलने पर वे क्रोधित हुए और शीतलदेव का भाई सोम चुने हुए वीरो के साथ गढ से बाहर निकला व बनावटी दुर्ग की रक्षार्थ अपने प्राणो की आहूति दे दी । आटे के गढ की बात की सच्चाई मे तो सन्देह है किन्तु अमीर खुसरो ने अपनी पुस्तक 'खजाइन फुतूह' मे शीतलदेव के शौर्य की बहुत प्रशसा की है। विशेषकर शीतलदेव का अप्रतिम बल और हाथी जैसा शरीर देख कर स्वय सुल्तान आश्चर्य चकित हो गया । अनेक महीनो तक शत्रु सेना से घिरा रहने पर किले के कोठार खाली हो

गये तव दरवाजे खुले और साका करने की धारे हुए योद्धा शाही सेना पर टूट पड़े। भीषण मार काट के बाद ही अलाउद्दीन की सेना सिवाणा जीत सकी।

जालोर मे सिवाणा से भी अधिक भीषण युद्ध हुआ। कई महीनो तक शाही सेना ने दुर्ग को घेरे रखा। पद्मनाभ ने 'कान्हडदे प्रब ध' मे लिखा है कि सेजवाल विक्रम नामक व्यक्ति ने धन के लालच मे पड कर नमक हरामी की। उसने दुग के गुप्त द्वार का मार्ग शत्रु को वता दिया। परम्पराओ मे यह घटना भी सुरक्षित है कि घर पहुच कर विक्रम ने अपनी पत्नी को वताया कि उनको गरीबी के दिन अब समाप्त होने वाले है। पूरी वात सुनकर विक्रम की पत्नी अत्यन्त क्रोधित हुई और उसने हाथ मे भोजन परोसने हेतु पकडे हुए थाल के जोरदार प्रहार से विक्रम का सिर धड से अलग कर दिया। वह भाग कर कान्हडदे को अपने पति की कुटिलता की सूचना देने पहुची किन्तु तव तक सुल्तान की सेना गढ मे प्रवेश कर चुकी थी। हृदय विदारक युद्ध के पश्चात ही अलाउद्दीन जालोर जीत सका।

चित्तौड विजय के पश्चात अलाउद्दीन ने अपने पुत्र खिज्रखा को वहा नियुक्त किया। कुछ समय पश्चात मालदेव सोनगरे को वहा का सूबेदार बना दिया। 1326 ई मे सीसोदा के सामत हमीर ने बरबडीजी नामक चारणी के आशीर्वाद से मालदेव के पुत्र वनवीर सोनगरे को पराजित कर चित्तोड पर अधिकार कर लिया। हमीर से पूव चित्तौड के शासक 'रावल' कहे जाते थे किन्तु हमीर के समय से राणा और महाराणा कहे जाने लगे। पहले के शासक गुहिलोत थे किन्तु हमीर के समय से वे सीसोदिया कहलाने लगे। हमीर के पश्चात खेता, लाखा, मोकल तथा कुम्भा चित्तौड के सिंहासन पर बैठे। कुम्भा के समय चित्तौड राज्य का सर्वांगीण विकास हुआ। कुम्भा ने बू दी, गागरोण, मडोर, सिराही माडलगढ, बिजोलिया, जहाजपुर, खाटू, गगराणा, चाटसू, इत्यादि पर मेवाडी आधिपत्य जमाया। उसने मालवा के सुल्तान को पराजित किया। गुजरात तथा मालवा के सुल्तानो की सम्मिलित सेनाओ से सफलतापूवक युद्ध कर चित्तौड के गौरव की रक्षा की। महाराणा कुम्भा का विशेप महत्व इसलिये माना जाना है कि एक योग्य सेनानायक और सफल विजेता होने के साथ ही वह कला साहित्य का सरक्षक, धार्मिक सहिष्णु और स्वय उच्च कोटि का विद्वान था। उसके दरबार मे राजस्थान के साथ ही मालवा तथा गुजरात के कलाकारो, साहित्यकारो और विद्वानो का जमघट लगा हुआ था। 'नाव भीतडा सू रव' सम्ब धी कहावत कुम्भा के सदर्भ मे सत्य दिखलाई पडती है। मेवाड मे स्थित कुल 84 किलो मे से कुम्भलगढ सहित 3' का निर्माण कुम्भा द्वारा ही करवाया गया था। कीर्तिस्तम्भ, रणकपुर जन मन्दिर दिलवाडा मन्दिर, चित्तोड का कुम्भस्वामी म दिर, एकलिंगजी का मीरा मन्दिर इत्यादि युगो युगो तक कुम्भा की कीर्ति को साक्ष्य प्रस्तुत करते ही रहेंगे। कुम्भा स्वय उच्चकोटि का कवि, सगीतकार, नाटककार और विद्वान था।

आधुनिक काल के विद्वानो मे ईश्वरी प्रसाद ने पद्मिनी कथा को ऐतिहासिक स्वीकार कर यह प्रश्न खडा किया कि यदि पद्मिनी कथा असत्य होती तो यह इतने वर्षों तक राजपूत परम्पराओ मे सुरक्षित कैसे रह सकती थी ? एक अन्य विद्वान ने यह तर्क दिया कि पद्मिनी का अस्तित्व नही था तब उसके महल कहा से आए ? इन्हे वापस प्रश्न किया जा सकता है कि राजा भोज और गंगू तेली सम्बन्धी तथ्य अब तक प्रचलन मे कैसे है ? पृथ्वीराज रासो की अनेक गप्पे शनै शनै इतिहासकारो ने कैसे स्वीकार की । पीढी दर पीढी मानव कण्ठो मे अठकेलिया करती हुई शुद्ध साहित्यिक बात इतिहास का रूप धारण कर लेती थी । डा कानूनगो ने ऐसे प्रश्नो का अत्यन्त ही विस्तृत तर्कसगत उत्तर प्रस्तुत किया है । एक बार पद्मिनी कथा स्वीकार करली गई तब चित्तोड मे महलो की कमी कहा थी ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अलाउद्दीन के चित्तोड अभियान का कारण पद्मिनी नही थी । पद्मिनी का जन्म पद्मावत से हुआ । पद्मावत विशुद्ध साहित्यिक कृति है । साहित्य की बात धीरे धीरे इतिहास बन गई ।

रणथम्भोर तथा चित्तोड के पश्चात अलाउद्दीन ने जैसलमेर, सिवाणा और जालोर पर आक्रमण किये । 1308 ई मे अलाउद्दीन के हमले के समय शीतलदेव सिवाणा का शासक था । अलाउद्दीन के एक सेनापति कमालुद्दीन 'भेडिया' ने सिवाणा दुर्ग का घेरा डाला । सीढिया इत्यादि लगा कर दुर्ग पर चढने के प्रयत्न किये जाते तब ऊपर से गोफणो से पत्थर फेंके जाते, तीरो की बौछार की जाती तथा उबलता हुआ गर्म तेल फेंका जाता । कमालुद्दीन के सभी प्रयास विफल हो गये । कई महीनो तक गढ को घेरने से भी सफलता नही मिली तब अलाउद्दीन स्वय भारी फौज बल से सिवाणा पहुचा । मारवाड के परगनो की विगत मे नैणसी ने इस हमले के सम्बन्ध मे एक बहुत ही आश्चर्यजनक बात लिखी । चार किलोमीटर से गढ की छोटी सी पहाडी को देखकर अलाउद्दीन ने यह वचन लिया कि गढ को जीते बिना वह अन्न-जल भी ग्रहण नही करेगा । सुल्तान के वचन के पालनार्थ सैनिको ने पूरे उत्साह से प्रयत्न किया । किन्तु उन्हे सफलता नही मिली । अन्न-जल के बिना सुल्तान की दशा बिगडने लगी । सेनापतियो ने सुल्तान को वचन से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से आटे का गढ बना कर उसे जीतने की योजना बनाई । गढ के सोनगरो को इस योजना की जानकारी मिलने पर वे क्रोधित हुए और शीतलदेव का भाई सोम चुने हुए वीरो के साथ गढ से बाहर निकला व बनावटी दुर्ग की रक्षार्थ अपने प्राणो की आहूति दे दी । आटे के गढ की बात की सच्चाई मे तो सन्देह है किन्तु अमीर खुसरो ने अपनी पुस्तक 'खजाइन फुतूह' मे शीतलदेव के शौर्य की बहुत प्रशसा की है । विशेषकर शीतलदेव का अप्रतिम बल और हाथी जसा शरीर देख कर स्वय सुल्तान आश्चर्य चकित हो गया । अनेक महीनो तक शत्रु सेना से घिरा रहने पर किले के कोठार खाली हो

गये तब दरवाजे खुले और साका करने की धारे हुए योद्धा शाही सेना पर टूट पड़े। भीषण मार काट के बाद ही अलाउद्दीन की सेना सिवाणा जीत सकी।

जालोर मे सिवाणा से भी अधिक भीषण युद्ध हुआ। कई महीनो तक शाही सेना ने दुर्ग को घेरे रखा। पद्मनाभ ने 'कान्हडदे प्रबंध' मे लिखा है कि सेजवाल विक्रम नामक व्यक्ति ने धन के लालच मे पड कर नमक हरामी की। उसने दुर्ग के गुप्त द्वार का मार्ग शत्रु को बता दिया। परम्पराओ मे यह घटना भी सुरक्षित है कि घर पहुच कर विक्रम ने अपनी पत्नी को बताया कि उनकी गरीबी के दिन अब समाप्त होने वाले हैं। पूरी बात सुनकर विक्रम की पत्नी अत्यन्त क्रोधित हुई और उसने हाथ मे भोजन परोसने हेतु पकडे हुए थाल के जोरदार प्रहार से विक्रम का सिर धड से अलग कर दिया। वह भाग कर कान्हडदे को अपने पति की कुटिलता की सूचना देने पहुची किन्तु तब तक सुल्तान की सेना गढ मे प्रवेश कर चुकी थी। हृदय विदारक युद्ध के पश्चात ही अलाउद्दीन जालोर जीत सका।

चित्तौड विजय के पश्चात अलाउद्दीन ने अपने पुत्र खिज्रखा को वहा नियुक्त किया। कुछ समय पश्चात मालदेव सोनगरे को वहा का सूबेदार बना दिया। 1326 ई मे सीसोदा के सामंत हमीर ने वरबडीजी नामक चारणी के आशीर्वाद से मालदेव के पुत्र बनवीर सोनगरे को पराजित कर चित्तौड पर अधिकार कर लिया। हमीर से पूर्व चित्तौड के शासक 'रावल' कहे जाते थे किन्तु हमीर के समय से राणा और महाराणा कहे जाने लगे। पहले के शासक गुहिलोत थे किन्तु हमीर के समय से वे सीसोदिया कहलाने लगे। हमीर के पश्चात खेता, लाखा, मोकल तथा कुम्भा चित्तौड के सिंहासन पर बैठे। कुम्भा के समय चित्तौड राज्य का सर्वांगीण विकास हुआ। कुम्भा ने बूंदी, गागरोण, मडोर, सिरोही, माडलगढ, बिजोलिया, जहाजपुर, खाटू, गगराणा, चाटसू, इत्यादि पर मेवाडी आधिपत्य जमाया। उसने मालवा के सुल्तान को पराजित किया। गुजरात तथा मालवा के सुल्तानो की सम्मिलित सेनाओ से सफलतापूर्वक युद्ध कर चित्तौड के गौरव की रक्षा की। महाराणा कुम्भा का विशेष महत्व इसलिये माना जाता है कि एक योग्य सेनानायक और सफल विजेता होने के साथ ही वह कला साहित्य का सरक्षक, धार्मिक सहिष्णु और स्वय उच्च कोटि का विद्वान था। उसके दरबार मे राजस्थान के साथ ही मालवा तथा गुजरात के कलाकारो, साहित्यकारो और विद्वानो का जमघट लगा हुआ था। 'नाव भीतडा सू रैवै' सम्बन्धी कहावत कुम्भा के सदर्भ मे सत्य दिखलाई पडती है। मेवाड मे स्थित कुल 84 किलो मे से कुम्भलगढ सहित 3` का निर्माण कुम्भा द्वारा ही करवाया गया था। कीर्तिस्तम्भ, रणकपुर जैन मन्दिर दिलवाडा मन्दिर, चित्तोड का कुम्भस्वामी मन्दिर, एकलिंगजी का मीरा मन्दिर इत्यादि युगो युगो तक कुम्भा की कीर्ति को साक्ष्य प्रस्तुत करते ही रहगे। कुम्भा स्वय उच्चकोटि का कवि, सगीतकार, नाटककार और विद्वान था।

जयदेव रचित सगीत के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीतगोविन्द' की रसिक प्रिया' नामक टीका स्वय कुम्भा द्वारा की गई। उसके सरक्षण मे सगीत और स्थापत्य जैसे तकनीकी विषयो पर ग्रन्थ लिखे गये। कुम्भा का नाम केवल राजस्थान ही क्या समस्त भारत के प्रतिभासम्पन्न सम्राटो की अग्रिम पंक्ति मे लिया जाता है।

कुम्भा के पश्चात ऊदा, रायमल और सागा महाराणा बने। सागा की धाक समूचे उत्तरी भारत मे जमी हुई थी। 17 मार्च 1527 को प्रात साढे नौ बजे खानवा के मैदान मे मुगल साम्राज्य के सस्थापक बाबर और महाराणा सागा की सेनाओ के बीच भयकर भिडन्त हुई। अन्तत तोपे तलवारो की तुलना मे अधिक घातक सिद्ध हुई अन्यथा मुगल साम्राज्य के स्थान पर मेवाडी राज्य की स्थापना मे अधिक कसर नही रह गई थी। सागा के पश्चात रत्नसिंह विक्रमादित्य तथा बणवीर के समय मेवाड पर आफत की काली पीली आधिया मडराने लगी। आन्तरिक षडयन्त्र, कलह और कुचक्रो का दौर चला। अन्तत पन्ना धाय ने स्वामी धर्म का निर्वाह कर अपने पुत्र का बलिदान कर उदयसिंह के प्राण बचाये। 1541 ई मे सीसोदिया सामन्तो के सहयोग से उदयसिंह ने सिंहासन प्राप्त किया तथा अपनी व्यक्तिगत योग्यता से अव्यवस्था दूर कर प्रशासनिक ढाचे को सुसगठित करने मे सफलता प्राप्त की। उदयसिंह ने 1559 ई मे दक्षिण-पश्चिमी मेवाड मे पहाडी श्रृंखलाओ के मध्य उदयपुर शहर की स्थापना की। आन्तरिक स्थिति सुधारने के प्रयत्नो मे लगे हुए उदयसिंह ने अपनी चतुराई से शेरशाह के आक्रमण से तो चित्तौड को बचा लिया किन्तु 1567 ई मे अकबर के आक्रमण के समय वह चित्तौड की रक्षा न कर सका। सामन्तो की मत्रणा के अनुसार उसे अनिच्छा से चित्तौड छोड कर पहाडो की शरण लेनी पडी। गढ की रक्षा मे जयमल और पत्ता ने अभूतपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया। स्वय अकबर उनकी वीरता से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपने इन शत्रु शूरमाओ को सम्मान देने हेतु उनकी प्रतिमाएं आगरा मे प्रतिष्ठित करवाई।

उदयसिंह के उत्तराधिकारी प्रताप का स्वतन्त्रता प्रेम आज तक गीतो मे गाया जाता है और वाता मे उसकी सराहना होती है। प्रताप ने समस्त राजसी वैभव की तुलना मे स्वतत्रता को अधिक महत्वपूर्ण माना। हल्दीघाटी का युद्ध 21 जून 1576 को लडा गया। इस युद्ध का एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि महाराणा प्रताप की सेना मे हरावल का नेतृत्व हकीमखा पठान ने किया जबकि मुगली सेना की कमान आमेर के राजा मानसिंह ने सभाली थी। युद्ध मे दोनो पक्षो के लगभग 650 सैनिक मारे गये। प्रारम्भ मे प्रताप की सेना का पलडा भारी रहा पर अन्त मे मानसिंह विजयी हुआ। हल्दी घाटी के युद्ध मे पराजय से प्रताप के सघर्ष का अन्त नही हुआ। इसके पश्चात प्रताप ने छापामार नीति अपनाई तथा मुगल चौकियो पर धावे बोले। 19 जनवरी 1597 मे चावड मे स्वर्गवास तक प्रताप

निरन्तर सघर्ष करता रहा तथा अनेक परम्परागत मेवाडी क्षेत्रो पर पुन अधिकार कर लिया था। प्रताप के उत्तराधिकारी अमरसिंह ने मेवाड की स्थिति मे सुधार की ठान कर मुगलो से सन्धि करली। कालान्तर मे महाराणा जगतसिंह व राजसिंह ने मेवाड को पुन महिमामडित करने के प्रयास किये। बादमे आपसी कलह और मराठो के निरन्तर आक्रमणो व अत्याचारो के कारण मेवाड को भी अंग्रेजो से सन्धि करनी पडी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय रियासतो मे क्षेत्रफल की दृष्टि से हैदराबाद और कश्मीर के पश्चात सबसे बडी मारवाड की रियासत का क्षेत्रफल 36016 वर्गमील था। राजस्थान के रजवाडो मे शौर्य, बलिदान, स्वामीभक्ति और वीरता की दृष्टि मे मारवाड का इतिहास अत्यन्त ही महत्वपूर्ण माना जाता है। वैसे तो मारवाड की पुरानी राजधानी मण्डोर का इतिहास ठेट माडू ऋषि से जुडा हुआ है किन्तु मारवाड मे राठौडो का आगमन 13 वी शताब्दी मे माना जाता है। ख्यातों के अनुसार जयचद गहडवाल का वशज राव सीहा सर्व प्रथम द्वारका जाते हुए मार्ग मे पुष्कर मे था, तब उसे पल्लीवाल ब्राह्मणो ने आमन्त्रित कर पाली बुलाया। आज कल इस धारणा को अधिक मान्यता प्राप्त नही है। सीहा को गहडवाल स्वीकार करने मे कुछ बाधाए दिखलाई पडने लगी है। चाहे हथूडी का राष्ट्रकूट था, कर्नाट के राष्ट्रकूटो का वशज था अथवा जयचद गहडवाल का वशज, यह सभी इतिहासकार स्वीकार करते है कि वह मारवाड मे राठौडो का प्रथम पूर्वज था। पल्लीवालो के निमत्रण पर उनकी रक्षार्थ सीहा सर्वप्रथम पाली पहुचा, बाद मे उसने खेड पर अपना आधिपत्य जमाया। सीहा की ग्यारहवी पीढी मे राव चूण्डा ने मडोर मे राठौड राज्य की स्थापना की। मडोर अधिकार के पश्चात चूण्डा ने नागौर, फलोदी तथा सोजत जीता। चूण्डा के पुत्र रणमल ने मोकल तथा कुम्भा के समय चित्तोड मे अनेक उल्लेखनीय कार्य किये। अन्तत वह सीसोदिया-राठौड सामन्तो मे प्रतिद्वन्द्विता के कारण एक षडयन्त्र का शिकार बन कर मारा गया। उसका पुत्र जोधा मारवाड के आरम्भिक नरेशो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक था। उसने न केवल मडोर मे राठौड शासन की पुन स्थापना ही कि बल्कि अनेक नवीन क्षेत्रों को जीतकर उन्हे अपने सम्बन्धियों को सौपा व मारवाड मे सामन्त प्रथा का सूत्रपात किया। जोधपुर नगर की स्थापना कर मारवाड की शक्ति और गौरव मे वृद्धि की। निसन्देह वह राठौड सत्ता का वास्तविक सस्थापक और राठौड साम्राज्य को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करने वाला व्यक्ति था। डॉ दशरथ शर्मा का कहना है कि "Jodha can be regarded as the real founder of Rathore power in Rajasthan With him th-y b-came people with a setteled and permanent territtory to which they could call their 'Watan or homeland'

जोधा के पिता राव रणमल्ल चित्तोड मे चूण्डा सीसोदिया व उसके सहयोगिया द्वारा रचित एक षडयन्त्र मे मारे गये। जोधा, कान्धल, वरजाग व अन्य राठौड जो चित्तोड दुर्ग मे नीचे ठहरे हुए थे रणमल्ल की हत्या का समाचार मिलते ही मडोर की तरफ रवाना हो गए। ख्यातो मे जोधा के सहयोगियो की सख्या भिन्न भिन्न बताई गई है किन्तु अधिकाश साधनो मे कहा गया है कि इस समय जोधा के साथ लगभग 700 व्यक्ति थे। रावत चूण्डा के नेतृत्व मे चित्तोड की सेना ने जोधा का पीछा किया। रेऊजी के अनुसार चितरोडी गाव के पास पीछा करती हुई सेना से जोधा की प्रथम मुठभेड हुई। ओझाजी प्रथम लडाई कपासन नामक स्थान पर मानते है। मूथा नैणसी ने 'बात परगने जोधपुर री' मे लिखा है कि चित्तोड से रवाना होने के पश्चात पहली लडाई आठ-दस कोस पर हुई। कपासन चित्तोड से आठ कोस पर स्थित है अत ओझाजी का मत ही सत्य दिखलाई पडता है। कपासन मे भीषण युद्ध हुआ जिसमे जोधा के लगभग 200 सहयोगी मारे गये। रावत चूण्डा के साथ बहुत अधिक सैनिक थे अत अवसर मिलते ही राठौड सेना यहा से भाग निकली। सोमेश्वर के घाटे तक पहुचते-पहुचते चितरोडी सतखम्भा कनवज तथा केलवा नामक स्थानो पर मुठभेडे हुई अत सोमेश्वर पहुचने पर जोधा के साथ केवल 250 सैनिक, बचे। सोमेश्वर मे वरजाग ने एक योजना प्रस्तुत की जिसके अनुसार सात योद्धाओ सहित जोधा को मन्डोर की तरफ रवाना कर दिया व शेष लोग पीछा करने वाली सेना को रोकने हेतु डट गये। यद्यपि सोमेश्वर के युद्ध मे लगभग दो सौ व्यक्ति मारे गए (चादराव, पृथ्वीराज, तेजसिंह, व चरडा आदि मारे गये) पर वे जोधा को सकुशल मन्डोर पहुचाने म सफल हो गए।

मन्डोर मे भी जोधा सुरक्षित नही था उसके सभी महत्वपूर्ण सहयोगी काम आ चुके थे अत मन्डोर से आवश्यक सामग्री और अपने सहयोगियो को साथ लेकर जगलू की तरफ निकल गया व वतमान बीकानेर के पास काहूनी नामक एक छोटे से गाव मे पहुच गया। चित्तोड की सेना ने सोमेश्वर के पश्चात बिना अधिक विरोध के मण्डोर पर अधिकार जमा लिया। अज्जा, एका, राघवदेव व हीगलू आदि सीसोदिया सामन्तो ने मन्डोर मे अपनी स्थिति सुदृढ कर चौकडी मेडता और सोजत आदि स्थानो पर अपनी सैनिक चौकिया स्थापित की और जोधा को खोजने लगे।

इस प्रकार जोधा के सामने अत्यन्त ही निराशाजनक परिस्थितिया थी। चित्तोड की सेना तो उसे ढूढ ही रही थी मारवाड की राजनैतिक परिस्थिति भी उसके अनुकूल नही थी। उस समय वर्तमान मारवाड के विभिन्न क्षेत्रो पर स्वतन्त्र शासक राज्य कर रहे थे जिनमे से अधिकाश चित्तोड के प्रति स्वामीभक्त थे। जैतारण मे राव आस्थान के पुत्र सिंधल के वशज थे जो चित्तोड के राणाओ की आधीनता मानते थे। सीवाणा मे जैतमलोत शासन कर रहे थे जो राव सलखा के पुत्र जैतमल के वशज थे, खेड और पोकरण राव मल्लिनाथ के वशजो के आधीन

थे। नागोर मे पुन खानजादा वश ने अपनी सत्ता स्थापित करली थी। अत जोधा को न केवल सीसोदियों से मन्डोर ही छीनना था बल्कि इन सभी स्वतत्र शासकों को भी नतमस्तक करना था।

लगभग पन्द्रह वर्ष तक जोधा इधर उधर भटकता रहा और अपनी शक्ति मे निरन्तर वृद्धी करता रहा। ख्यातो से ज्ञात होता है कि मण्डोर पर उसका प्रथम आक्रमण असफल रहा। कुछ समय पश्चात एक वुढिया से प्रेरणा प्राप्त कर उसने मन्डोर से दूर दूर के ठिकानो पर आक्रमण करना आरम्भ किया। उसके साथ काफी योद्धा एकत्रित हो गए किन्तु अभी तक अच्छे अश्वो का अभाव था। सेतरावा के रावत लूणा के पास बहुत अश्व थे और उसकी पत्नी जोधा की मौसी थी। ठकराइन की सहायता से जोधा ने एक शक्तिशाली अश्व सेना तैयार की। इसी बीच जोधा वैंगटी नामक गाव मे सिद्ध पुरुष हडवू साखला से भी मिला। हडवूजी ने विश्वास दिलाया कि जोधा को इच्छित कार्य मे सफलता मिलेगी। इससे उसके उत्साह व मनोबल मे वृद्धि हुई।

मण्डोर पर अधिकार करने की पूरी योजना तैयार कर जोधा ने अपने एक विश्वासपात्र सहयोगी काला मगलिया को मडोर दुर्ग मे भेजा। मन्डोर मे काला मगलिया का एक सम्बन्धी निवास करता था अत किसी को सन्देह न हुआ। वह जोधा को मन्डोर की आन्तरिक स्थिति और गतिविधियो की सूचना भेजने लगा। अन्त मे एक निश्चित तिथि की रात्रि मे मगलिया ने दुर्ग के द्वार खोल दिये। अर्द्ध रात्रि मे जोधा ने अपनी सेना सहित दुर्ग मे प्रवेश कर अज्जा, ऐका, हीगलू, राघवदेव, सहसमल और नवद आदि को मौत के घाट उतार कर मन्डोर पर अधिकार कर लिया।

मेवाड के इतिहास के साधनो मे जोधा के मन्डोर अधिपत्य के सम्बन्ध मे बताया गया है कि महाराणा कुम्भा की दादी हसाबाई ने एक बार उससे कहा "रणमल ने मेवाड की बहुत सेवा की उसने चाच-मेरा को मारा, माण्डू के सुल्तान से मेवाड की रक्षा की व उसके गौरव मे वृद्धि की, इसके बदले उसे मृत्यु पुरस्कार मे मिली और अब उसका पुत्र जोधा भी मारा फिर रहा है।"

कुम्भा ने स्पष्ट रूप मे जोधा की सहायता करने मे असमर्थता प्रकट की किन्तु हसाबाई ने कहा "वह जोधा को मन्डोर पर अधिकार करने लिए सूचित करदे। महाराणा इस कार्य को बुरा नही समझेंगे"। इस प्रकार उदयपुर के इतिहास के साधनो के अनुसार जोधा का मन्डोर अधिकार कुम्भा की स्वीकृति से ही सम्भव हो सका। किन्तु उपलब्ध तथ्यो का आलोचनात्मक विश्लेषण करने पर यह धारणा असत्य लगती है क्योकि

(3) सम्भवत हसा बाई और कुम्भा की जोधा को सहायता सबन्धी वार्ता व

हसाबाई की प्राथना केवल महाराणा कुम्भा के गौरव की रक्षा करने के ध्येय से ही लिखे गये है। मारवाड की ख्यातो मे जोधा द्वारा सैनिक बल से मन्डोर जीतने का अत्यन्त ही विस्तृत विवरण उपलब्ध है। ऐतिहासिक दृष्टि से मारवाड के साधन अधिक विश्वसनीय है।

(2) यदि वास्तव मे मडोर पर अधिकार कुम्भा की स्वीकृति से किया जाता तो युद्ध न होता और अज्जा, ऐका, हीगलू और सहसमल जैसे सामधरमी सीसोदिया सामन्तो को न मराया जाता। अत मडोर शक्ति से छीना गया था।

(3) राजपूत इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान डा दशरथ शर्मा ने लिखा है ' राजपूत चरित्र की एक मूल विशेपता यह है कि वे सत्ता और भूमि के लिए प्राणोत्सर्ग कर देते है क्योकि भूमि के लिए प्राणो का बलिदान स्वग प्राप्ति के समान समझा जाता था। इस चरित्र के महाराणा कुम्भा ने स्वेच्छा से अधिकारत्याग दिया यह कहना उचित नही लगता।"

(4) 1453 ई मे जोधा द्वारा म डोर पर अधिकार के समय कुम्भा की स्थिति दयनीय थी और वह कठिनाइयो से घिरा हुआ था। उस पर मालवा और गुजरात की सेनाए मडरा रही थी। ऐसे उचित समय मे जोधा द्वारा मन्डोर पर अधिकार निश्चित रूप से उसकी दूरदर्शिता और सूझ का परिचायक है। यह भी स्पष्ट है कि जोधा द्वारा ऐसे उपयुक्त समय पर आक्रमण किया गया या जबकि मन्डोर के सीसोदिया सामन्तो को चित्तोड से सैनिक सहायता मिलने की कोई सम्भावना नही थी। ऐसे समय जबकि मालवा एव गुजरात के विरुद्ध योग्य व्यक्तियो की आवश्यकता थी कुम्भा अपने अज्जा, ऐका, हीगलू, सहसमल और नवद जसे योद्धाओ को जोधा के हाथो, अपनी स्वीकृति से कैसे मरवा सकता था।

(5) मन्डोर विजय के पश्चात जोधा ने मेवाड के सीमान्त प्रदेशो पर आक्रमण किए इसी समय गोडवाड के अनेक परम्परागत मेवाडी क्षेत्रो को मारवाड मे मिलाया। यदि कुम्भा की इच्छा से ही जोधा को मन्डोर मिला होता तो वह मेवाडी क्षेत्रो पर आक्रमण कदापि न कर पाता।

(6) 1459 ई मे जोधा द्वारा एक सुरक्षित पहाडी पर सुदृढ दुग की स्थापना भी मेवाडी आक्रमण की सम्भावना से ही की गई। यदि कुम्भा की स्वीकृति से मडोर लिया जाता तो सुरक्षित स्थान ढू ढन की क्या आवश्यकता थी। 12 मई 1459 जोधा द्वारा बनवाये जाने के समय ख्याता के अनुसार दुग का नाम 'गढ चितामणी' रखा गया। कुछ समय पश्चात यह किला 'मयुरध्वज नाम से प्रसिद्ध हुआ —

गढ ऊचो चित्तौड आबू सू वाता करै ।
मोरध्वज री मोड किए सू कमती किसनिया ।।

इस नामकरण का कारण गढ का मयूर आकार था। आजकल यह किला मेहरानगढ नाम से प्रसिद्ध है। मेहर का अर्थ सूर्य है अत मेहरानगढ का अर्थ हुआ सूर्यवशियो का किला डिंगल मे 'गढ मेहराण' अभेद्य व सुदृढ दुर्ग को कहा जाता है।

(7) मारवाडी ख्यातो से ज्ञात होता है कि मन्डोर मे जोधा की सफलता की सूचना मिलने पर महाराणा कुम्भा अत्यन्त क्रुध हुआ व स्वय एक सेना लेकर मारवाड की ओर बढा। जोधपुर राज्य की ख्यात से ज्ञात होता है कि जब जोधा को इसकी सूचना मिली तो उसने बीस हजार सैनिको की सेना तैयार की व पाच हजार बलगाडियो मे सैनिक बिठाकर कुम्भा का सामना करने निकला। पाली के निकट पहुच कर कुम्भा को ज्ञात हुआ कि मरने मारने पर उतारु राठौड सेना आ रही है जो वह वापस लौट गया। उत्साहित राठौड सेना चित्तौड तक जा पहुची। गुण जोधायण (पसाइत गाडण लिखित) के अनुसार जोधा ने चित्तौड दुर्ग के द्वार जला दिये।

(8) मन्डोर पर अधिकार कर जोधा ने अपने बडे भाई अखैराज को राज्य सौंपना चाहा। अखैराज ने इसे अस्वीकार करते हुए अपने रक्त से जोधा का तिलक कर उसे मन्डोर का राव घोषित किया। बदले मे जोधा ने मेवाड से बगडी की जागीर छीनकर अखैराज को सौंपी। तब से मारवाड मे यह परम्परा बन गई कि जोधपुर मे जब भी कोई नया शासक बनता बगडी का स्वामी अपने रक्त से तिलक करता।

स्पष्ट है कि मण्डोर मे राठौड सत्ता की स्थापना दया, कृपा या कुम्भा के आशीर्वाद से नही बल्कि युद्ध और रक्त के बल पर हुई थी।

मण्डोर विजय के पश्चात जोधा ने चौकडी (पीपाड), कोसाणा, सोजत, जैतारण आदि पर आक्रमण कर इन क्षेत्रो को जीता। सोजत व जैतारण को पहली बार जोधा ने ही मारवाड मे मिलिया।

मारवाड को मेवाडी आधिपत्य मे मुक्त कर जोधा ने उन व्यक्तियो को -पुरस्कृत करने का विचार किया जिन्होने दुर्दिनो मे उसकी सहायता की थी। इस इच्छा की पूर्ति के लिए नये प्रदेशो पर विजय आवश्यक थी। छापर-द्रोणमुख या मोहिलवाटी पर निश्चित रूप से जोधा ने विजय प्राप्त की थी। छापर का शासक अजीतसिंह मोहिल था। यद्यपि उसके साथ जोधा की राजाबाई नामक एक पुत्री का विवाह हुआ था किन्तु जोधा ने उसे पराजित कर अपने पुत्र बीदा को वहा का शासक बना दिया। अजीतसिंह के काका बछराज ने बहलोल लोदी के हिंसार मे

गवनर सारगखा की सहायता से मोहिलवाटी पर पुन अधिकार करने की असफल चेष्टा की। बछराज व सारगखाँ की सम्मिलित नेताओ को परास्त कर जोधा ने स्थाई रूप से छापर मे राठौड सत्ता की स्थापना कर दी। सारगखा पर जोधा की विजय का उल्लेख नणसी व दयालदास ने तो किया ही है साथ ही कयामखा रासो व श्रृ गारदेवी अभिलेख मे भी इसका उल्लेख मिलता है। यह विजय इसलिये महत्वपूण है कि इससे जोधा के साम्राज्य की सीमा हीसार तक जा पहुची। तत्कालीन भारत की सबसे महत्वपूर्ण सत्ता लोदी वश के एक प्रभवशाली अमीर को पराजित करने से जोधा के मान व प्रतिष्ठा मे अभूतपूव वद्धि हुई।

जोधा की अन्य विजयो का स्पष्ट विवरण उपलब्ध नही है किन्तु नणसी ने चाड ढाढी के आधार पर लिखा है "जोधा ने जालार को जीता, कन्छवाहो व भाटियो को अपनी कन्याए व्याहने के लिए बाध्य किया, बू दी से कर ग्रहण किया, घागेराव का गौरव नष्ट किया, गुन्दोज की स्थापना की, सेतरावा को नतमस्तक किया। उसने राणा की भूमि को रौंदा और अपने घोडो को पिछोला मे स्नान कराया।" यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि चाड के इस कथन मे कितना सत्याश है। यदि इसे पूण सत्य मान लिया जाय तब निश्चित रूप से समस्त वतमान राजस्थान पर जोधा का प्रभाव स्थापित था। किन्तु यह कथन बहुत बढा-चढा कर लिखा गया है।

महाराणा कुम्भा के पुत्र ऊदा ने पिता की हत्या के पश्चात जोधा को अजमेर व साभर इसलिये दिये कि जोधा उसे चित्तोड का स्वामी मान ले। ऊदा का विश्वास था कि जोधा की मान्यता मिल जाने से अन्य क्षेत्रो से विरोध की सम्भावना नही रहेगी। इसी कारण जोधा की स्वीकृति का मूल्य उसने अजमेर व साभर के रूप मे चुकाया। निसन्देह इस समय जोधा की प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी व कुम्भा की मृत्यु के पश्चात सभी राजपूत शासको की तुलना मे वह सबसे अधिक शक्तिशाली, बडे साम्राज्य का स्वामी और नीति निपुण शासक था।

जोधा के शासन की एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण घटना उसकी साखली रानी नौरगदे से उत्पन्न पुत्र बीका द्वारा बीकानेर की स्थापना थी।

जोधा के शासन मे ही मारवाड मे सामन्त प्रथा की दृढ रूप से स्थापना हुई। उसने अपने सम्बन्धियो की सहायता से ही विशाल साम्राज्य निर्मित किया था। आवागमन के सीमित साधनो के कारण इतने विस्तृत साम्राज्य पर एक केन्द्र से शासन करना सम्भव न था। साथ ही कठिन परिस्थितियो मे सहायता करने वाले सहयोगियो को भी पुरस्कृत करना आवश्यक था। अत जोधा ने अपने साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रो पर शासन करने हेतु अपने भाइयो व पुत्रो की नियुक्तिया की।

भाई	क्षेत्र
चापा	कापरडा+बनाड
डूगा	भाद्राजूण
माण्डल	साण्डराव
मण	लूणावास
अखराज	बगडी
पुत्र	
सातल	पोकरण+फलोदी
बीका	बीकानेर
बीदा	छापर द्रोणमुख
भारमल	बीलाडा
दूदा	मेडता
करमसी	खासोप

जोधा धार्मिक प्रकृति का व्यक्ति था। अपने पिता रणमल के अवशेषों को गगाजी पहुचाने वाले चन्दन चारण को उसने एक गाव दान दिया था। उसने स्वय प्रयाग व गया की तीर्थ यात्राए की थी व इन स्थानो पर लगने वाले करो को समाप्त करवाने हेतु प्रयत्न किये थे।

इस प्रकार जोधा न केवल राठौड सत्ता का वास्तविक सस्थापक ही था बल्कि उसने मारवाड की सीमाओ एव उसके गौरव मे भी अभूतपूर्व वृद्धि की।

जोधा के पश्चात् सातल, सूजा, गागा तथा मालदेव सिंहासनारूढ हुए। मालदेव के समय (1532-1572 ई) मारवाड की सीमा और गौरव मे वृद्धि हुई। शहर के चारो ओर 9 फीट चौडे व 32 फीट ऊंचे परकोटे का निर्माण मालदेव द्वारा ही करवाया गया। परकोटे के बीच-बीच मे सात जगी दरवाजे बनवाये। इनमें से पाच दरवाजो के नाम मालदेव द्वारा विजित प्रदेशो के नाम के आधार पर रखे गये। किले पर खडे होकर नागौर की दिशा मे नागौरी गेट, मेडता की ओर मेडती गेट, तथा सिवाणा की ओर सिवाची गेट का निर्माण करवाया। शेष दो का नाम चन्द्रमा व सूर्य के आधार पर चादपोल तथा सूरजपोल रखा। मालदेव की सैनिक शक्ति की इतनी धोस जमी हुई थी कि शेरशाह द्वारा पराजित मुगल बादशाह हुमायूं मालदेव की शरण हेतु मारवाड की ओर आ पहुचा। मालदेव द्वारा हुमायू को आश्रय देने सम्बन्धी समाचारो से क्रुद्ध शेरशाह को बीकानेर के कल्याणमल और मेडता के वीरम ने और अधिक भडकाया। शेरशाह ने मारवाड पर चढाई कर दी। दोनो फौजे आमने सामने पडी थी तब ऐसा कुचक्र चलाया गया कि विश्वासघात की आशका से मालदेव युद्ध क्षेत्र से निकल गया। स्वामीभक्ति का साक्ष्य प्रस्तुत करने

के उद्देश्य मे जता का कूपा के नेतृत्व मे मारवाड की सेना ने ऐसा युद्ध किया कि विजयी होने के पश्चात् भी शेरशाह को यह कहने के लिये विवश होना पड़ा 'मुट्ठी भर बाजरे के लिये दिल्ली की सल्तनत खो बैठता।' दिल्ली के सुल्तानो से भिडन्त के समान ही पारम्परिक चर्चाओ मे मालदेव की 'रूठी रानी' ऊमादे भटियाणी तथा दासी भारमली से सम्बन्धित बाते विशेष उल्लेखनीय है। मालदेव का पुत्र चन्द्रसेन महाराणा प्रताप के समकक्ष स्वतन्त्रता का पुजारी। चन्द्रसेन जीवन भर सिवाणा के पहाडी क्षेत्र मे अकबरी फौजो से भिडता रहा। सीहा मे चन्द्रसेन तक 'राव' कहलाने वाले राठौड शासक उदयसिह के समय 'राजा कहलाने लगे। उदयसिह व गजसिह ने मुगली मसबदार के रूप मे दक्षिण भारत के युद्धो मे बहुत यश अर्जित किया। गजसिह के दोनो पुत्रो – अमरसिह व जसवन्तसिह–ने मारवाड के गौरव मे वृद्धि की। अमरसिह राजस्थान की आन-बान के प्रतीक के रूप में प्रसिद्ध हुआ। शाहजहा की बीमारी के समय मुगल उत्तराधिकार युद्ध मे जसवन्त सिह ने दारा का समथन कर मालवा मे धरमत नामक स्थान पर युद्ध किया। इस युद्ध मे पराजित जसवतसिह के साथ उसकी हाडी रानी द्वारा किये गये व्यवहार के अनेक किस्से आज तक मारवाड मे प्रचलित है पर इनका कोई ठोस ऐतिहासिक आधार नही है। काबुल मे जसवन्तसिह ने मुगल सेनापति के रूप मे पठान विद्रोहियो को दबाया। 28 नवम्बर 1678 को जमरूद मे जसवन्तसिह के स्वर्गवास के पश्चात् औरगजेब के कुचक्र मे बालक राजकुमार अजीतसिह और मारवाड राज्य की रक्षा स्वामीभक्त दुर्गादास ने अपनी व्यक्तिगत सूझ, वीरता और त्याग की भावना से की। आज तक मारवाड मे दुर्गादास की स्वामीभक्ति के उदाहरण दिये जाते हैं। परवर्ती मुगलो की निर्बलता के समय अजीतसिह ने दिल्ली की राजनीति मे भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अजीतसिह के उत्तराधिकारी अभयसिह ने अहमदाबाद पर आक्रमण कर सरबुलन्दखा को पराजित किया। अभयसिह के भाई बखतसिह ने मराठो से जबरदस्त युद्ध किया। अभयसिह के पुत्र रामसिह तथा बखतसिह के बीच हुए उत्तराधिकारी युद्ध के कारण मारवाड मे मराठो का प्रवेश हुआ। विजयसिह के समय मराठा आतक छाया रहा। मानसिह के समय (1803–1843) स्वामी भक्तो को पुरस्कार मिले तो विरोधियो को विष पान करना पडा। मानसिह स्वय उच्च कोटि का कवि और विद्वानो का आश्रयदाता था। उदयपुर की राजकुमारी कृष्णाकु वरी से विवाह के प्रश्न पर जोधपुर जयपुर युद्ध, सामन्तीय षडयन्त्र, मीरखा पिण्डारी के द्वारा लूट खसोट आदि कारणो से बाध्य होकर मानसिह को अग्रेजो से सन्धि करनी पडी।

आमेर के कच्छवाहो के आदि स्थान सम्बन्धी समस्या का अभी तक पूर्ण समाधान तो नही हो सका है किन्तु सामान्यत यह स्वीकार किया जाता है कि 12वी शताब्दी मे दुलहराय ग्वालियर से दौसा पहुचा और उसने बडगूजरो को हराया। एक बार दौसा मे पैर जम जाने पर उसने अपने ससुराल पक्ष (चौहन)

की सहायता से मीणों को परास्त कर माची (आज का रामगढ), खोह, झोटवाडा अर गटोर पर विजय प्राप्त करली। उसके वशज काकिलदेव ने मीणों से आमेर छीन कर उसे राजधानी बनाया। ख्यातो मे इस वश के मालसी, जिलदेव, रामदेव, कु तल, जरणसी, उदयकरण, नृसिंह और चन्द्रसेन के नामो के उल्लेख मिलते हैं। चन्द्रसेन के पुत्र पृथ्वीराज ने महाराणा सागा के साथ खानवा मे बाबर से युद्ध किया था। पृथ्वीराज का विवाह बीकानेर के राव लूणकण की पुत्री बालाबाई से हुआ। पृथ्वीराज की विशेष कृपापात्र बालाबाई के प्रभाव से उसने अपने छोटे पुत्र पूरणमल को उत्तराधिकारी मनोनित कर दिया। 1533 ई मे पृथ्वीराज के ज्येष्ठ पुत्र भीमदेव ने पूरणमल को पराजित कर आमेर पर अधिकार कर लिया। गृह-कलह से उत्पन्न अव्यवस्था के कारण आमेर मे अफगानो मुगलो द्वारा हस्तक्षेप की सभावना बढ गई। भीमदेव का उत्तराधिकारी रतनसिंह अयोग्य था। अपनी एश्वयशाली प्रवृत्ति के कारण वह शेरशाह के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना न कर सका। फलत उसे अधीनता अगीकार करनी पडी। अव्यवस्था का लाभ उठाकर रतनसिंह के काका सागा ने आमेर की काफी भूमि पर अधिकार कर सागानेर की स्थापना की। सागा के बाद उसके भाई भारमल ने सागा के काय को और आगे बढाया। भारमल के भडकाने पर आसकरण ने अपने भाई रतनसिंह को जहर दे दिया। 1547 ई मे सामतो का समथन प्राप्त कर भारमल ने आसकरण को गद्दी से उतारा और खुद आमेर का स्वमी बन गया। पचास वप की अधेड उम्र का भारमल राजनीतिक दाव पेच मे माहिर। चारो ओर मडराती मुसीबतो से छुटकारे के प्रयत्नो मे वह ख्वाजा साहब की जियारत हेतु आये हुए अकबर से मिला। मुगली राज की नीव पक्की करने के लिये अकबर का भी शक्तिशाली व विश्वासपात्र सहयोगियो की आवश्यकता थी। दोनो मे सम्बन्ध स्थापित हुआ जो उस समय दोनो के लिये समान हितकर था। बाद मे अकबर का विश्वासपात्र बनकर भारमल न अनेक महत्त्वपूण कार्य सम्पन्न किये। 1574 ई मे मृत्यु के समय भारमल का मनसब बढते बढते पचहजारी तक पहुच गया था। भारमल का उत्तराधिकारी भगवतदास बहुत योग्य सिद्ध हुआ। सात वप तक उसने कुशलता पूवक पजाब की सूबेदारी सभाली। 1589 मे भगवतदास का देहावसान होने पर मानसिंह ने आमेर की बागडोर सभाली। मानसिंह ने, आरम्भ मे अपने दादा भारमल के समय (1562-1574) अपने पिता भगवतदास के समय (1574-89) और फिर स्वय आमेर के शासक के रूप मे लगभग 67 महत्त्वपूर्ण युद्धो में भाग लिया। उसने बगाल, बिहार और उडीसा मे मुगली साख जमाई और कई महत्त्वपूण काय किये। मध्य कालीन एशिया के सर्वाधिक गौरवशाली शासक अकबर के योग्य सेनापति और नौ रत्नो मे प्रमुख मानसिंह ने मुगल साम्राज्य की बहुमूल्य सेवा की। दुरसा, होलराय, अबूल फजल और तानसेन जसे कवियो-कलाकारो की सगत का प्रभाव मानसिंह पर भी पडा। कहा जाता है कि

एक फकीर कवि गग के पास जाकर रोने धोने लगा अन्त मे गग ने एक हजार रुपये की हुडी मानसिह के नाम की लिख कर फकीर को दे दी। मानसिह ने सहर्ष हुडी सिकार कर कवि गग के पास उलाहना पहुचाया कि बेचारे फकीर का दरिद्र दूर ही करना था तब इतनी छोटी राशि की हुडी क्योकर भेजी। यह भी कहा जाता है कि मानसिह के विश्वासपात्र कवि हापोजी के पास निज के एक सौ हाथी थे।

मानसिह के पश्चात भावसिह आमेर का शासक बना। वह जहागीर का विशेष कृपा पात्र था किन्तु नशे की लत के कारण अधिक जीवित न रह सका। उसके पश्चात मिर्जा राजा जयसिह ने मराठो पर शाही नियन्त्रण हेतु अनेक प्रयास किये किन्तु उस पर शिवाजी को आगरा से निकलने मे सहायता करने का आरोप लगा। बरहानपुर मे मिर्जा राजा की मृत्यु के पश्चात बिशनसिह आमेर का शासक बना। काबुल मे उसकी मृत्यु होने हर सवाई जयसिह उत्तराधिकारी बना। सूझ-बूझ तथा शूरमाई मे अपने पूवज जयसिह से भी सवाया। दक्षिण के युद्धो मे योग्यता बताने पर मालवा की सुबेदारी का अधिकार बना। सवाई जयसिह का प्रताप शौर्य इतना बढा चढा था कि बादशाह मुअज्जम ने आमेर को खालसा घोषित किया। जयसिह ने सैनिक बल से आमेर पर पुन अधिकार कर लिया। समकालिन राजपूत नरेशो मे जयसिह की धाक थी। उसी के प्रयत्नो से 1734 ई मे भीलवाडा के पास गुलाबपुरा से डेढ मील पर स्थित हुरडा नामक स्थान पर उदयपुर जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ इत्यादि के शासक मराठो के विरूद्ध सयुक्त प्रयत्न करने के उद्देश्य से एकत्रित हुए थे। कला-साहित्य के सरक्षक जयसिह ने 18 नवम्बर 1727 को जयपुर शहर की स्थापना की। आमेर का दीवान-ए-खास, ब्रिजनाथजी मन्दिर, आनन्दकृष्णजी का मन्दिर, अयोध्या मथुरा और काशी मे धर्मशालाएे, जयपुर दिल्ली, उज्जेन व बनारस की वेधशालाऐं (जतर मतर) आज भी जयसिह का यशगान करने के लिये विद्यमान हैं। उसके दरबार मे देश-विदेश के साहित्यकारो, शिल्पियो, ज्योतिषियो, भगोल शास्त्रियो आदि का जमघट लगा हुआ था।

1743 ई मे सवाई जयसिह के स्वगवास के साथ ही उसके बडे पुत्र ईश्वरीसिह और मेवाड की राजकुमारी से उत्पन्न पुत्र माधोसिह के बीच उत्तराधिकार का बखेडा खडा हुआ। इस गृह कलह ने जयपुर के उज्जवल इतिहास पर कालिख मल दी। जबरदस्त बर्बादी हुई। इस अवस्था का लाभ मराठो ने उठाया। प्रजा को भी अनेक अत्याचार सहन करने पडे। ईश्वरीसिह-माधोसिह तो एक के बाद एक शासक बन गये किन्तु मानसिह तथा सवाई जयसिह के प्रयत्नो से विकसित राज्य को विपदाओं की खाई मे धकेल दिया। प्रतापसिह ने तुगा के युद्ध मे मराठो से जोरदार टक्कर ली। हवा महल के रूप मे जयपुर के स्थापत्य मे सुन्दरतम अलकरण जडा। कला-साहित्य की उन्नति के लिये भी प्रतापसिह ने अनेक प्रयत्न किये। 1803 ई मे प्रतापसिह के स्वर्गवास के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी जगतसिह को अंग्रेजो का आश्रय लेने के लिये बाध्य होना पडा।

दक्षिण पूर्वी राजस्थान के हाडोती क्षेत्र मे स्थित कोटा बू दी के राज्यो ने भी राजस्थान के इतिहास को गौरवान्वित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हाडा चौहानो मे पूव वहा मीणो का आधिपत्य था। बू दा मीणा के कारण बून्दी नाम पडा। भसरोडगढ के समीप बवावदे के नाडौल चौहान देवसिह ने सव प्रथम 1242 ई के लगभग इस क्षेत्र मे हाडा चौहानो का प्रभाव जमाया। मीणो से बून्दी, गजमल गौड से खटकड, मनहरदास गोहिल से पाटन जसकरण दहिया से करवर व गैणोली तथा लाखेरी क्षेत्र जीत कर देवसिंह ने हाडा राज्य की नीव डाली। कनल जेम्स टॉड ने देवसिह के एक चमत्कारी घोडे तथा उसकी आन-वान का आश्चय चकित कर देने वाला वर्णन किया है। टॉड के अनुसार देवसिह ने दिल्ली के सुल्तानो से भी सघप किया। देव हाडा के समय चम्वल नदी बून्दी की सीमा थी। देव का उत्तराधिकारी समरसिह भी अपने पिता के स्तर का योद्धा था। नवीन क्षेत्र विजय करने के लिये उसने चम्बल नदी को पार कर अकेलगढ व मुकन्दरानाल के भीलो को पराजित कर इस क्षेत्र की देखभाल का कार्य अपने पुत्र जैतसिह को सौपा। कोटिया भील के नाम के कारण इस क्षेत्र का कोटा नामकरण हुआ। इसके पश्चात कोटा की जागीर बू दी शासक के छोटे भाई को दी जाने लगी। सुरजन हाडा, शत्रु साल और रतन के समय बून्दी का निरन्तर विकास हुवा। कभी हाडे बनावटी दुर्ग की रक्षार्थ कट मरे तो कभी बून्दी राव युद्ध क्षेत्र से महाराणा कुम्भा की पगडी ले भागे। इसी प्रकार की शौर्य और बलिदान की कथाओ से बून्दी का इतिहास भरा पडा। 1624 ई मे राव रतन के छोटे भाई माधोसिह के समय कोटा एक स्वत त्र राज्य वन गया। महाराव किशोरसिह ने दक्षिण मे मुगल साम्राज्य के विस्तार के समय महत्वपूण कार्य किये। धरमत के युद्ध मे भी कोटा राव ने उल्लेखनीय सेवाए प्रदान की। कालान्तर मे कोटा-बून्दी मे परस्पर विरोध तथा झगडे मे दोनो राज्यो को हानि हुई। निरन्तर मराठो के आक्रमणो, उनके अत्याचारो और युद्धो के कारण हाडोती के इन राज्यो को भी अग्रेजो का आश्रय लेना पडा।

जोधपुर शहर और दुर्ग के सस्थापक राव जोधा के पुत्र बीका ने स्वय की व्यक्तिगत योग्यता से जागल प्रदेश मे एक नये राज्य की स्थापना की। बीका के नाम पर इस नवीन राज्य का नाम बीकानेर हुआ। यह भी कहा जाता है कि इस क्षेत्र के जाट नेता नरा और बीका के नामो को सयुक्त कर बीकानेर नामकरण किया गया। बीका ने पू गल के भाटियो, जागलू के साखलो, सिधाणा के जोहियो, हिसार के पठानो व बलोचो को पराजित कर सिरसा, भटिडा, भटनेर, नोहर तथा नागौर तक अपने साम्राज्य की सीमाओ का विस्तार किया। 1504 ई मे बीका के स्वर्गवास के समय बीकानेर चालीस हजार वर्गमील के क्षेत्र मे विस्तृत था। इसमे लगभग तीन हजार गाव सम्मिलित थे। बीका का उत्तराधिकारी नरा बना किन्तु 13 जनवरी 1505 ई मे अल्प आयु मे ही उसकी मृत्यु हो गई और उसका छोटा भाई लूणकरण शासक बना। लूणकरण योग्य शासक सिद्ध हुआ। उसने ख्द्देवा और चायलवाड

जीते और जैसलमेर पर आक्रमण कर राव जैतसी को बुरी तरह पराजित किया। 21 मार्च 1526 को भाटी व जाहियो के घात से वह नारनोल के नवाब से युद्ध के समय मारा गया। लूणकरण दानी, प्रजा हित चाहने वाला व गुणजनों का सम्मान करने वाला शासक था। बीठू सूजा ने 'राव जैतसी री छंद' मे उसे कलयुग का कर्ण कह कर सम्बोधित किया। बीठू सूजा के वर्णन से ज्ञात होता है कि लूणकरण के उत्तराधिकारी जैतसी ने मुगल शहजादे कामरान को पराजित किया। नये प्रदेश जीतने की लालसा से कामरान ने भटनेर (हनुमानगढ) जीत कर बीकानेर पर आक्रमण किया। जैतसी ने श्रेष्ठ रण कौशल का प्रदर्शन किया। भोजराज रूपावत को बीकानेर की रक्षा का भार सौंप कर उसने चुने हुए वीरो के साथ शहजादे की सेना पर धावा बोल दिया। अचानक हुए आक्रमण से मुगल सेना हडबडा कर भागने लगी। मुगलों से युद्ध के कारण थकी मांदी जैतसी की सेना कुछ समय पश्चात मारवाड के राव मालदेव के आक्रमण का प्रहार न झेल सकी। जैतसी युद्ध मे मारा गया। उसके पुत्र कल्याणमल ने शेरशाह के पास पहुच कर उसे मालदेव पर चढाई करने के लिये उकसाया। इस आक्रमण के समय कल्याणमल ने अपना पैतृक राज्य पुन प्राप्त कर लिया। बाद मे कल्याणमल ने अकबर से सम्पर्क स्थापित किया। कल्याणमल का पुत्र रायसिंह बीकानेर का सर्वाधिक योग्य शासक सिद्ध हुआ। मुगली मनसबदार के रूप मे उसने नागौर तथा जोधपुर राज्य का कार्यभार भी सभाला। काबुल, ब्लोचिस्तान और दक्षिण भारत मे रायसिंह ने अद्भुत वीरता और साहस का प्रदर्शन किया। राजस्थान मे सिरोही, जालोर, मेवाड और सिवाणा के युद्धो मे भी उसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बीकानेर का दुर्ग रायसिंह ने ही निर्मित करवाया तथा कई कवियो को लाख पसाव व क्रोड पसाव (विशेष सम्मान व पुरस्कार) प्रदान किये। इस शूरवीर का स्वर्गवास दक्षिण मे बुरहानपुर मे 1612 ई मे हुआ। रायसिंह के भाई पृथ्वीराज ने 'वेलि किसन रुकमणी री' की रचना की। रायसिंह के पुत्रो-सूरसिंह-दलपतसिंह मे मनोमालिन्य रहता था। जहांगीर ने आरम्भ मे दलपत के टीका किया लेकिन बादमे नाराज हो गया तब बीकानेर के सरदारो ने ही उसे कैद करवा दिया और सूरसिंह बीकानेर का शासक बना। सूरसिंह के उत्तराधिकारी कर्णसिंह (1631-1669) ने अटक नदी के पार जाने से मना करने वाले नरेशो का नेतृत्व किया और 'जय जंगलधर बादशाह' कहलाया। उसके बाद अनूपसिंह (1669 (1698) शासक बना। वह विद्या अनुरागी था और विद्वानों को उचित मान सम्मान देकर उसने यश अर्जित किया। अनूपसिंह ने दक्षिण मे बीजापुर, गोलकुण्डा और मराठा के विरूद्ध युद्धो म योग्यता सिद्ध कर 'माही मुरातिब' का सम्मान प्राप्त किया। अनूपसिंह के पश्चात स्वरूपसिंह सुजानसिंह व जोरावरसिंह शासक बने। सुजानसिंह के समय बीकानेर पर जोधपुर के अजीतसिंह और नागौर के बख्तसिंह के आक्रमण हुए। जोरावरसिंह के समय मारवाड के अभयसिंह का आक्रमण हुआ पर इस समय सवाई जयसिंह ने बीकानेर की सहायता की। बाद मे राज्य

प्राप्ति हेतु षडयन्त्र व कुचक्र, भाटियो द्वारा लूट, जनानी ड्योढी का राजनीति म अनुचित हस्तक्षेप और इसी प्रकार के आन्तरिक कलह का दौर आरम्भ हो गया। यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान के अधिकाश राज्यो ने मराठो की लूट व अत्याचारो से आतकित होकर पेरामाउण्ट पावर का आश्रय लिया था किन्तु बीकानेर को आन्तरिक कलह और षडयन्त्रो से त्रस्त होने पर अग्रेजो से सन्धिया करनी पडी।

राजस्थान मे जाटो के प्रमुख राज्य भरतपुर की स्थापना ब्रिज के योग्य पुत्र चूडामण द्वारा की गई। सूरजमल के समय भरतपुर का बहुत विकास हुआ। सूरजमल का प्रभाव इतना बढ गया कि उसने पजाब के जाटो के सहयोग से दिल्ली पर आक्रमण की योजना बनाई। उसके उत्तराधिकारी ने होलकर को हराया और धौलपुर पर अधिकार स्थापित किया। 1805 ई मे जाट शूरमाओ ने एक बार तो अग्रेजो के छक्के छुडा दिये। राजस्थान के अधिकाश रजवाडो ने अग्रेजो की मित्रता स्वीकार करली तब 1826 मे भरतपुर ने भी अग्रेजो से हाथ मिला लिया।

उपरोक्त राज्यो के साथ ही सिरोही, डूगरपुर, जैसलमेर, अलवर, बासवाडा, शेखावाटी, झालावाड, करौली तथा शाहपुरा ने भी राजस्थान के इतिहास को गौरवशाली बनाने मे योग दिया। टॉड ने लिखा है कि राजस्थान के प्रत्येक स्थान पर थर्मोपाली जैसे युद्ध और लियोनीडाज के समान योद्ध हुए।

इस प्रकार मध्यकाल मे राजस्थान आन-बान वाला क्षेत्र रहा। यहाँ के शूरमाओ ने शौर्य और बलिदान के नये नये कीर्तिमान स्थापित किए। आक्रमणकारी राजस्थान की ओर आने से कतराते थे। इसलिये यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि ऐसी बलिदानी प्रकृति वाले राजस्थान ने अंग्रेजो का आश्रय क्यो लिया? इस प्रश्न का उत्तर तत्कालीन परिस्थितियो के विश्लेषण से स्पष्ट होता है। अठारवी शताब्दी के अन्तिम छोर तथा उन्नीसवी के आरम्भिक वर्षो मे राजस्थान मे ऐसी उठक-पटक मची कि यहा के राजा-राणा हडबडा कर अग्रेजो की गोद मे जा बैठे। औरंगजेब के पश्चात मुगल शासक निर्बल होते गये। राजस्थान पर भी मुगलो की निर्बलता का प्रभाव पडा। सर यदुनाथ सरकार ने लिखा "समस्त राजस्थान एक ऐसा अजायबघर बन गया जिसके पिंजरो के न तो कहीं दरवाजे ही थे और न ही पहरेदार।" मराठो के निरन्तर आक्रमण और जुल्म बढने लगे। उस समय यहा उत्तराधिकार के युद्ध बहुत अधिक हुए। कभी एक पक्ष मराठो को अपने समर्थन मे बुला लाया तो कभी दूसरे पक्ष ने पिण्डारियो का आश्रय लिया। मराठा की लगातार लूट से अधिकाश रजवाडो के कोष रिक्त हो गये। राज्य कोष की रिक्तता ने सैनिक दुर्बलता को जन्म दिया। इस अव्यवस्था का लाभ उठाकर सामत भी स्वेच्छाचारी होने लगे। इस प्रकार की विपदाओ से घिरे राजाओ ने अग्रेजो के आश्रय को धन्य भाग्य माना। 1818 ई तक अधिकाश रजवाडो के अग्रेजो से करारनामे हो गये।

अग्रेजो से सन्धिया होने पर विशृंखलित राजस्थान मे एक बार तो व्यवस्था स्थापित हो गई। अगले कालीन वर्षों मे लगभग सभी विपत्तिया दूर हो गई। कुछ तो 1761 मे तृतीय पानीपत युद्ध म अहमदशाह अब्दाली ने मराठा शक्ति का कुचल दिया और कुछ रही सही कमर अग्रेजो ने निकाल दी। इस प्रकार कुचले जाने पर मराठे राजस्थान पर आक्रमण करने योग्य नही रह गये। उत्तराधिकार के युद्ध भी समाप्त हो गये। अग्रेज जिसके पक्षधर बनते उसका शासन पर अधिकार निश्चित। अग्रेजो से सन्धियो के पूर्व रजवाडो के बीच छोटी छोटी बातो के लेकर होने वाले युद्ध भी रुक गये। सन्धियो के अनुसार अग्रेजो के मित्रो के बीच सौहार्द बना रहना आवश्यक था। सामतो का प्रभाव भी धीमा पड गया। इस प्रकार सन्धिया से पूर्व की लगभग सभी समस्याओ का समाधान हो गया। अब प्रश्न यह सामने आता है कि यदि सन्धियो के इतने सुपरिणाम हुए तब राजस्थान मे 1857 मे अग्रेजी विरोधी क्रान्ति की अग्नि क्यो प्रज्वलित हुई।

कठिन भौगोलिक दशाओ के कारण राजस्थान के लोग अन्य क्षेत्रो से अलग-थलग रहे और उनमे स्वतत्र प्रवृत्ति का विकास हुआ। बाकीदास, सूर्यमल मिश्रण, महाराजा मानसिंह, आढा जवानजी, बारहठ दुर्गादत्तजी, आढा जादूरामजी, आसिया बुधजी, तिलोकदानजी, आढा चिमनजी, त्रिलोकदानजी, दधवाडिया गोपालदानजी, लालस नवलजी, शकरदान सामौर आदि साहित्यकारो ने अग्रेजो का विरोध करने मे अपनी कलम की कारीगरी दिखलाई। इन साहित्यकारो ने अपनी रचनाओ से जनता व राजाओ के मन मे अग्रेज विरोधी भावनाए उत्पन्न कर क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया। क्रान्ति जैसा महत्वपूर्ण कार्य साधारण जनता के सहयोग के अभाव मे कभी सफलतापूर्वक सम्पन्न नही किया जा सकता। राजस्थान मे 1857 की क्रान्ति से पूर्व यहाँ के लोगो के मन टटोलने से ज्ञात होता है कि आम आदमी ने भी अग्रेजी सत्ता का विरोध करने के लिये कमर कस रखी थी। लोगो की मन की थाह उस समय प्रचलित अनेक अग्रेज विरोधी लोक गीतो से मिलती है। लोग अग्रेजो से इतनी घृणा करते थे कि उन्होने डूगजी-जवाहरजी जैसे डाकुओ की लोक गीतो मे केवल इसलिये प्रशसा की कि उन दोनो ने अग्रेजो की छावनी को लूटा था। बीकानेर के महाराजा रतनसिंह की गीतो मे इसलिये प्रशसा की गई कि उसने जवाहरसिंह का अग्रेजो को सौपने से दृढतापूर्वक मना कर दिया। जोधपुर के तखतसिंह की आलोचना का कारण केवल यह था कि उसने डूगजी को अग्रेजो को सौप दिया। राजस्थान के लोग प्रारम्भ से ही परम्परावादी रहे। धर्म को खतरे का आभास हो जाने पर वे सर्वस्व न्यौछावर करने के लिये तत्पर हो जाते। 1857 से पूर्व अग्रेज, डच और फ्रासीसियो ने राजस्थान सहित समस्त भारत मे ईसाइयत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया था। अग्रेजी स्कूलो, अस्पतालो और अनाथालयो की स्थापना होने लग गई थी। अकाल की चपेट मे घिरे लोगो की सहायतार्थ अन्न वस्त्र व आवश्यक वस्तुओ का वितरण कर पादरियो ने धर्म परिवर्तन का जाल फैलाना आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार ईसाइयत के प्रचार

से ग्राम ग्रादमी रुष्ट हो गया। सती प्रथा को समाप्त करने के प्रयत्नो का भी विपरीत प्रभाव पडा। परम्परागत रीति रिवाजो पर प्रहार से रूढीवादी लोग अग्रेज विरोधी बन गये। जनता के विरोध ने स्वतत्रता सेनानियो को ग्रावश्यक प्ररणा ग्रौर बल प्रदान किया।

राजाग्रो के अग्रेजो से सन्धियो के कारण सामन्तो की स्थिति बिगड गई। सामतो के ग्रनेक परम्परागत ग्रधिकार समाप्त हो गये। सभी वर्गों के सामन्त अग्रेजी शासन के विरोधी थे ग्रौर उसकी समाप्ति हेतु प्रयत्नशील थे। ग्रउवा, ग्रासोप, गूलर, ग्रालणियावास, लाम्बिया बाटा, भीवालिया, राडावास, बाजावास, सेजडला सन्‌वर, रूपनगर, लासाणी तथा ग्रासीद के ठाकुरो ने राजस्थान मे 1857 के प्रथम स्वतत्रता सग्राम के समय प्रमुख भूमिका निभाई थी। सामन्तो की भाति कई राजा भी अग्रेजो का विरोध करने लगे थे। अग्रेजो से सन्धिया की तब उनके मन मे पिण्डारियो, मराठो ग्रौर सामन्तो का डर बैठा हुग्रा था। अग्रेजो ने भी इन राजाग्रो को समझा-बुजा कर सन्धियो के लिये तैयार किया था। धीरे धीरे अग्रेजो ने मित्रता का चोला उतार फेका ग्रौर स्वामी की तरह व्यवहार करने लगे। दैनिक कार्यों मे बढता हुग्रा हस्तक्षेप राजाग्रो को खटकने लगा। जोधपुर के महाराजा मानसिंह जैसे कई राजा अग्रेजो से घृणा करने लगे। भरतपुर, कोटा, ग्रलवर इत्यादि मे उत्तराधिकार के झगडो मे ब्रिटिश हस्तक्षेप भी राजाग्रो को बुरा लगा। ग्रनेक राज्यो के परम्परागत क्षेत्रो को ब्रिटिश राज्य मे मिलाया जाना भी राजाग्रो के विरोध का कारण बना। योग्य शासक यह भी समझ गये कि अग्रेज उनके राज्य का ग्रार्थिक शोषण कर रहे थे। ग्रपनी जनता ग्रौर सामन्तो के अग्रेज विरोधी व्यवहार से भी शासकगण प्ररित प्रोत्साहित हुए। तत्कालीन परिस्थितियो का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि राजाग्रो के मन मे अग्रेजो के प्रति घृणा होते हुए भी उन्होने 1857 की क्रान्ति मे सक्रिय भाग नही लिया। इसका प्रथम कारण तो यह था कि राजाग्रो पर अग्रेजो की जबरदस्त धाक जमी हुई थी। फिर राजा क्रान्ति की व्यापकता का ग्रनुमान नही लगा सके। उन्हे इस बात का ग्राभास तक नही था कि समूचे देश मे क्रान्ति की ग्राग लग चुकी है। क्रान्ति के नेताग्रो ने राजाग्रो का सहयोग प्राप्त करने के लिये कुछ भी प्रयत्न नही किये। कारण कुछ भी रहे हो यह निश्चित है कि यदि सभी ग्रपने फौज बल सहित ग्राजादी की इस लडाई मे सम्मिलित हो जाते तो अग्रेजो की ऐसी दुर्गति होती कि उनके सामाचार लन्दन पहुचाने वाला भी जीवित न बच पाता।

ब्रिटिश फौज के देशी सिपाहियो के साथ जो सौतेला व्यवहार किया जाता था उससे राजस्थान की छावनियो मे स्थित देशी सैनिको के मन मे भी ग्राग लगी हुई थी। साधू-फकीर वेष मे दिल्ली के सैनिक राजस्थान पहुचे ग्रौर गाय-सुग्रर की चर्बी वाले कारतूसो की सूचना यहा के फौजियो को बीच पहुचा दी। राजस्थान

की छावनियो मे एक यह बात भी रग लाई कि फौजियो को जो आटा सप्लाई होता है उसमे मनुष्य की हड्डिया पीस कर मिलाई जाती है।

इस प्रकार राजस्थान की जनता, सामत, राजा, साहित्यकार और देशी सैनिक सभी 1857 की क्रान्ति के समान भागीदार थे।

आबू मे आराम करते हुए ए जी जी लारेन्स के पास 19 मई 1857 का मेरठ की क्रान्ति के समाचार पहुचे तो एक बार तो वह सकपका गये। अपनी ओर से सुरक्षा के उपायो पर विचार कर राजाओ को पत्र लिखे कि वे बागियो को अपनी सीमा मे प्रवेश न करने दें।

घबराहट मे ए जी जी साहब अजमेर की स्थिति पर विचार करने लगे। राज्य का सारा कोष और शस्त्र अजमेर मे ही थे। राजस्थान मे अंग्रेज सत्ता का केन्द्र अजमेर ही था अत यदि अजमेर मे ही बखेडा हो गया तो कुछ भी उपाय न हो सकेगा। साहब की बोखलाहट का विशेष कारण यह था कि अजमेर की सुरक्षा के लिये पन्द्रहवी नेटिव इन्फेन्ट्री की जो टुकडिया नियुक्त थी वे हाल ही मे मेरठ से स्थानान्तरित होकर अजमेर पहुची थी। इस प्रकार एक तो राजस्थान मे पहले ही अंग्रेजो के प्रति घृणा की भावना विद्यमान थी और और फिर मेरठ मे क्रान्ति के समाचार मिल गये तब बेचारे साहब का घबराना स्वभाविक ही था। हडबडाहट मे साहब ने अजमेर की सुरक्षा के प्रथम उपाय के रूप मे 15 वी नेटिव इन्फन्ट्री की दोनो टुकडियो को अजमेर से हटा कर नसीराबाद भेज दी जहा इस इन्फन्ट्री के शेष सनिक तैनात थे। इससे भी घबराहट दूर नही हुई तो छावनी मे तोपें लगवाकर अन्य पलटनो के वफादार सनिको को मोर्चो पर नियुक्त कर दिया। साहब की अजमेर की सुरक्षार्थ की गई व्यवस्था ने ब्रिटिश राज्य को आफत मे डाल दिया। 15 वी नेटिव इन्फैन्ट्री के सनिक क्रोधित हो गये। बख्तावरसिंह नामक सैनिक ने अग्रेज अफसर प्रिचार्ड के पास जाकर पूछा कि "क्या यह सत्य है कि यहा यूरोपियनो की एक फौज बुलाई गई ह।" 28 मई 1857 को मुशी मीर बाकर अली ने प्रिचार्ड को बताया कि सभी फौजी इस बात से क्षुब्ध हैं कि उन्हे जो आटा दिया जाता है उसमे हड्डिया मिला दी जाती है। प्रिचार्ड कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सका किन्तु उसने ब्रिगेडियर के पास रिपोर्ट भेज कर आवश्यक कार्यवाही का आश्वासन दिया। दुपहर दो बजे प्रिचार्ड भोजन करने के पश्चात हाथ साफ कर रहा था कि तोप छूटने की तेज आवाज से उसके कानो के पर्दे झना उठे। घर से बाहर देखने पर उसे जबरदस्त भगदड मची हुई दिखाई दी। पन्द्रहवी नेटिव इन्फेन्ट्री के सैनिको ने तोपखाने पर अधिकार कर लिया। पहले घुडसेना और बाद मे अन्य सैनिको को तोपखाने की ओर बढने के आदेश दिये गये किन्तु किसी ने इन आदेशो की अनुपालना नही की। तोपखाने मे लगातार गोले दागे जा रहे थे। स्पोडिसवुड नामक एक मेजर तोपखाने की ओर बढा किन्तु चार कदम बढाते ही

एक दनदनाती गोली ने उसका भेजा बिखेर दिया। कर्नल न्यूबरी के भी टुकडे कर दिये गये। छावनी के कनल सहित अनेक अग्रेज अफसर घायल हुए। घबराये हुए अग्रेज अफसर अत्यन्त ही कठिनाई से स्त्रियो व बच्चो को साथ लेकर छावनी से निकल सके। यह अदेशा था कि छावनी के विद्रोही सनिक अजमेर की ओर बढगे। अत छावनी से भगोडे अग्रेजो ने ब्यावर की राह पकडी। छावनी के विद्रोही इच्छानुसार क्रोध प्रकट करने लगे। चर्च और अग्रेज अफसरो के बगलो को आग लगा दी। माल असबाब कब्जे किया और कपडो व अन्य सामान को मैदान मे एकत्रित कर दिया। छावनी को तहस नहस कर यह सैनिक दिल्ली की ओर रवाना हुए। यहा यह तथ्य उल्लेखनीय है कि यह केवल असन्तुष्ट सनिको का बखेडा अथवा कोई आकस्मिक घटना नही थी बल्कि पूर्व नियोजित विचार विमश के अनुसार अग्रेजी साम्राज्य को समूल नष्ट करने के उद्देश्य से की गई क्रान्ति थी। सव प्रथम तो इस क्रान्ति मे सभी धर्म सम्प्रदाय के लोग सम्मिलित थे। फिर यदि छावनी लूटने के पश्चात यह सैनिक लूट के माल सहित अपने घर की ओर चले जाते तब तो बात अलग होती। किन्तु सब ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया और माग मे लडते-भिडते दिल्ली पहुच गये। वहा पहुच कर दिल्ली का घेरा डाली हुई एक अग्रेज पलटन पर टूट पडे। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि यह क्रान्तिकारी भारत भूमि को अग्रेजी दासता से मुक्त करना चाहते थे। यह लोग दिल्ली के अग्रेज विरोधी बादशाह जफर की सहायताथ दिल्ली पहुचे थे। एक बहुत खटकने वाली बात यह है कि अग्रेज तो अजमेर की सुरक्षा के लिये बहुत ही चितित थे और नसीराबाद के क्रान्तिकारी सैनिको ने अजमेर की ओर देखा तक नही। जाते समय यदि अजमेर पर धावा बोल देते तो राजस्थान मे अग्रेजी शासन की कमर ही टूट जाती। उदयपुर मे पालिटिकल एजेंट सावर्स ने लिखा कि दिल्ली के विद्रोहियो ने इन्हे दिल्ली पहुचने का निमन्त्रण दिया था। यही कारण है कि नसीराबाद के सनिक शिघ्रातिशिघ्र दिल्ली पहुचने के लिए आतुर थे। इनके दिल्ली पहुचने की आतुरता की जानकारी इस तथ्य से भी होती है कि शीघ्र दिल्ली पहुचने की धुन मे अनेको ने लूटे माल को माग मे ही फेक दिया। भार कम कर जल्दी पहुचने के उद्देश्य से ही लूट का माल फेका गया था।

नसीराबाद के पश्चात् नीमच मे क्रान्ति की ज्वाला ने अग्रेजी साम्राज्य की नीव हिलाई। नीमच की छावनी नसीराबाद से 120 मील की दूरी पर स्थित थी। वहा मेरठ से समाचार पहुचने से पहले ही भयभीत कनल ओबाट को नसीराबाद मे क्रान्ति की सूचना मिलने पर आतकित हो गया। देशी सिपाईयो को एकत्र कर अनुनय विनय करने लगा। उसने बाईबल पर हाथ रख कर सौगध खाई कि वह देशी सैनिको पर पूर्ण विश्वास करता रहेगा फिर कुरान तथा गगाजल की शपथ दिलवाकर देशी सैनिको से आश्वासन लिया कि वे ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार

बसे रहेगे। 2 जून को घुडसवार मोहम्मद अली बेग ने कर्नल एबाट के सम्मुख जाकर कहा 'अंग्रेजो ने सौगन्ध कब निभाई। क्या अवध मे आप जबरदस्ती नहीं घुसे। फिर केवल हिन्दुस्तानी ही सौगन्ध पर क्यो अटे रहे ?" उस समय तो एबाट ने जैसे तैसे लल्लु चप्पु कर मोहम्मद अली को शात कर दिया। किन्तु अगले दिन प्रात ही नसीराबाद की क्रान्ति के समाचार नीमच पहुच गये। दिन के ग्यारह बजते बजते छावनी मे भगदड मच गई। सैनिको ने तोपखाने पर अधिकार जमाया और छावनी को आग लगा दी। क्रोधित सैनिको ने एक अग्रेज सार्जेंट के बच्चे को आग मे फेंक दिया। छावनी के लगभग चालीस अग्रेज जान बचा कर मेवाड की ओर भागे। छावनी के बन्दियो को मुक्त कर, खजाना लूटा और छावनी को आग लगाने के पश्चात् इन देशी सैनिको ने भगोडे अंग्रेजो का पीछा किया। डूगला नामक गाव पहुचने पर इन भागते हुए अग्रेजो को कप्तान शावर्स और बख्तावर सिंह के नेतृत्व मे मेवाडी फौज का सरक्षण मिला तब इनकी जान बची।

नीमच के फौजी सूबेदार गुरेमराम को कमाण्डर, सूबेदार सूदेरसिंह को ब्रिगेडियर और जमादार दोस्त मोहम्मद को मेजर नियुक्त कर बैण्ड-बाजो के साथ रवाना हुए। चित्तौडगढ, हमीरगढ और बनेडा के सरकारी बगलो को लूट कर आग लगाते हुए शाहपुरा, निम्बाहेडा होते हुए देवली पहुचे। देवली में भी छावनी को जहा के अग्रेज तो पहले ही भाग गये और देशी सैनिक नीमच के इन सैनिको के साथ मिल गये। यहा से यह लोग टोक पहुचे जहा जनता ने इनका स्वागत किया। यहीं कोटा से आए हुए अनेक सैनिक भी इनके साथ हो लिये। टोंक के नवाब के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह असफल रहा और उसकी फौज के अनेक सैनिक भी नीमच के इन क्रातिकारियो के साथ मिल गये। टोक से यह सम्मिलित सेना दिल्ली पहुची और वहा अग्रेजो से युद्ध करने वाली एक बडी सेना की सहायता मे जुट गई।

1836 ई मे अग्रेजो ने जोधपुर लीजियन नामक एक फौज बनाई। मारवाड मे 1857 की क्राति का इस फौज मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। 18 अगस्त को जोधपुर लीजियन की एक टुकडी रोवा ठाकुर के बखेडे के समाधान हेतु आबू की जडो मे बसे हुए गाव अनादरा पहुची। 21 अगस्त की रात्रि को लगभग पचास फौजी अनादरा से माउन्ट आबू चढे। प्रात लगभग सवा तीन बजे कोहरे से छाई हुई धुन्ध के बीच यूरोपियन सोल्जरो की बैरेको तथा जोधपुर लीजियन के कप्तान हाल साहब के बगले पर गोलिया बरसने लगी। हाल साहब के बगले मे ए जी जी का पुत्र ए लारेन्स भी घायल हुआ।

यद्यपि आबू मे छुट-पुट वारदात ही हुई किन्तु इसकी सूचना जोधपुर लीजियन के प्रमुख केन्द्र ऐरनपुरा पहुचने पर तो गजब हो गया। 22 अगस्त को ऐरनपुरा मे भी क्रान्ति का बिगुल बज गया और उसी दिन आबू मे गोलिया बरसाने वाले

सैनिक भी ऐरनपुरा आ पहुचे। क्रोधित सैनिको ने छावनी और स्टेशन को लूट लिया तथा महरबानसिंह को अपना जनरल नियुक्त कर अजमेर की तरफ रवाना हो गये। थोडी दूर जाने पर इन्हे समाचार मिला कि किलेदार अनाडसिंह के नेतृत्व मे आई जोधपुर के महाराजा तखतसिंह की एक फौज पाली मे डेरा डाले हुए है। इस सूचना पर ऐरनपुरा के सनिको ने खेरवा का माग पकडा और अउवा के पास एक गाव मे पहुच कर डेरा डाला।

अउवा ठाकुर खुशालसिंह चापावत के महाराजा तखतसिंह के अनबन। ठाकुर अग्रेजो को झगडे का कारण मानकर उनसे घृणा करता था। यह बात गाव की चौपालो मे आज तक प्रसिद्ध है कि खुशालसिंह दस सिर और चौपन हाथो वाली अपनी कुलदेवी सुगाली माता की मूर्ति के सम्मुख पूजा हेतु बैठा था तब उसे ऐरनपुरा के सनिको के आगमन की सूचना मिली। तुरन्त सामने जाकर ठाकुर इन सैनिको को गढ मे ले आया। ठाकुर के चाकरो ने समझा कि देवीमा का आदेश होने पर ही ठाकुर क्रातिकारियो का स्वागत कर रहा है। आगे से आगे खुसर-पुसर होते-होते यह बात चौपालो तक पहुच गई। आसोप के ठा विशनसिंह और आलणियावास ठा अजीतसिंह भी अपनी-अपनी सेनाओ सहित अउवा आ पहुचे। इनके अतिरिक्त लाम्बिया, बाटा, भीवालिया, राडावास तथा बाजावास के ठाकुर भी खुशालसिंह के समथक थे। रोजडला तथा मेवाड के सलूम्बर, रूपनगर लासाणी तथा आसीद के ठिकानो की फौजे भी अउवा पहुच गई। एक हजार सनिक तथा छ सौ घुडसवार ऐरनपुरा से आए ही थे। सब मिलाकर छ हजार के लगभग सनिक सख्या हो गई।

किलेदार अनाडसिंह के नेतृत्व मे आई हुई जोधपुर महाराजा की सेना के साथ ए जी जी का खास मर्जीदान ले हीथकोट भी था। आरम्भ मे छोटी-छोटी मुठभेडो के पश्चात बिथौरा नामक गाव के निकट बडी लडाई हुई। अउवा ठाकुर तथा ऐरनपुरा के क्रान्तिकारियो ने इतना भयकर युद्ध किया कि जोधपुर की सेना पस्त होने लगी। कुशलराज सिंघवी तथा मेहता विजयसिंह युद्ध क्षेत्र से भाग खडे हुए। कठिनाई से हिथकोट अपनी जान बचा सका। अनाडसिंह तथा उसके साथ दरबार की फौज के छीयत्तर सैनिक मारे गये। शेष फौज के पैर उखड गए तथा युद्ध क्षेत्र से भाग गई। दरबार की फौज का सामान खुशालसिंह तथा उसके सहयोगियो ने लूट लिया।

अनाडसिह की मृत्यु और अपनी सेना की पराजय के समाचार से महाराजा तखतसिंह बहुत दुखी हुए। सुबह तथा साय दो बार दुग मे प्रतिदिन बजने वाली नौपत को केवल एक बार बजवा कर महाराजा ने अपना दुख प्रकट किया। ए जी जी लारेंस तो क्रान्तिकारियो की सैनिक सफलता की सूचना से बावला हो उठा। उसने तुरन्त ब्यावर से सेना साथ लेकर आउवा की ओर प्रस्थान

कर दिया। जोधपुर से पालिटिकल एजेन्ट केप्टिन मेंक मेंसन भी ए जी जी की सहायतार्थ पहुचा। 18 सितम्बर, 1857 को पुन भयकर युद्ध छिडा। ए जी जी की सेना बुरी तरह पराजित हुई। अग्रेजी सरकार पर जोरदार कलक यह लगा कि मेंक मेंसन क्रांतिकारियो के हाथ पड गया। बेचारे मेंक मेंसन को मारकर उसकी लाश को आउवा गढ के मुख्य द्वार के सामने एक वृक्ष पर लटका दी। हताश ए जी जी को अजमेर लौटना पडा। बेचारे मेंक मेंसन के व्यथ ही जान गवाई। जनता के भय से महाराजा उसकी मृत्यु के शोक मे नौपत बजवाना भी बन्द न करा सके।

आउवा के आजादी के आगीवानो का सम्पर्क दिल्ली से था और मारवाड की जनता की सद्भावना उनके साथ थी। गत दो वर्षो से खुशालसिंह का सहयोगी सिमरथसिंह मारवाड-मेवाड के जमींदारो मे एकता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था। एकजुट होकर मारवाड-मेवाड से अग्रेजो का सफाया करने की ठान रखी थी।

10 अक्टूबर को जोधपुर लीजियन के फौजी और खुशालसिंह के कई सहयोगी ठाकुरो ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। दिल्ली की ओर प्रस्थान करने का कारण यह था कि यह लोग बहादुरशाह जफर का फरमान प्राप्त कर उसकी सैनिक सहायता से मारवाड तथा मेवाड को अग्रेजी आधिपत्य से मुक्त करवाना चाहते थे। दिल्ली की ओर कूच करने वाली इस क्रान्तिकारी सेना मे मरने मारने के लिए तत्पर लगभग चार हजार सैनिक थे। रेवाडी पर विजय के पश्चात दिल्ली मे अग्रेजो की विजय से खिन्न चित्त इस सेना की 16 नवम्बर को नारनोल मे ब्रिगेडियर गेराडं के नेतृत्व वाली एक विशाल अग्रेजी फौज से भिडन्त हुई। जोधपुर लीजियन की पराजय से मारवाड-मेवाड से अग्रेजी प्रभाव समाप्त करने की लालसा की इति श्री हो गई।

सब स्थानो की ओर से पूर्णतया आश्वस्त हो जाने पर जब जनवरी 1958 मे बम्बई से नई कुमक भी आ गई तब अग्रेजो ने पुन आउवा की तरफ मुह करने का साहस किया। कर्नल होम्स की कमान मे बम्बई की पलटन और 12वी नेटिव इन्फेन्ट्री ने आउवा की घेराबन्दी की। जोधपुर महाराजा की फौज भी इस ब्रिटिश सेना की सहायता कर रही थी। 20 जनवरी को घमासान युद्ध हुआ। चार दिन तक दोनों पक्षो की तोपें आग उगेलती रही। उस समय आउवा की रक्षा के लिए दुर्ग मे बहुत कम सैनिक ही थे। 23जन की रात्रि को आकाश बादलो से ढक गया। निरन्तर वर्षा होने लगी। कामदार तथा सहयोगियो के अधिक आग्रह करने पर आजादी का यह दीवाना खुशालसिंह गोला-बारी के बीच मे निकल कर, सैनिक सहायता की आशा से मेवाड पहुच गया। शेष योद्धा ने दुर्ग की रक्षार्थ जबरदस्त युद्ध किया किन्तु अग्रेजो की कई गुना विशाल सेना और जगी तोपखाना निर्णायक

मिद्ध हुए। 24 जनवरी को दुर्ग पर ब्रिटिश सेना का अधिकार हो गया। फिर तो अग्रजो ने वहा यातनाओ का ताडव ही कर दिया।

वाद मे अंग्रेजो ने खुशालसिंह पर मुकदमा चलाने का दिखावा भी किया किन्तु सजा देने का साहस न जुटा सकने पर अन्त मे बरी कर दिया। 25 जुलाई, 1864 को आजादी के लिये अलख जगाने वाले इस शूरमा का उदयपुर मे स्वर्गवास हुआ। युगो युगो के लिये इस स्वतन्त्रता सेनानी के कृतित्व की छाप राजस्थानी जन मानस मे अंकित रहेगी।

कोटा मे 1857 की क्रांति का महत्व अपेक्षाकृत इसलिए अधिक माना जाता है कि लगभग छ महिनो तक कोटा पर क्रांतिकारियो का अधिकार रहा। सारी जनता क्रांति समर्थक बन गई। मारकाट भी अधिक हुई। सितम्बर मे बादशाह जफर कैद हो गया और लाल किले पर अ ग्रेजी आधिपत्य स्थापित हो गया तब भी कोटा के क्रांतिकारी केवल अपने बल पर अ ग्रेजो से लोहा लेते रहे। 1838 ई मे कोटा महाराव के खर्च से निर्मित कोटा कटिंजट नामक ब्रिटिश सेना के देशी सिपाही मेरठ, नसीराबाद, नीमच इत्यादि मे क्रांति के समाचारो से व्याकुल हो गए। ऐसे मे 'पायगा पलटन' के रिसालदार मेहराबखा के हस्ताक्षरो वाली एक अपील फौजियो के पास पहुची। इसमे चरबी वाले कारतूसो तथा आटे मे मिली हुई हड्डियो के उल्लेख के पश्चात् देश से अ ग्रेज आधिपत्य को समाप्त करने मे सहयोगी बनने का निवेदन किया गया था। 15 अक्टूबर को प्रात फौज ने बगावत कर दी। दो तोपो तथा दो घोमलो (ऊ ट पर लादी जाने वाली छोटी तोप) सहित लगभग तीन हजार सैनिको ने मेहराबखा के नेतृत्व मे एजेन्सी हाऊस को घेर लिया। बगले मे आग लगाकर कुछ सैनिक लकडी की सीढी लगाकर ऊपर के कमरे मे पहुचे जहा कोटा का पालिटिकल एजेन्ट मेजर बर्टन और उसके दो युवा पुत्र छुपे हुए थे। क्रोधित सनिको ने तीनो के टुकडे-टुकडे कर दिए। एजेन्सी हाऊस पर इस हमले के समय दो अ ग्रेज डॉक्टर भी मौत के घाट उतार दिए गए। मेजर बर्टन का सिर काट कर समस्त कोटा शहर मे घुमाया गया। छ माह तक मेहराबखा और जयदयाल के नेतृत्व मे फौज ने इच्छानुसार शासन चलाया। अ ग्रेजो के अनेक पिट्ठुओ को तोपो के मु ह पर बाधकर उडा दिया गया।

अ ग्रेजो के विरुद्ध कार्यवाही के पश्चात् क्रांतिकारी असमजस मे पड गये। ग्वालियर मे सम्भलगढ के शासक गोविन्दराव विट्ठल को सहायता के लिए जो पत्र भेजा उसने वह पत्र अ ग्रेजो को सौप दिया। कोटा महाराव किले के भीतर दुबके हुए थे। इस कठिन परिस्थिति मे कौन सहायता करे ? मार्च 1858 मे बम्बई से आई हुई विशाल ब्रिटिश सेना के साथ कर्नल रॉबर्ट कोटा पहुचा। महाराव की स्वामी भक्त सेना, करौली के शासक की फौज तथा गोटेपुर शासक की फौज भी इस

ब्रिटिश सेना के साथ मिल गई। जगह-जगह घमासान युद्ध हुए। अनेक लोग मारे गए। कई दिनो तक सामना करने के पश्चात् क्रांतिकारी सेना पराजित हुई। नेताओ पर अंग्रेजो ने जबरदस्त अत्याचार किए। मेहरावखा और जयदयाल पर मुकदमो के दिखावे के पश्चात भारत के गवर्नर जनरल की इच्छानुसार उन्हे उसी एजेन्सी हाऊस मे फासी पर लटकाया गया जहा उन्होने मेजर बर्टन और उसके पुत्रो को मारा था। एक बार क्राति पर नियन्त्रण हो जाने पर तो अंग्रेजो ने अत्याचारो की सारी सीमाए पार करली।

नवाब के मामू आलमखा के नेतृत्व मे टोंक की फौज ने भी बगावत करदी। नवाब की स्वामी-भक्त सेना से लडता हुआ आलमखा तो मारा गया किन्तु टोंक के लगभग छ सौ क्रातिकारी सैनिक लडते-भिडते बहादुरशाह जफर की सहायतार्थ दिल्ली पहुचे। भरतपुर, धौलपुर, अलवर, मेवाड तथा जयपुर सभी स्थानो पर 1857 मे कुछ न कुछ क्रातिकारी घटनाए अवश्य ही हुई। उस समय अंग्रेजो के प्रबल विरोधी के रूप मे राजस्थान की प्रसिद्धि समस्त भारत मे फैल गई। तात्या टोपे जैसा अंग्रेजो का शत्रु राजस्थान को अपने लिए उपयुक्त शरण-स्थल मानकर अलीपुर मे चार्ल्स नेपियर से पराजित होने के पश्चात् राजस्थान आ पहुचा।

इस प्रकार 1857 की क्राति के समय राजस्थान के कोने-कोने मे ज्वालाऐ धधकने लगी। जैसे,तैसे अंग्रेजो ने इस आग को बुझा तो दिया किन्तु फिर भी इससे वह धुनी चेतन हो गई जिसकी राख मल कर अर्जुनलाल सेठी, गोपालसिंह खरवा, विजयसिंह पथिक और जोरावरसिंह बारहठ जैसे क्रातिकारियो ने पुन आजादी का अलख जगाया। असफल होकर भी प्रथम स्वाधीनता सग्राम आगे आने वाले आजादी के मतवालो के लिए एक प्रेरणा पुंज बन गया।

प्रथम स्वाधीनता सग्राम के पश्चात् राजस्थान मे स्वतन्त्रता सग्राम के इतिहास को तीन अवस्थाओ मे विभाजित किया जा सकता है-राजनतिक चेतना और क्रांतिकारी हलचल 1885 ई से 1924, जन आन्दोलन तथा राजनतिक सस्थाओ की स्थापना 1924 से 1938 और प्रजामण्डल व स्वायत शासन की माग 1938 से 1949 तक।

राजस्थान मे राजा, ब्रिटिश शासन तथा जमीदार तीनो की धौंस थी और रेल, सडक डाक, तार, छापाखाने इत्यादि का अभाव था। अत सीधे ब्रिटिश शासन के अधीन क्षेत्रो की तुलना मे राजस्थान मे स्वतन्त्रता आन्दोलनो का श्री गणेश अधिक देरी से हुआ। स्वदेशी आन्दोलन को आरम्भ करने का श्रेय स्वामी दयानन्द सरस्वती को प्राप्त है। स्वामीजी की मान्यता थी कि एक अच्छे से अच्छा विदेशी शासन भी अव्यवस्थित देशी शासन की तुलना मे कही अधिक हानिकारक होता है। स्वामीजी के विचारो से प्रेरणा प्राप्त कर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने दामोदर राठी स विचार विमर्श कर ब्यावर मे कृष्णा मिल्स' की स्थापना की। 'कृष्णा मिल्स'

का खजाना क्रान्तिकारी कार्यों के लिये सदैव खुला रहता था। 'कृष्णा मिल्स' का प्रागण आजादी के आगीवानो की गतिविधियो का प्रमुख केन्द्र बन गया।

1885 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना हुई प्रतिवर्ष इसके सम्मेलन होने लगे। गवनमेट कालेज के कुछ छात्रो ने अजमेर मे काग्रेस समिति का गठग किया काग्रेस के चतुर्थ अधिवेशन म भाग लेने हेतु सवप्रथम अजमेर के गोपीनाथ माथुर और किशनलाल इलाहाबाद पहुचे। शनै शनै अजमेर मेरवाडा तथा अन्य राज्यो मे भी काग्रेस का प्रभाव बढने लगा। इससे जन जागृति और राजनैतिक चेतना जाग्रत हुई।

स्वामीदयानन्द के ही एक शिष्य गोविन्द गुरू ने डूगरपुर, बासवाडा, दक्षिणी मेवाड, सिरोही और ईडर के पहाडी क्षेत्रो मे निवास करने वाले भीलो के मध्य आजादी का अलख जगाया। पूरे पच्चीस वर्ष (1883-1908) तक गोविन्द गुरू ने अपनी 'सप सभा' के माध्यम से भीलो मे जागृति के निरन्तर प्रयास किये।

राजस्थान में राष्ट्रीय अखबार पढने वालो की सख्या तेजी से बढने लगी। अजमेर के 'राजस्थान टाइम्स' और उसके हिन्दी सस्करण के साथ ही सिमरथदान चारण के सम्पादन मे 1889 मे 'राजस्थान समाचार' तथा 'देश हितैषी' 'परोपकारक' 'जगहितकारक' तथा 'राजपूताना गजट' जसे अखबारो के कारण नवीन दृष्टिकोण विकसित होने लगा। 'कमयोगिन' अमृत बाजार पत्रिका' 'काल केसरी' तथा 'जमीदार जैसे राष्ट्रवादी समाचार पत्रो ने शोषण व अत्याचारो का भडा फोड कर लोगो मे नव चेतना का सचार किया।

1904 05 के रूस जापान युद्ध मे एशिया के जापानी बौने ने यूरोप के रूसी दत्य को बुरी तरह पराजित किया। जापान की इस विजय ने भारतवासियो मे एक नये उत्साह और स्फूर्ति का संचार कर दिया। 1905 मे बगाल के विभाजन और देश के अ य प्रा तो के घटनाक्रम ने भी राजस्थानियो को प्रभावित किया।

क्रान्तिकारी हलचल के समय राजस्थान मे भिन्न भिन्न स्थानो पर तीन अलग अलग क्रान्तिकारी दल सक्रिय थे। प्रथम दल अर्जुनलाल सेठी के नेतृत्व मे जयपुर, दूसरे दल के केसरीसिंह बारहठ कोटा मे और तीसरे दल के गोपालसिंह खरवा व अर्जुन लाल सेठी ने अजमेर को अपनी गतिविधियो का केन्द्र बनाया। अर्जुनलाल सेठी राम बिहारी बोस के निकट सहयोगी थे। सेठीजी ने जयपुर मे वर्द्धमान विद्यालय की स्थापना की। इस विद्यालय मे देश के कोने कोने से नवयुवक क्रान्ति का पाठ पढने के लिये पहुचते। वर्द्धमान विद्यालय के विष्णुदत्त ने अपने चार शिष्यो-मोतीचद, माणकचद, जयचद और जोरावरसिंह—सहित क्रान्तिकारी गतिविधियो हेतु धन एकत्रित करने के प्रयोजन से आरा (पटना) जिले

मे नीमेज गाव के उपासरे मे 20 मार्च 1913 को डाका डाला। उपासरे का महन्त मारा गया। इस सम्बन्ध मे मोतीचद पकडा गया और उसे फासी हुई। इस घटना से पूर्व 23 दिसबर 1912 को दिल्ली मे वायसराय लार्ड हार्डिंग पर बम्ब भी जोरावरसिंह ने ही फेका था। उस दिन वायसराय के भाग्य अच्छे थे कि बम्ब की चपेट मे आने के पश्चात भी वह बच गया। उपासरे पर डाके, महन्त की हत्या और वायसराय की हत्या के प्रयत्न के अपराध मे जोरावरसिंह को फासी की सजा दी गई किन्तु वह पकडा नही जा सका। सत्ताईस वर्ष तक छुपते फिरने के पश्चात 1939 मे उसका स्वर्गवास हुआ। जोरावरसिंह जसे आजादी के दीवानो युगा युगो तक राजस्थानियो के प्रेरणा पु ज बने रहेंगे।

कोटा के प्रमुख क्रान्तिकारी केसरीसिंह बारहठ ने महाराणा फतहसिंह को वायसराय कर्जन के समय 1903 मे आयोजित दिल्ली दरबार मे सम्मिलित होने से रोकने के लिये 'चेतावनी के चूगटिये' लिख कर भेजे। राजस्थान बगाल और पजाब के क्रान्तिकारियो से केसरीसिंह का सम्पर्क था। उस समय कई क्रान्तिकारियो को जेलो मे यातनाए दी जा रही थी व अनेकों को फासी पर लटका दिया गया। केसरीसिंह इन क्रान्तिकारियो के परिवारो की सहायता करने के लिये धन एकत्रित करना चाहता था इस उद्देश्य से कोटा के महन्त की हत्या की गई। केसरीसिंह, लाहेरी, रामकरण व हीरालाल जालोरी को इस सम्बन्ध मे बदी बनाया गया। हीरालाल को सात वर्ष तथा शेष तीनो को बीस-बीस वर्ष की सजा हुई। कुछ समय पश्चात केसरीसिंह को बिहार को हजारी बाग जेल भेज दिया दिया। केसरीसिंह का पूरा परिवार ही क्रान्तिकारी था। भाई जोरावरसिंह ने आरा डकैती व वायसराय पर बम फेकने का कार्य किया और बेटा प्रतापसिंह, बम बनाते हुए पकडा जाकर बरेली जेल भेजा गया। जेल मे इतनी अधिक यातनाए दी गई की प्रतापसिंह की जेल मे ही मृत्यु हो गई।

रासबिहारी बोस व सचिन्द्रनाथ सान्याल से प्रेरणा प्राप्त कर खरवा (अजमेर) राव गोपालसिंह व बारहठ केसरीसिंह ने राजस्थान मे 'वीर भारत सभा' नामक एक गुप्त सस्था की स्थापना की। 1909-10 मे रासबिहारी बोस ने भूपसिंह नामक एक युवक को अजमेर की तरफ भेजा। बुलदशहर के मासागढ गाव के गुजर युवक भूपसिंह ने विजयसिंह पथिक के नाम राजस्थान के आन्दोलनो का नेतृत्व किया। भूपसिंह को अन्य स्थानो के क्रान्तिकारियो के लिये शस्त्र एकत्रित करने और राजस्थान की गतिविधियों को तेजी पकडने के उद्देश्य से यहा भेजा गया था। वह खरवा राव गोपालसिंह से मिला व दोनो ने सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई। दिसम्बर 1914 मे भारत भर के क्रान्तिकारी बनारस मे एकत्रित हुए तथा पजाब से क्रान्ति के सूत्रपात का निश्चय किया। राजस्थान मे गोपालसिंह खरवा व दामोदरदास राठी को ब्यावर, भूपसिंह को अजमेर और नसीराबाद पर कब्जा करने

का आदेश दिया था। 21 फरवरी को गोपालसिंह व भूपसिंह दो हजार सशस्त्र सैनिको सहित खरवा रेलवे स्टेशन के निकट जा पहुचे। स्टेशन के निकट छुप कर पूर्व निश्चित इशारे की प्रतीक्षा करने लगे। सकेत यह निश्चित किया गया था कि दिल्ली-अहमदाबाद रेलगाडी के स्टेशन से रवाना होने के पश्चात एक बम का धमाका होगा। गाडी निकल गई किन्तु बम का धमाका नही हुआ क्योकि पजाब मे 19 फरवरी को ही क्रान्ति की योजना का पता चल गया था। अग्रेज सरकार ने क्राति की कलई खुलने पर उसे विफल करने के आवश्यक कदम उठा लिये। पजाब के कई क्रान्तिकारी पकडे गये और अन्य शस्त्रागारो पर हमले के समय पहले ही घात लगाकर बैठे हुए ब्रिटिश सैनिको की गोली के निशान बने। क्रान्ति के भडाफोड होने की सूचना गोपालसिंह-भूपसिंह को मिलते ही उन्होने अपने सैनिको को इधर उधर भेज दिया। इस घटना के कुछ दिन पश्चात ही अजमेर पुलिस ने गोपालसिंह-भूपसिंह को बन्दी बनाकर मारवाड-मेवाड की सीमा पर स्थित टाडगढ दुर्ग मे कैद कर दिया। किसी प्रकार भूपसिंह टाडगढ से निकल भागा और मेवाड के पहाडो मे जा पहुचा। वह काफी समय तक पहाडो मे भटकता फिरा। इस समय उसने डाढी बढा कर अपना नाम विजयसिंह पथिक रख लिया। गोपालसिंह भी टाडगढ से तो निकल भागा किन्तु कुछ समय पश्चात किशनगढ राज्य मे पुन पकडा जा कर शाहजहापुर जेल मे भेज दिया गया।

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के साथ ही महात्मा गांधी के नेतृत्व मे भारतीय राजनीति ने करवट बदली। क्राति का स्थान सत्याग्रह ने ले लिया। इस समय राजस्थान मे भी एक के बाद एक सत्याग्रह होने लगे। मेवाड के बिजोलिया ठिकाने के किसानो ने साधू सीताराम के नेतृत्व मे आन्दोलन किया। जमीदार के अत्याचारो के कारण आन्दोलन शिथिल होने लगा तब विजयसिंह पथिक बिजोलिया जा पहुचा और किसानो को पुन सक्रिय करने के प्रयत्न मे जुट गया। इस समय नवयुवक माणिक्यलाल वर्मा भी ठिकाने की नोकरी को ठोकर मारकर साधु सीताराम दास और विजयसिंह पथिक के माग की ओर चल पडा। बिजोलिया आन्दोलन के समाचार गणेश शकर विद्यार्थी के 'प्रताप', प्रयाग के 'अभ्युदय', कलकत्ता के 'भारत-मित्र' और पूना से प्रकाशित होने वाले लोकमान्य तिलक के 'मराठा' जैसे राष्ट्रीय अखबारो में धूम मचाने लगे। महात्मा गाधी, तिलक, मालवीय और जमनालाल जसे महत्वपूण नेताओ का ध्यान बिजोलिया आन्दोलन की ओर आकर्षित होने लगा। इस आदोलन की गूज भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के वार्षिक सम्मेलन मे भी सुनाई दी। समस्त भारत मे किसानो का इस प्रकार का यह प्रथम आदोलन था।

बिजोलिया आन्दोलन ने किसानो मे आत्म विश्वास फूक दिया। मेवाड के अ य कई ठिकानो मे भी कृषक लाग, बाग और बेंठ-बेगार का विरोध करने लगे। बेगू ठिकाने मे जोरदार आन्दोलन हुआ। 13 जुलाई 1923 को राज्य की फौज ने

बेगू ठिकाने के गोविन्दपुरा नामक गाव मे घेरा डालकर आग लगा दी। भागते हुए किसानो पर बन्दूको से गोलिया दागी गई। लगभग दो सौ किसान मारे गए और अनेक घायल हुए। बल प्रयोग और दमनकारी नीति से बेगू का किसान आन्दोलन कुचल दिया गया किन्तु लोगो के मन मे प्रज्वलित असन्तोष की अग्नि शात नही हुई। बिजोलिया और बेगू के किसानो के बलिदान रग लाए और उनसे प्रेरणा प्राप्त कर बून्दी के किसानो ने भी लाग, बाग वेठ बेगार देने से स्पष्ट इनकार कर दिया। राज्य ने दमन चक्र चलाया और आन्दोलन के नेता नैनूराम शर्मा को बन्दी बनाकर चार वर्ष के कारावास की सजा दे दी। दमनकारी नीति से आन्दोलन को दबाया नही जा सका तब 1923 मे गोलिया बरसी जिसमे नानकराम भील की मृत्यु हो गई। 'राजस्थान सेवा सघ' ने हस्तक्षेप किया तब करसो की आधी माग स्वीकार हुई तब आन्दोलन धीमा पडा। 1920-21 मे स्थापित 'राजस्थान सेवा सघ के विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी, माणिक्य लाल वर्मा, हरी भाई किंकर शोभालाल गुप्ता, लादूराम जोशी, प्रेमचद, भील, माडसिंह, नेनूराम शमा इत्यादि के प्रयत्न ने सेवा सघ की अच्छी साख जम गई, और रजवाडो के शासक उससे चमकने लगे।

1921 मे अहमदाबाद मे काग्रेस का सम्मेलन हुआ। इसमे भाग लेने वाले प्रतिनिधियो ने वापस लौटने पर अपने अपने क्षेत्रो मे सगठना कीस्थापना की। जोधपुर मे 1921 मे जयनारायण व्यास, आनन्दराज सुराणा इत्यादि ने 'मारवाड हितकारीणी सभा' की स्थापना की। सभा ने जानवरो की निकासी पर रोक लगाने के लिये आन्दोलन आरम्भ किया और माग स्वीकार हो जाने पर सुख देव प्रसाद को पदच्युत करने की माग कर दी। इस पर सरकार ने कठोर नीति अपनाई और सभा के अनेक सदस्यो को मारवाड के बाहर निकाल दिया। 1927 मे जयनारायण व्यास ने व्यावर से 'तरुण राजस्थान' अखबार निकाला और उसमे राज्य की आपाधापी और जागीरी जुल्मो की पोल खोली। 'अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद' के 17 दिसम्बर 1927 के बम्बई अधिवेशन मे भाग लेकर वापस लौटने पर जयनारायण व्यास ने 'मारवाड प्रजा परिषद' की स्थापना की किन्तु राज्य ने इसका अधिवेशन नही होने दिया। जयनारायण व्यास आनन्दराज सुराणा, भवरलाल सर्राफ आदि को पकड कर नागोर मे मुकदमे चलाए और सजा सुनाई। कारावास से छूटने पर जयनारायण व्यास ने व्यावर मे चादकरण शारदा की अध्यक्षता मे 'मारवाड प्रजा परिषद' का अधिवेशन किया जिसम कस्तूरबा गाधी मुख्य अतिथि थी। 1931 से 1939 तक मारवाड यूथ लीग, मारवाड प्रजा मडल, नागरिक रक्षा समिति तथा बाल भारत सभा के द्वारा अचलेश्वर प्रसाद शर्मा, छगनराज चौपानीवाला मानमल जन रणछोडदास गट्टानी भवरलाल सर्राफ, पुरुषोत्तमप्रसाद नैयर इत्यादि आजादी के आगीवानो ने मारवाड मे जन आन्दोलन आरम्भ किये। 1938 के हरिपुर अधिवेशन म भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस ने देशी राज्यो को भी अपने काय क्षेत्र मे सम्मिलित कर लिया। इससे भयभित होकर देशी राज्यो की सरकारो ने अपने दृष्टिकोण मे थोडी नरमी अपनानी आरम्भ की। 1938 मे 'लोक परिषद' की स्थापना हो गई जो महाराजा की छत्र छाया मे स्वायात शासन की माग करने लगी। जयनारायण व्यास के मारवाड मे प्रवेश करने पर प्रतिब ध लगा हुआ था वह हटा लिया। लोक परिषद की शाखाए मारवाड के परगनो मे भी स्थापित हुई और स्वायत शासन की माग निरन्तर जोर पकडने लगी। अन्त मे क्रोधित राज्य सरकार ने 8 मार्च 1940 को परिषद को अवैध घोषित कर जयनारायण व्यास, अचलेश्वर प्रसाद शर्मा, छगनराज चौपासनीवाला, अभयमल जैन, गणेशलाल आदि को पकड कर दूर दूर स्थित किलो मे कैद कर दिया। इसके विरोध मे 2 अप्रेल को मथुरादास माथुर के नेतृत्व मे विशाल जलूस निकाला गया। इस जलूस पर पुलिस ने डडे बरसाये। मथुरादास माथुर व बाद मे रणछोडदास गट्टानी कैद हुए। लोगो मे उत्साह निरन्तर बढने लगा जिसमे बाध्य होकर 26 जून 1940 को सरकार ने परिषद से समझौता किया और सभी नेता कारावास से छोड दिये गये। रोड चडावल और गूदोज मे परिषद के कार्यकर्ताओ पर अत्याचार हुए। अन्त मे 26 मार्च 1942 को परिषद का डिक्टेटर नियुक्त होने पर जयनारायण व्यास ने आन्दोलन आरम्भ किया। व्यास की गिरफ्तारी के पश्चात मथुरादास माथुर, चैनदास, राधाकृष्ण तात आदि डिक्टेटर बने और आन्दोलन निरन्तर तेज होने लगा। अनेक कार्यकर्ताओ को जेल मे डाला गया। जेल मे भूख हडताल हुई। बालमुकुन्द बिस्सा जेल के अत्याचारो और भूख से बीमार होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस समय देश मे महात्मा गाँधी ने 'भारत छोडो' आन्दोलन चलाया। मारवाड का आन्दोलन भी गाधीजी के 'भारत छोडो' आन्दोलन के साथ मिल कर उसी का अग बन गया। 17 अक्टूबर 1942 को स्टेडियम सिनेमा और 14 अप्रेल 1943 को सिवान्ची गेट के बाहर बम विस्फोट हुए। कई गतिविधियो के बाद 27 मई 1944 को समझौता हुआ। सभी राजनैतिक कैदी छोड दिये गये। 13 मार्च 1947 को डीडवाना के पास डाबडा गाव मे 'लोक परिषद' और 'किसान सभा' का सयुक्त अधिवेशन निश्चित हुआ। वहा अनेक किसान एकत्रित हुए। 'लोक परिषद के नेताओ और किसानो के वहा पहुचने पर जागीरदार के लोगो ने उन पर हमला किया। सरकारी आकडो के अनुसार छ और 'लोक परिषद' के अनुसार बत्तीस लोग मारे गये। 'लोक परिषद' के मथुरादास माथुर, द्वारकाप्रसाद पुरोहित, नृसिंह कच्छवाहा, बशीधर पुरोहित, राधाकृष्ण बोहरा तात, किशनलाल शाह इत्यादि घायल हुए। इस जुल्म की सब तरफ आलोचना हुई। इस बीच देश की राजनीति मे अनेक घटनाऐ घटी और 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हो गया। केन्द्र के दबाव पर जयनारायण व्यास के नेतृत्व मे मिली जुली सरकार बनी जो थोडे बहुत परिवर्तन के साथ 'जोधपुर राज्य के राजस्थान मे विलय तक चलती रही।

बीकानेर महाराजा गगासिह के समय दमन और देश निकालो जैसे मध्यकालीन हथकण्डो का जोर था। सभाश्रो, भाषणो और समाचार पत्रो पर प्रतिबन्द लगा दिए गए। थोडी सी राजनैतिक हलचल होते ही दमनचक्र आरम्भ हो जाता। महात्मा गाधी की जय बोलने और खादी भण्डार खोलने तक पर प्रतिबन्द लगा दिया गया। शिक्षा और सामाजिक सुधार के उद्देश्य से स्वामी गोपालदास ने चुरु मे 1912 मे 'सर्वहितकरणी सभा' की स्थापना की। 1920 मे बीकानेर म 'सत्-विद्याप्रचारिणी सस्था' की स्थापना हुई। राज्य के गुप्तचर इन सस्थाओ पर भी नजर रखते थे। सत्यनारायण सराफ, खूबराम सराफ और उनके सहयोगियो के प्रयत्नो से दिल्ली के 'प्रिसली इण्डिया' रियासत' और अजमेर के 'त्याग भूमि' जसे सामाचार पत्रो मे शासन की दमन और अत्याचारी नीति की आलोचना हुई। 1931 मे लन्दन मे गोलमेज सम्मेलन के समय पर्चे वितरित किये गये जिनमे महाराजा की दमनकारी नीति और राज्याधिकारियो के अत्याचारो का विवरण था। इस सम्मेलन मे महाराजा गगासिह स्वय उपस्थित थे। लदन से न्ट्र होकर बीकानेर लौटने पर महाराजा ने दमनचक्र चलाया। सत्यनारायण, खूबराम, स्वामी गोपालदास, चदनमल, बद्रीप्रसाद इत्यादि को गिरफ्तार किया गया। उन पर मुकदमो के दिखावे के पश्चात कठोर करावास की सजाऐ सुनाई गई। इस दमनकारी नीति के कारण बीकानेर मे अगले कई वर्षो तक राजनीतिक हलचल मे शिथिलता आ गई। प्रजामंडल का आन्दोलन भी बीकानेर मे, काफी देरी से 1940 मे आरम्भ हुआ। अन्त मे प्रजामडल ने 29 जुलाई 1942 को स्वायत्त शासन हेतु आन्दोलन की तिथि घोषित की। घोषित तिथि से पूव ही आन्दोलन को समाप्त करने के उद्देश्य से सरकार ने प्रजामडल के अध्यक्ष रघुवर दयाल गोयल को बीकानेर राज्य की सीमा के बाहर निकालने का आदेश दे दिया। 26 अगस्त 1944 को रघुवर दयाल ने निषेधाज्ञा का उल्लघन कर बीकानेर मे प्रवेश कर लिया। रघुवरदयाल और उनके दो सहयोगी गगादास कौशिक और दाऊलाल गिरफ्तार किये गये। लोगो ने सरकार की दमनकारी नीति के विरुद्ध 'विरोध दिवस' मनाया। 'प्रजा परिषद' के नेतृत्व मे स्वायत शासन की माग का आन्दोलन तेजी पकडने लगा। 'नेताजी दिवस' तथा 'आजादी दिवस' पूरे उत्साह से मनाये गये। सरकार ने पुन दमनकारी नीति का आश्रय लिया। 1946 मे प्रेस अधिनियम लागू किया। जमीदारो ने भी अनेक अत्याचार किये। रतनगढ तहसील के गाव कागद तथा दूधवाखारा मे कृषको पर व्यथ ही अत्याचार किये गये। राजगढ, रायसीनगर व दूधवाखारा मे बड पमाने पर किसान आदोलन हुए। रायसीनगर मे किसान नेता बीरबलसिह पुलिस की गोलियो का निशाना बन कर अमर हुआ। बीकानेर मे मघाराम, केदारनाथ, रघुवरदयाल, हनुमानसिह और कुम्भाराम आय इत्यादि ने किसानो का नेतृत्व किया। अन्तत 31 अगस्त 1946 को महाराजा सादूलसिह ने घोषणा की कि जल्दी ही

उत्तरदायी शासन की स्थापना कर दी जायेगी। 18 मार्च 1948 को साझा सरकार बनी। जितने सदस्य 'प्रजा परिषद' के लिये गये ठीक उतने ही महाराजा की ओर से मनोनित किये गये। कुछ समय तक महत्वपूर्ण विषयो पर दोनो पक्षो मे खींच तान होती रही। 30 मार्च 1949 को बीकानेर राज्य का राजस्थान मे विलय हो गया।

गोविन्द गुरु के पश्चात् मोतीलाल तेजावत ने मेवाड के भीलो मे जागृति के प्रयत्न किये। 1932 से 1938 के मध्य नागरिक अधिकारो की प्राप्ति के लिये उपक्रम किये गये। 1938 मे माणिक्यलाल वर्मा और उनके सहयोगियो ने 'प्रजा मण्डल' की स्थापना कर 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' आरम्भ किया। डंडे बरसे और पकड धकड हुई। 26 जनवरी 1940 को उत्साहपूर्वक 'आजादी दिवस' मनाया गया। 'प्रजा मण्डल' के 1941 के अधिवेशन मे आचार्य कृपलानी मुख्य अतिथि बने। इस अवसर पर खादी की प्रदर्शनी का उद्घाटन श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित ने किया। यह अधिवेशन बहुत सफल रहा जिसमे कार्यकर्त्ताओ के उत्साह मे अभूतपूर्व वृद्धि हुई। 1942 मे 'प्रजा मंडल' ने महाराणा से अंग्रेजो से संबंध विच्छेद कर जिम्मेदार हुकमत स्थापित करने की मांग की। माणिक्यलाल वर्मा, मोहनलाल सुखाडिया और बलवंतसिंह मेहता सहित पन्द्रह लोगो को गिरफ्तार किया गया। आन्दोलन का प्रभाव नाथद्वारा, भीलवाडा, चित्तौड, छोटी सादडी और अनेक अन्य मेवाडी क्षेत्रो मे भी पहुंच गया। आन्दोलन का स्वरुप निरन्तर व्यापक होने लगा। अन्त मे 1944 मे राजनैतिक बन्दियो को छोडा गया। 1944 मे माणिक्यलाल वर्मा की अध्यक्षता मे 'प्रजा मंडल' की बैठक हुई जिसमे निर्णय लिया गया कि नगर परिषद् और व्यवस्थापिका का गठन शीघ्र किया जाए। 1945 मे 'प्रजा मंडल' पर लगा हुआ प्रतिबन्ध हटा लिया। 1946 मे उदयपुर मे पंडित जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व मे 'अखिल भारतीय देशी राज्य परिषद्' का अधिवेशन हुआ। इससे उत्तरदायी शासन की मांग को अधिक बल मिला व स्थानीय कार्यकर्त्ताओ मे नवीन प्रेरणा का संचार हुआ। मार्च 1947 मे उदयपुर के प्राइम मिनिस्टर राघवाचार्य ने शासन में थोडे बहुत सुधार करने की घोषणा की किन्तु यह केवल लोगो को भ्रम मे डालने का प्रयास ही था। जो कुछ दिखावटी सुधार किये गये उनसे महाराणा के निरकुंश शासन के स्वरुप मे कुछ भी परिवर्तन नही हुआ। 'प्रजा मंडल ने इन सुधारो को अस्वीकार कर इनका विरोध किया। 1947 मे देश स्वतंत्र हुआ। इसके पश्चात राजस्थान के राजवंशो का संघ बना जिसमे सम्मिलित होने पर उदयपुर को इस संघ की राजधानी बनाया गया। माणिक्य लाल वर्मा के नेतृत्व मे इस संघ का मंत्री मंडल बना। ग्यारह माह पश्चात इस संघ का राजस्थान मे विलयीकरण हो गया।

जैसलमेर रेगिस्तान के मध्य स्थित एवं पिछडी हुई रियासत। यहां पर

सर्वप्रथम रघुनार्थसिंह मेहता ने जसलमेर रावल की निरकुशता के विरुद्ध आवाज उठाई। रावल को यह सहन नहीं हुआ और रघुनार्थसिंह को गिरफ्तार कर लिया। जीवनलाल कोठारी ने जन जागृति का प्रयास किया तो वह भी पकड लिया गया। सागरमल गोपा और नारायणदास भाटी ने भी निरकुशलता के विरुद्ध आवाज उठाई। सागरमल गोपा को जसलमेर से बाहर निकाल दिया गया। नागपुर प्रवास के समय उसने समाचार पत्रो म जैसलमेर शासक की निरकुशता तथा अत्याचारो का पर्दाफाश किया। 1939 मे शिवशकर ने जैसलमेर मे 'प्रजा परिषद्' की स्थापना की किन्तु उसे भी जैसलमेर छोडना पडा। मार्च 1951 मे सागरमल गोपा के पिता का स्वर्गवास हो गया। सागरमल गोपा को जोधपुर स्थित रेजीडेण्ट ने आश्वासन दिया था कि उसके विरुद्ध कोई शिकायत नही है तथा वह नि सकोच अपने निवास स्थान जैसलमेर जा सकता है। जैसलमेर जाकर जब लगभग दो माह पश्चात वह वापस लौट रहा था तब रवाना होने से पूर्व अचानक ही गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार को भय था कि बाहर जाने पर फिर पहले की तरह ही विरोध प्रचार मे लग जाएगा। जेल मे ही उस पर मुकदमा चलाया गया। रियासत के विरुद्ध आ दोलन के अपराध का दोषी मानकर 10 जून 1942 को उसे राजद्रोह की धारा के अ तर्गत 6 वष के कठोर कारावास और जुर्माने की सजा सुना दी गई। उसने अपनी डायरी मे लिखा कि उसे जेल मे प्रतिदिन पीटा जाता था और उसकी नाक व गुदा मे मिर्च डाली जाती थी। उसने गुप्त रुप से जयनारायण व्यास तथा जवाहरलाल नेहरु को पत्र लिखे और उन्होने रेजीडेन्ट से जाच करने का अनुरोध किया। रेजीडेन्ट ने जसलमेर जाने का कायक्रम बनाया तब यकायक गोपा पर मिट्टी का तेल डालकर उसे जला दिया गया। लगभग बीस घटे तक तडफने के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई।

5 अप्रेल 1931 को जयपुर शहर मे 'मोतीलाल दिवस' मनाया गया। इससे क्षुब्ध होकर जयपुर सरकार ने गुलाबचद चौधरी, कुदनलाल और किशोरसिंह को बन्दी बनाकर कठोर कारावास की सजाऐ ठोक दी। अगले छ सात वष तक राजनैतिक गतिविधिया शिथिल पड गई। 1937 मे उत्तरदायी शासन के उद्देश्य से जयपुर 'प्रजा मडल' की स्थापना की गई। 1938 मे जमनालाल बजाज की अध्यक्षता मे इसका अधिवेशन हुआ। उस समय जमनालाल बजाज के जयपुर मे प्रवेश पर प्रतिबध लगा हुआ था। इस प्रतिबध की अवहेलना कर वे अधिवेशन मे भाग लेने हेतु पहुचे थे इसलिये पकड लिये गये। हीरालाल शास्त्री, चिरजीलाल अग्रवाल, कपूरचद पाटनी तथा हरिशचद्र शर्मा ने भी सजाए भुगती। सत्याग्रह बहुत तेजी पकड रहा था किन्तु गाधीजी ने सत्यग्रह समाप्त करने की मत्रणा दे दी। समझौता होकर 'प्रजा मडल' को मान्यता मिल गई। नेतागण जेल से रिहा कर दिये गये। 'प्रजा मडल' की जडें धीरे धीरे जमने लगी। 1940 मे पुलिस ने 'प्रजा मडल' के कार्यालय पर धावा बोलकर कागजात जब्त कर लिये। जयपुर मे 'प्रगति

शोन 'प्रजा मडल' और 'आजाद मोर्चा' नाम से नये दल भी बने तथा राज्य की निरकुशता का विरोध हुआ। 1945 मे जयपुर दरबार ने कुछ सुधारो की घोषणा कर उत्तरदायी शासन की दिशा मे कदम उठाया। आरम्भ मे देवीशकर तिवारी और बाद मे हीरालाल शास्त्री के नेतृत्व मे लोकप्रिय मत्री मडल बने। राजस्थान मे विलय तक लोकप्रिय मत्री मडल निरन्तर सक्रिय रहे।

1918 मे कोटा मे स्थापित 'प्रजा प्रतिनिधि सभा' ने विदेशी माल का बहिष्कार कर देशी वस्तुओं, खादी के वस्त्रो और टोपी का आह्वान किया। 1926 मे कोटा मे 'हाडोती प्रजा मडल' का निर्माण हुआ। बाद मे इसका नाम 'कोटा राज्य प्रजा मडल' रख दिया गया। 1939 मे अभिन्नहरि के नेतृत्व मे उत्तरदायी शासन के लिये आन्दोलन हुआ। 1942 मे देश मे 'भारत छोडो' आन्दोलन के समय कोटा मे उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिये हडतालें हुई, जलूस निकाले गये। पुलिस ने दमन चक्र चलाया। अभिन्नहरि और उनके साथी गिरफ्तार कर लिये गये। पुलिस ने लोगो पर डडे बरसाये। अन्त मे लोगो का आक्रोश भडका उत्तेजित भीड ने कोटा नगर के दरवाजो व कोतवाली पर अधिकार कर लिया। सरकारी भवन पर तिरगा झडा फहरा दिया। पुलिस को बैरेको मे बन्द कर दिया। जनता ने तीन दिन तक शासन को अपने हाथ मे ले लिया। बाद मे महाराव ने आश्वासन दिया कि जनता का दमन नही किया जाएगा तब शासन वापस सौपा। 1945 में भी कोटा के कार्यकर्त्ताओ को शाति भग करने सम्बन्धी काले कानून का शिकार होना पडा। राजस्थान मे विलय तक कोटा मे राजनैतिक गतिविधिया निरन्तर होती रही। कोटा मे राजनैतिक जागृति का श्रेय नयनूराम शर्मा, अभिन्नहरि, इन्द्रदत्त स्वाधीन, नाथूलाल जैन, राजेन्द्रकुमार, विमलकुमार, कजोलिया, तनसुखलाल मित्तल आदि को है।

ऐश्वयपूर्वक जीवन बीताना अलवर के महाराजा की पहली पसन्द। स्पष्ट है महाराजा के अति खर्चीले स्वभाव का भुगतान तो राज्य की प्रजा को ही करना था। किसानो पर नये से नये कर लगाये जाते। अलवर के बनसूर तथा गाजी का थाना के किसानो ने भूमि बन्दोबस्त के नाम पर लगने वाले करो का विरोध किया और रेजीडेन्ट के पास शिकायत भी की। कृषको द्वारा रेजीडेण्ट के पास शिकायत करने से महाराजा जयदेवसिंह बहुत ही क्रोधित हो गया। 14 मई 1925 को भू-राजस्व के नाम पर होने वाली लूट के सबध मे विचार विमर्श के लिए किसान अलवर की बनसूर तहसील के नीमूचाना नामक गाव मे एकत्रित हुए। यकायक वहा राज्य की सशस्त्र सेना पहुची और निहत्थे किसानो को घेर कर उन पर गोलियो की बौछार कर दी। इस समय 353 घर जला दिये। 95 व्यक्तियो की इस गोलीकाण्ड मे मृत्यु हो गई और 250 लोग घायल हुए। महात्मा गाधी ने इस दमनचक्र और नृशस हत्याकाण्ड को 'यग इण्डिया' मे 'दोहरी डायरशाही' की सज्ञा दी और इस काण्ड

को जलिया वाला वाग से भी अधिक वीभत्स बताया। लगभग सभी प्रमुख भारतीय समाचार पत्रो ने इस काण्ड की निन्दा की। 1932 मे मेवातियो ने राज्य की शिक्षा नीति और अनुचित करो का विरोध किया। अल्प समय मे ही मेवातियो के आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। उन पर नियन्त्रण स्थापित करना अलवर राज्य की शक्ति के बाहर हो गया। अन्त मे राज्य ने अग्रेजो से सैनिक सहायता का निवेदन किया। ब्रिटिश सेना की सहायता से अत्यन्त ही कठिनाई से इस आन्दोलन को दबाया जा सका। इस घटना के पश्चात अलवर मे ब्रिटिश सरकार का दबदबा जम गया और महाराजा केवल अग्रेजो की कठपुतली मात्र रह गया। 1938 मे प्रजामण्डल की स्थापना हुई। लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी तथा हरनारायण शर्मा को सजाए हुई। अनेक गतिविधियो के पश्चात 1940 मे प्रजामडल' को मान्यता मिली। उत्तरदायी शासन की माग निरन्तर जोर पकडने लगी। 1946 मे शोभाराम, कुजबिहारी और हरनारायण इत्यादि गिरफ्तार हुए। अन्तत 16 मार्च 1948 को अलवर 'मत्स्य सघ' मे सम्मिलित हो गया। अलवर का ही शोभाराम इस सघ का प्राइम मिनिस्टर बना। बाद मे समूचे 'मत्स्य सघ' का ही राजस्थान मे विलय हो गया।

सिरोही राज्य के कुछ लोगो ने बम्बई मे प्रजा मडल की स्थापना कर वही से राज्य की निरकुशता का विरोध तथा उत्तरदायी शासन की माग करना आरम्भ कर दिया। इन लोगो मे गोकल भाई भट्ट, भीमशकर शर्मा, टकचद, सिंघी, वद्धिशकर त्रिवेदी, भवूतमल आदि प्रमुख थे। 22 जनवरी 1939 को सिरोही नगर मे राजनैतिक सभा करने के कारण गोकलभाई भट्ट तथा छ अन्य लोगो को बन्दी बना लिया गया। जनता द्वारा निरन्तर पाँच दिन तक गिरफ्तारी के विरुद्ध प्रदशन करने पर विवश होकर राज्य सरकार ने पकडे हुए लोगो का बिना शर्त रिहा कर दिया। उस समय सिरोही मे प्रजा मडल की स्थापना हुई। नवम्बर 1939 मे ही राज्य विरोधी गतिविधियो के कारण इसे अवैध घोषित कर दिया तथा इसके प्रमुख नेताओ को गिरफ्तार कर लिया। 1942 मे भारत छाडो आन्दोलन के समय सिरोही मे भी आन्दोलन हुआ। सिरोही के प्रमुख कार्यकर्ता गोकलभाई भट्ट राजपूताना प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रथम सभापति थे। भारत के स्वतत्र होने पर सिरोही राज्य भारतीय सघ मे सम्मिलित हो गया तथा गोकलभाई भट्ट के नेतृत्व म वहा मन्त्री मडल का गठन किया गया। कुछ कारणो मे सरदार पटल ने सिरोही का प्रशासन 8 नवम्बर 1949 को भारत सरकार से लेकर 5 जनवरी 1950 को बम्बई सरकार को सुपुर्द कर दिया। इसके विरुद्ध केवल सिराही ही नहीं बल्कि समस्त राजस्थान मे आन्दोलन हुए। अत 1 नवम्बर 1956 को सिरोही को पुन राजस्थान में सम्मिलित कर दिया गया।

धोलपुर राज्य मे प्रजा मडल की स्थापना 1936 मे हुई। इसके अध्यक्ष

कृष्णदत्त पालीवाल व सचिव मूलचद चुने गये। राज्य इस सस्था को सहन नही कर सका और इसकी सम्पत्ति को जब्त कर लिया। 1938 मे प्रजा मडल ने उत्तरदायी शासन की माग की किन्तु इस ओर कुछ भी ध्यान नही दिया गया। 1947 मे तासीमो नामक गाव मे होने वाले राजनैतिक सम्मेलन के समय पुलिस की गोली से छर्तसिह व पचर्मसिह नामक दो नेता मारे गये। जनता ने सवैधानिक सुधारो के लिये जारदार आन्दोलन चलाया। विवश होकर सरकार को सुधारो की योजना घोषित करनी पडी। मार्च 1948 मे धोलपुर का विलय मत्स्य सघ मे हो गया। 15 मई 1949 को मत्स्य सघ का राजस्थान मे विलय हो गया।

भरतपुर मे अत्यधिक लगान और राज्य की दमनकारी नीति के कारण प्रजा दुखी थी। 1928 मे राज्य की बिगडी आर्थिक दशा और प्रशासन मे सुधारो के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त दिवान मेके जी की मनमानी और अत्याचारो के कारण आदोलन आरम्भ हुए। भरतपुर राज्य मे 1938 मे प्रजा मडल की स्थापना की योजना बनी और लम्बे सघर्ष के बाद 1941 मे उसका पजीयन हुआ तथा 'भरतपुर राज्य प्रजा परिषद' नाम रखा गया। 1942 मे आन्दोलन के समय युगलकिशोर चतुर्वेदी, आदित्येन्द्र आदि गिरफ्तार किये गये। उसी वर्ष राज्य मे बाढ आ जाने के कारण आदोलन स्थगित कर प्रजा मडल ने राज्य मे समझौता कर लिया। 1947 मे बेगार के विरोध मे लोगो ने आन्दोलन किया। एकत्रित भीड पर घुडसवारो को दौडाया गया जिससे काफी लोग घायल हुए। कुछ समय पश्चात महाराजा के दौरे से लौटने पर लोगो ने पुन सत्याग्रह किया। पुलिस ने एक मोटर गाडी (बस) सत्याग्रहियो पर चढा दी जिससे अनेक लोग घायल हुए और रमेश स्वामी की मृत्यु हो गई। इस समय अनेक कार्यकर्त्ताओ को गिरफ्तार कर लिया गया। देश के स्वतन्त्र होने के बाद दिसम्बर 1947 मे महाराजा ने अन्तरिम सरकार बना कर चार लोकप्रिय मन्त्रियो को उसमे सम्मिलित किया। यहा साम्प्रदायिक दगे फल गये इसलिये केन्द्र सरकार ने यहा का प्रशासन अपने हाथ मे ले लिया। 18 मार्च 1948 को अलवर, भरतपुर, धोलपुर और करौली की रियासतो को मिला कर 'मत्स्य सघ' का निर्माण हुआ और 15 मई 1949 मे इस सघ को चारो रियासतो का राजस्थान मे विलय हुआ।

करौली राज्य मे जन जागृति का सूत्रपात मदनसिह, ओकारसिह चिरजीलाल शर्मा आदि द्वारा किया गया। 1939 मे प्रजा मण्डल की स्थापना हुई। सपोटरा नामक स्थान पर जागीरी जुल्मो के विरुद्ध आदोलन हुआ। पडोसी राज्यो ने 1946 मे उत्तरदायी सरकार की माग उठाई। जुलाई 1947 मे महाराजा ने सवधानिक सुधारो हेतु समिति बनाई। यह समिति सुधारो पर विचार विमर्श कर ही रही थी कि 1948 मे राज्य को मत्स्य सग मे सम्मिलित कर लिया गया।

प्रतापगढ राज्य मे उदयपुर के सुधारवादी प्रयत्नो के प्रभाव मे भीलो तथा

पिछडी जातियो मे जागृति के प्रयास हुए ।1936 मे ठक्कर बप्पा ने यहा हरिजन पाठशाला स्थापित की । कालान्तर मे खादी प्रचार सभा आदि द्वारा जन जागरण हुआ । अमृतलाल ने यहा 1946 मे प्रजा मडल की स्थापना की ।

किशनगढ राज्य अजमेर के निकट स्थित होने के कारण वहा जन जागृति के प्रयास काफी जल्दी होने लगे । कान्तिचन्द्र, पुरूषोत्तम लाल शर्मा, जमालशाह आदि किशनगढ मे जन जागृति के अग्रदूत बने ।

टोक मे अधिकतर धार्मिक आन्दोलन हुए किन्तु वहा के लावा ठिकाने के महेन्द्रकुमार जैन ने राष्ट्रीय कार्यक्रमो मे अत्यन्त ही उत्साह से भाग लिया ।

शाहपुरा मे 1938 म प्रजा मडल की स्थापना हुई । बेगार का विरोध, नगर परिषद की स्थापना आदि के प्रयत्न किये गए । 1942 के आन्दोलन के समय अनेक कार्यकर्त्ताओ को पकड कर अजमेर जेल भेजा गया । गोकल लाल असावा, लादूराम व्यास, रमेशचद्र, लक्ष्मीदत्त आदि इस क्षेत्र के प्रमुख जन नायक थे । इस राज्य मे प्रगतिशील कदम अपेक्षाकृत जल्दी उठाये गये । 1948 मे इस रियासत का राजस्थान मे विलय हुआ ।

15 अगस्त 1947 को आजादी के आगीवाना के बलिदान रग लाये और देश स्वतन्त्र हो गया । राजस्थान के रजवाडो मे जबरदस्त हलचल मच गई । जितने मु ह उतनी बाते होने लगी । पडित जवाहरलाल नेहरु और सरदार वल्लभ भाई पटेल जैसे राष्ट्रीय नेताओ और कई रजवाडी लोक नेताओ के सद्प्रयत्नो के परिणाम स्वरुप राजस्थान का एकीकरण 1 नवम्बर 1956 को सम्पन्न हुआ तथा राजस्थान का वर्तमान परिष्कृत स्वरुप निखर कर सामने आया ।



आधुनिक राजस्थान का निर्माण

परिचयात्मक

1 देशी राज्यो के भारतीय सघ मे अधिमिलन, एकीकरण एव लोकतन्त्री-करण की प्रक्रिया के विषय मे प्राथमिक एव प्रमाणिक जानकारी के स्रोत निम्न-लिखित ग्रथ हैं —

(अ) भारत सरकार के राज्य मन्त्रालय का प्रकाशन ह्वाइट पेपर ऑन इडियन स्टेट्स (इसका प्रथम सस्करण जुलाई 1948 मे तथा द्वितीय सशोधित सस्करण माच, 1950 मे प्रकाशित हुआ)

(ब) वी पी मेनन, दि स्टोरी आफ द इडियन स्टेट्स (इसके दो सस्करण मार्च और सितम्बर 1956 तथा तृतीय सस्करण 1961 मे ओरियन्ट लौंगमैन्स, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित किया गया ।

(स) सुखवीरसिंह गहलोत, राजस्थान रौ एकीकरण, राजस्थानी भाषा मे लिखा गया यह शोध-लेख श्री जगदीशसिह गहलोत शोध सस्थान पत्रिका जोधपुर के 1985–86 के अक 5–6 मे प्रकाशित हुआ । इस आलेख मे मानक ग्रन्थो तथा तत्कालीन समाचार पत्रो को उद्धृत करते हुए राजस्थान की विभिन्न रियासतो के एकीकरण से सम्बद्ध प्रामाणिक जानकारी प्रदान की गई है ।

2 आधुनिक राजस्थान का निर्माण बीसवी शताब्दी के पाचवे दशक की महान् ऐतिहासिक घटना है, जिसके कारण राजपूताने की रियासतो मे प्रचलित निरकुश सामन्तवादी प्रशासनिक व्यवस्था के प्रतिमानो का रूपान्तरण आधुनिक युग की लोकतान्त्रिक प्रणाली मे सम्भव हो सका ।

3 स्वतन्त्रता से पूर्व भारत दो भागो मे विभक्त था — (अ) ब्रिटिश भारत और (ब) भारतीय राज्य अथवा नेटिव स्टेट्स । ब्रिटिश भारत का सर्वोच्च शासक गवनर जनरल एव वायसराय था और देशी राज्यो के शासक ब्रिटिश सरकार की परमोच्च शक्ति (Paramount Power) के अधीन थे, किन्तु वे अपनी रियासतों के आ तरिक प्रशासन मे सम्प्रभु थे ।

4 भारतीय रियासतो का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो के आधार पर किया जाता रहा है । अत उनकी सख्या मे भी न्यूनाधिक अन्तर पाया जाता है । जसे, भारत सरकार के प्रकाशन 'द इडियन स्टेट्स' के अनुसार 1 जनवरी, 1928 को

देशी रियासतो की कुल सख्या 562 थी, इनमे से 119 के शासको को तोपो द्वारा सलामी दी जाती थी तथा 441 राज्य अथवा ठिकाने तोपो द्वारा सलामी से वचित थे। "दि इडियन स्टेटस कमेटी" (बटलर समिति) के प्रतिवेदन 1929 मे भी नरेन्द्र मण्डल (चैम्बर आफ प्रिंसेज) मे प्रतिनिधित्व की योग्यता के आधार पर देशी राज्यो की सख्या 562 निश्चित की गई। ब्रिटिश सरकार ने मेमोरेण्डा आन द इडियन स्टेट्स' मे रियासतो की सख्या 601 बताई है परन्तु ब्रिटिश सरकार के अन्तिम गवर्नर जनरल एव वायसराय लार्ड माउटबेटन ने 25 जुलाई, 1947 को देशी राजाओ के शासको तथा उनके प्रतिनिधियो के सम्मेलन मे भाषण देते हुए देशी राज्यो की सख्या लगभग 565 बतायी।

5 स्वतन्त्रता पूर्व राजस्थान मे तोपो की सलामी की हकदार 19 रियासतें तथा तोपसलामी से वचित ठिकानो की सख्या 3 थी। इनके नाम निम्नलिखित है— अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, बासवाडा, बूदी, डूगरपुर, झालावाड, किशनगढ, कोटा, मेवाड, प्रतापगढ, शाहपुर, टोंक, जयपुर, जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर, सिरोही, (19) और लावा, कुशलगढ तथा नीमराना (31)

परमोच्च शक्ति—

6 स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय राज्यो पर ब्रिटिश परमोच्च शक्ति का नियत्रण था, जिसका विकास ईस्ट इडिया कम्पनी के प्रशासन (1757–1856) के कालखण्ड मे हुआ। गवर्नर जनरल लार्ड डलहोजी (1848–56) को इस बात का श्रेय है कि उससे अपने व्यपगत सिद्धान्त (डाक्ट्रिन आफ लैप्स) तथा पजाब-विजय (1848–49) के साथ भारत मे ब्रिटिश परमोच्च शक्ति की स्थापना अन्तिम रूप से कर दी।

7 1857 मे ईस्ट इडिया कम्पनी की राजसत्ता के विरूद्ध भारत मे विप्लव प्रारम्भ हुआ। परिणामस्वरूप ब्रिटिश ससद ने भारत सरकार अधिनियम, 1858 पास करके भारत की शासन सत्ता उसका भू-भाग तथा राजस्व ईस्ट इडिया कम्पनी से लेकर ब्रिटिश राजमुकुट मे हस्तान्तरित कर दिया। कम्पनी से क्राउन के हाथो मे सत्ता के हस्तान्तरण के सम्बध मे महारानी विक्टोरिया ने 1 नवम्बर, 1858 को शाही घोषणा की। इस घोषणा के साथ भारतीय रियासता पर ब्रिटिश क्राउन की परमोच्च शक्ति विधित और तथ्यत स्थापित हो गई।

8 ब्रिटिश सरकार ने परमोच्च शक्ति की व्याख्या कभी नही की। सर विलियम ली वारनर (दि नेटिव स्टेट्स आफ इडिया, 1910) के अनुसार— "ब्रिटिश क्राउन मे परमोच्च शक्ति है, परन्तु उसके अधिकार क्षेत्र को बुद्धिमत्तापूर्वक परिभाषाविहीन छोड दिया गया है।" बटलर समिति के प्रतिवेदन (1929) मे लिखा गया "परमोच्च शक्ति को परमोच्च ही रहना चाहिए।"

9 बटलर समिति ने परमोच्च शक्ति को परिभाषित तो नही किया, परन्तु उसके कायकलापो को चार प्रमुख शीर्षको मे विभक्त किया (अ) वैदेशिक सम्बन्ध, (ब) अन्तर-राज्यीय सम्बन्ध, (स) भारत की प्रतिरक्षा, और (द) राज्यो के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप के अवसर। इस प्रकार देशी राजा स्वतन्त्र रूप से अन्तर राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित नही कर सकते थे। भारतीय राज्य अन्य भारतीय राज्या के साथ न तो राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित कर सकते थे और न युद्ध अथवा शान्ति सधि कर सकते थे। प्रतिरक्षा के क्षेत्र मे परमोच्च शक्ति दोना —ब्रिटिश भारत और भारतीय राज्यो की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी थी और आन्तरिक सुरक्षा से सम्बन्धित सभी विषयो पर उसको हस्तक्षेप करने तथा नीति निर्धारण का अधिकार था।

राजनीतिक विभाग की स्थापना—

10 1915 मे देशी रियासतो तथा उनके शासको से ब्रिटिश सरकार के सम्बधो के मामलों की देखरेख के लिए वायसराय के अधीन एक 'राजनीतिक विभाग' की स्थापना की गई। इस विभाग के प्रभाव के बारे मे वी पी मेनन का कथन है —'राजनीतिक विभाग ने रियासतो मे धीरे-धीरे शासन के अन्दर शासन की स्थिति ग्रहण करली थी।"

नरेन्द्र मण्डल की स्थापना—

11 राजाओ ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन करने और प्रथम महायुद्ध मे ब्रिटिश सरकार की मदद करने मे सक्रिय भूमिका निभाई थी। उनका भारतीय राजनीति मे निरन्तर, सम्पर्क सम्बन्ध बनाए रखने के सन्दर्भ मे ब्रिटिश सरकार ने 1921 मे शाही उद्घोषणा द्वारा 'नरेन्द्र मण्डल' की स्थापना की। यह एक परामर्शात्मक तथा सलाहकार निकाय के समान था। वायसराय इसका अध्यक्ष होता था तथा नरेन्द्र मण्डल के सदस्य अपने मे से एक वर्ष के लिए एक चान्सलर और एक प्रो वायस चान्सलर चुनते थे। नरेन्द्र मण्डल शीघ्र ही बहुसख्यक राज्यो का वास्तविक प्रतिनिधि बन गया और नरेशो तथा राजनीतिक विभाग के बीच एक सम्पर्क कडी के रूप मे भूमिका प्रस्तुत करने लगा।

कांग्रेस और देशी राज्य—

12 राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भारतीय राष्ट्रीयता के बढते हुए तूफान को रोकने के लिए देशी राज्यो ने ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा – प्राचीर के रूप मे कार्य किया, कांग्रेस के अखिल भारतीय सघ की स्थापना का विरोध किया और ब्रिटिश भारत से पृथक अपनी अलग राजनीतिक सत्ता को बनाए रखने का सदैव प्रयास किया।

13 देशी भारत मे राजनीतिक आन्दोलनो का मार्ग दर्शन करने एव उनमे

समन्वय स्थापित करने हेतु दिसम्बर 1927 मे बम्बई मे अ भा देशी राज्य लोक परिषद् की स्थापना की गई। प्रारम्भ मे अ भा राष्ट्रीय कांग्रेस ने रियासतो के प्रति तटस्थता की नीति अपनायी। अन्तत 1938 मे कांग्रेस ने हरिपुर अधिवेशन मे प्रस्ताव पास किया कि कांग्रेस देशी राज्यो म पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना और नागरिक स्वतन्त्रताओ के सरक्षण की माग का पूर्ण समर्थन करती है। उसने रियासतो मे कांग्रेस समितियो और प्रजामण्डलो की स्थापना का समर्थन किया।

राजस्थान मे प्रजामण्डलों की स्थापना —

14 राजस्थान मे राजनीतिक चेतना का विकास करने और विभिन्न रियासतो मे उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए सघर्ष करने के लिए प्रजामण्डलो की स्थापना की गई। 1934 मे मारवाड प्रजामण्डल की स्थापना की गई। इससे पूर्व जयनारायण व्यास के नेतृत्व मे मारवाड राज्य लोक परिषद् द्वारा जोधपुर राज्य म उत्तरदायी शासन की स्थापना और नागरिक अधिकारो के सरक्षण के लिए सरक्षण के लिए सघर्ष किया गया था। मारवाड प्रजामण्डल को अवध घोषित किए जाने पर जयनारायण व्यास ने मई 1938 मे मारवाड लोक परिषद् की स्थापना की। बीकानेर राज्य मे सर्वप्रथम 1936 मे तथा पुन जुलाई 1942 मे प्रजामण्डल की स्थापना की गई। उदयपुर मे 1938 मे तथा जयपुर मे सर्वप्रथम 1931 मे (1937-38 मे सेठ जमनालाल बजाज की प्रेरणा से पुनर्गठन) प्रजामण्डल की स्थापना की गई। जैसलमेर (1939), भरतपुर (1938), डूगरपुर (1944), बासवाडा (1943), सिरोही (1939), बूदी (1944), धौलपुर (1938, और करौली राज्य (1939) में प्रजामण्डलो की स्थापना की गई।

15 राजस्थान मे प्रजामण्डल आन्दोलनो के प्रमुख नेता सर्वश्री जयनारायण व्यास, मघाराम वैद्य, रघुवरदयाल गोयल, कुम्भाराम आर्य, बलवतसिंह मेहता, माणिक्यलाल वर्मा, सेठ जमनालाल बजाज, हीरालाल शास्त्री सागरमल गोपा, मीठालाल व्यास, मास्टर भोलानाथ, प नयनूराम शर्मा प अभिन्न हरि, ठाकुर देशराज, मास्टर आदित्येन्द्र, राजबहादुर, भोगीलाल पड्या, भूपेन्द्रनाथ त्रिवेदी, गोकुल भाई भट्ट, ब्रजसुन्दर शर्मा, ज्वाला प्रसाद जिज्ञासु, चिरजीलाल शर्मा, रामनारायण चौधरी, गोकुल लाल असावा आदि थे।

16 आधुनिक राजस्थान के निर्माण मे विभिन्न रियासतो के प्रजामण्डलो की भूमिका निर्णायक रही उन्होने राजनीतिक चेतना का शखनाद किया, सामाजिक परिवर्तन एव भूमि सुधारो का मार्ग प्रशस्त किया, उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए सघर्ष किए और रियासतो के शासको पर भारतीय सघ मे विलय, एकीकरण तथा लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना के लिए दबाव डाला। वस्तुत प्रजामण्डलो के नेताओ ने राजस्थान के एकीकरण सम्बन्धी सरदार पटेल के महान् प्रयासो मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारत विभाजन और स्वतन्त्रता —

17 द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन अपने यौवन के चरम उत्कर्ष पर पहुच गया। अन्त ब्रिटेन की श्रमिक सरकार के प्रधानमन्त्री एटली ने भारत की सवैधानिक समस्या के समाधान के लिए मार्च 1946 मे कैबिनेट मिशन भारत भेजा। कैबिनेट मिशन ने 16 मई, 1946 को अपने प्रस्तावो की घोषणा की।

18 कैबिनेट मिशन की योजना के अनुरूप 2 सितम्बर 1945 को अन्तरिम सरकार का निर्माण हुआ जिसमे गवनर जनरल तथा वायसराय लार्ड वैवल ने प जवाहरलाल नेहरु को अपनी कार्यकारिणी मे उप प्रधान तथा सरदार वल्लभ भाई पटेल को गृहमन्त्री मनोनीत किया। जुलाई 1946 मे सविधान सभा के लिए चुनाव हुए और सविधान सभा का प्रथम अधिवेशन 9 दिसम्बर, 1946 को हुआ।

19 भारतीय राज्यो के सम्बन्ध मे कैबिनेट मिशन ने कहा कि परमोच्च शक्ति का हस्तान्तरण नूतन भारत सरकार को नही होगा, किन्तु इसक अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। प्रस्तावित भारतीय सघ मे शामिल होने वाली रियासतो को वैदेशिक सम्बन्ध, प्रतिरक्षा और सचार के अलावा अन्य विषयो के प्रशासन में स्वतन्त्रता होगी। सविधान सभा मे देशी राज्यो के प्रतिनिधियो की सख्या 93 निश्चित की गई। सविधान सभा मे प्रतिनिधियो के चयन एव प्रतिनिधित्व सम्बधी समस्या के सामाधान के लिए नरेन्द्र मण्डल देशी राज्यो की एक समझौता-वार्ता समिति नियुक्त करेगा जो सविधान सभा द्वारा नियुक्त समझौतावार्ता समिति से बातचीत करेगी।

20 नरेन्द्रमण्डल ने जून 1946 मे तथा सविधान सभा ने दिसम्बर 1946 मे 'समझौता वार्ता समिति (Negotigting Committee) की नियुक्ति की। दोनो समितियो मे अप्रेल 1947 मे सविधान सभा मे देशी राज्यो के प्रतिनिधियो की सख्या (93) के वितरण और चयन के विषय मे समझौता हो गया।

21 प्रान्तो के अनिवार्य समूहन सम्बधी कैबीनेट मिशन के प्रस्तावो पर कांग्रेस और मुस्लिमलीग मे मतभेद होने के कारण लीग ने 29 जुलाई, 1946 को कबिनेट मिशन योजना को अस्वीकृत कर दिया और इस गतिरोध ने भारत विभाजन का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया।

22 अन्तत कांग्रेस और लीग ने 3 जून, 1947 को भारत विभाजन की माउन्टबेटन योजना को स्वीकार कर लिया। ब्रिटिश ससद ने "भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम, जुलाई 1947" पास किया जिसके अनुसार 15 अगस्त 1947 को भारत और पाकिस्तान नामक दो स्वतन्त्र डोमिनियनो की स्थापना का प्रावधान किया गया। स्वतन्त्रता अधिनियम मे कहा गया कि भारतीय रियासतो के नए डोमि-

नियमो मे से किसी एक मे अधिमिलन (विलय) पर प्रतिबध नही होगा। अधिनियम के अनुसार ब्रिटिश परमोच्च शक्ति का हस्तान्तरण भारत अथवा पाकिस्तान को नही किया, किन्तु इस का अस्तित्व समाप्त कर दिया गया।

अधिमिलन में बाधाऐ

23 तत्कालीन भारतीय राजनीतिक घटनाक्रम के सन्दर्भ मे देशी राज्यो के भारत-सघ मे अधिमिलन और एकीकरण के मार्ग मे अनेक समस्याए-बाधाए थी। उदाहरणार्थ (i) 29 जनवरी, 1947 को बम्बई मे देशी राज्यो के शासको का एक सम्मेलन हुआ जिसमे प्रस्ताव पास किया गया कि प्रत्येक राज्य स्वय निश्चित करेगा कि भारतीय सघ मे शामिल हो या न हो। सघ उनकी सीमाओ मे और उनके सविधान मे कोई हस्तक्षेप नही कर सकता और न कोई हस्तक्षेप उत्तराधिकारी नियुक्त करने मे ही किया जा सकता है। (ii) 13 जून 1947 को लार्ड माउन्टबेटन ने रियासतो के मसले पर विचार-विमर्श करने के लिए दलीय नेताओ की बैठक बुलाई, उसमे मुस्लिम लीग के नेता श्री जिन्ना का तर्क था कि परमोच्च शक्ति का हस्तान्तरण नये डोमिनियनो को नही किया गया। अत तकनीकी रूप मे देशी राज्य 15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्र हो गए। उन्हे पाकिस्तान या भारत में शामिल होने के लिए बाध्य नही किया जा सकता। प नेहरू का प्रत्युत्तर था कि कोई भी रियासत पाकिस्तान मे शामिल हो सकती है, किन्तु कैबिनेट मिशन के ज्ञापन मे अनुसार वह स्वतन्त्र रहने का दावा नही कर सकती। (iii) काठियावाड, राजस्थान, पजाब, दक्षिण उडीसा तथा छत्तीसगढ की रियासतो ने क्षेत्रीय सघो के निर्माण का विचार किया। काग्रेस ने इस योजना का विरोध किया, क्योंकि क्षेत्रीय सघो का विचार भारतीय राष्ट्रवाद तथा एकता के विरुद्ध था। (iv) राजनीतिक विभाग के प्रधान सर कोनरेड कोरफील्ड ने भी भारतीय डोमीनियन सरकार के लिए बाधाए पैदा करने के अनेक प्रयास किए। कहा जाता है कि उसने रियासतों से सबधित अभिलेखो को नष्ट करने की स्वीकृति ब्रिटिश सरकार से प्राप्त करली थी। (v) हैदराबाद राज्य के निजाम ने 12 जून, 1947 को स्वतत्र रहने की घोषणा की और लीग के प्रमुख पत्र 'डॉन' ने निजाम के इस निर्णय का हार्दिक स्वागत किया। 11 जून, 1947 को ट्रावनकोर ने स्वतत्र रहने की घोषणा की। जूनागढ के नवाब ने 15 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान मे अधिमिलन की घोषणा की।

अधिमिलन के लिए भारत सरकार के प्रयास

24 अ भा काग्रेस समिति ने 15 जून, 1947 को प्रस्ताव पास किया कि किसी भी भारतीय रियासत द्वारा स्वय को स्वतत्र घोषित करने का अधिकार नही है। प नेहरू ने कहा—"भारत सरकार ने कुछ अर्न्तनिहित परमोच्च शक्ति है जो समाप्त नही हो सकती। भारत-सघ की परमोच्च शक्ति का एक मात्र

विकल्प यह है कि रियासतो मे मिल जाना चाहिए और सघीय विधान मण्डल तथा सघीय कार्यपालिका मे समान रूप मे भाग लेना चाहिए ।"

25 27 जून 1947 को भारत सरकार के अन्तर्गत 'रियासती विभाग' खोला गया। सरदार पटेल को इसका प्रभारी मन्त्री और वी पी मेनन को सचिव नियुक्त किया गया। यह प्रस्तावित हुआ कि तीन विषयो वैदेशिक सम्बन्ध, प्रतिरक्षा और सचार के सन्दर्भ मे रियासतो को सघ मे अधिमिलन के लिए कहा जाए।

26 5 जुलाई, 1947 को सरदार पटेल ने कहा—'अगर आप भारत की डोमीनियन मे शामिल होना चाहते है तो आप ऐसा 15 अगस्त से पहले करे। इसमे सन्देह नही कि ऐसा करना प्रत्येक देशी राज्य के हित मे होगा और प्रत्येक होसियार तथा विवेक सम्पन्न राज्य सरकार भारत डोमिनियन मे सम्मिलित होना चाहेगी। इस अधिमिलन का आधार ऐसा होगा कि आपको आन्तरिक मामलो मे काफी स्वतन्त्रता रहेगी। और साथ ही सुरक्षा, सचार और वदेशिक मामलो मे आप चिन्ता मुक्त हो जाएगे।"

27 25 जुलाई 1947 को लार्ड माउन्टबेटन ने प्रथम तथा अन्तिम बार नरेशो के सम्मेलन मे भाषण देते हुए कहा "सैद्धान्तिक रूप से देशी राज्य अपना भविष्य निर्धारण के लिए स्वतन्त्र है। उन्हे ब्रिटिश राजा के प्रति उनके सब दायित्वो से मुक्त कर दिया गया है, परन्तु कुछ भौगोलिक बाध्यताए है जिनसे मुँह नही मोडा जा सकता है। लगभग 565 रियासतो मे से अधिकतर भारत के डोमिनयन से भौगोलिक दृष्टि से अपरिहार्य रूप से जुडी हुई है।" माउन्टबेटन ने राजाओ से कहा कि अधिमिलन के लिए 15 अगस्त अन्तिम तारीख निर्धारित की गई है, जिससे पहले ही उन्हे अधिमिलन के लिए सहमति देनी चाहिए। वास्तव मे लार्ड माउन्टबेटन ने राजाओ पर भारत सघ मे अधिमिलन के लिए सराहनीय राजनीतिक एव कूटनीतिक दबाव डाला।

आधुनिक राजस्थान का निर्माण

28 रियासती विभाग का अधिमिलन लेखपत्र को 31 जुलाई 1947 को अन्तिम रूप दिया गया। 15 अगस्त 1947 तक जूनागढ, मगरोल, मानवादर, हैदराबाद और जम्मू काश्मीर को छोडकर भारत से भौगोलिक समीपतावाली सभी रियासतो ने अधिमिलन लेखपत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। माउन्टबेटन ने 15 अगस्त को सविधान सभा को सूचित किया—"सयुक्त राजनीतिक सरचना स्थापित हो चुकी है।"

29 आधुनिक राजस्थान का निर्माण तीन चरणो मे हुआ। प्रथमचरण, भारतीय सघ मे अधिमिलन, द्वितीय चरण, राजस्थान की 19 रियासतो तथा 3 ठिकानो का राजस्थान सघ मे एकीकरण तथा तृतीय चरण का सबध राजस्थान मे लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना से है।

30 रियासतो के सविधान सभा मे भाग लेने के प्रश्न पर नरेन्द्र मण्डल के चासलर भोपाल के नवाब ने असहयोगी तथा नकारात्मक भूमिका अभिनीत की। उनकी राष्ट्र विरोधी नीति का विरोध करते हुए मार्च 1947 मे बीकानेर के महाराजा शार्दुलसिंह ने कहा—"हमे सविधान सभा मे भाग लेना चाहिए।" उनके वक्तव्य ने न केवल नवाब भोपाल के नेतृत्व को चुनौती दी, बल्कि अप्रेल 1947 के अन्त तक राजस्थान की प्रमुख रियासतो ने सविधान सभा मे अपने स्थान भी ग्रहण कर लिए।

अधिमिलन

31 भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम जुलाई 1947 के अन्तर्गत अन्य देशी राज्यो की भाति राजस्थान की रियासतो को भी भारत या पाकिस्तान दोनो मे से किसी एक डोमीनियन मे अधिमिलन का निर्णय करना था। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि जोधपुर नरेश ने नवाब भोपाल के साथ 6 अगस्त 1947 को जिन्ना से भेंट की। जिन्ना ने जोधपुर नरेश हनुवन्तसिह को पाकिस्तान मे सम्मिलित होने के बदले मे उन्हे एक स्वतन्त्र राज्य का स्तर प्रदान करने का वचन दिया।

8 अगस्त को राज्य विभाग के सचिव वी पी मेनन ने हनवन्तसिह की भेंट माउन्टबेटन से करवा दी। परिणामस्वरूप हनुवतसिंह का पाकिस्तान मे विलय का विचार बदल गया और 11 अगस्त को उन्होने नवाब भोपाल को सूचित किया कि वह भारत मे अधिमिलन कर रहा है। 15 अगस्त तक राजपूताने की सभी रियासतो का अधिमिलन भारतीय सघ मे हो गया।

एकीकरण

32 भारतीय सघ मे अधिमिलन के पश्चात दूसरा चरण राजस्थान की रियासतो के एकीकरण का था। मेवाड के महाराणा भूपालसिंह, जयपुर के महाराजा मानसिंह, कोटा के महाराव भीमसिंह और डूगरपुर के महारावल लक्ष्मणसिंह ने अपने अपने स्तर पर रियासतो के सघ बनाने के प्रयत्न किए, परन्तु वे अपने सामन्तवादी अहम् और निरकुश व्यक्तिवाद के कारण सघ बनाने मे असफल रहे।

33 राजस्थान मे राज्यो के एकीकरण की प्रक्रिया को अनेक कारको ने गति एव दिशा प्रदान की। जैसे प्रजामण्डल आन्दोलनो का विभिन्न राज्यो पर एकीकरण हेतु दबाव डालना, अखिल भारतीय राज्य लोक परिषद् (AISPC) का प्रजामण्डल आन्दोलनो का समर्थन एव विभिन्न प्रजामण्डलो मे समन्वय-सामजस्य स्थापित करना, राज्यो के निरकुश, अनुत्तरदायी और सामन्तवादी प्रशासन के प्रति जनता मे अविश्वास की भावना और सरदार पटेल का प्रभावी राजनीतिक नेतृत्व तथा वी पी मेनन का राजनयिक कौशल।

34 सर्वप्रथम जयनारायण व्यास ने अपने पत्र 'तरुण राजस्थान' मे 20

सितम्बर, 1929 के अ क मे विभिन्न रियासतो के विलय से एक सयुक्त राजस्थान के निर्माण की सकल्पना प्रस्तुत की थी। अ भा देशी राज्य लोक परिषद् की राजपूताना प्रान्तीय सभा ने सितम्बर 1946 मे प्रस्ताव पास किया कि राजस्थान की रियासते पृथक्-पृथक इकाई के रूप मे भारतीय सघ मे शामिल होने के योग्य नही है। अत समस्त राजस्थान का विलय एक इकाई के रूप मे भारत सघ मे होना चाहिए। मार्च 1948 मे पुन प्रातीय सभा की कार्यसमिति ने स्पष्ट रूप मे घोषणा की "राजस्थान की राजनीतिक समस्या का सर्वोत्तम विकल्प बृहत राजस्थान का निर्माण है। काग्रेस के नेतृत्व एव मार्गदर्शन मे कार्यरत विभिन्न रियासतो के प्रजामण्डल भी बृहत राजस्थान के निर्माण के लिए प्रबल जनमत तैयार कर रहे थे।

राजस्थान के इतिहासकार जगदीशसिंह गहलोत ने 16 अप्रेल, 1947 को 'नवभारत' दिल्ली के विशेष सवाददाता को साक्षात्कार मे बताया कि सिंध का थरपारकर अमरकोट जिला), हिसार जिले के भिवानी और गुडगाव का कुछ क्षेत्र मालवा प्रान्त का कुछ भाग, ईडर, सिरोही, दाता, पालनपुर और राजस्थान की समस्त रियासतो को मिलाकर बृहत राजस्थान का निर्माण करना चाहिए क्योकि यह क्षेत्र सस्कृति, भाषा और भू-राजनीति की दृष्टि से बृहत राजस्थान के अभिन्न अग है।

उपर्युक्त कारणो के अलावा भारत विभाजन के कारण अलवर और भरतपुर मे साम्प्रदायिक हिंसा ने राजस्थान मे एकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की।

राजस्थान के एकीकरण के प्रमुख चरण निम्नलिखित है—

मत्स्य सघ का निर्माण

35 देश के विभाजन के समय अलवर और भरतपुर मे भीषण साम्प्रदायिक दगे भडक उठे। परिणामस्वरूप इन रियासतो मे आतरिक अशान्ति और प्रशासनिक अराजकता फैल गई। साम्प्रदायिक दगो की स्थिति से निपटने तथा कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए भारत सरकार ने अलवर और भरतपुर का प्रशासन अपने हाथो मे ले लिया।

अलवर और भरतपुर से भौगोलिक समीपता रखने वाली धौलपुर और करौली छोटी-छोटी रियासतें थी। ये चारो रियासते भारत सरकार द्वारा निर्धारित मापदण्ड के अनुसार पृथक अस्तित्व बनाये रखने योग्य नही थी। अत भारत सरकार ने 27 फरवरी, 1948 को चारो रियासतो के सामने एकीकरण द्वारा एक नए राज्य सघ के निर्माण का प्रस्ताव रखा। उनके द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत होने पर भारत सरकार ने प्रस्तावित राज्य का नाम मत्स्य सघ रखा।

मत्स्य सघ का उद्घाटन केन्द्रिय मत्री एन वी गाडगिल ने 18

मार्च, 1948 को किया मत्स्य सघ के चारो घटक राज्यो का कुल क्षेत्रफल लगभग 12000 कि मी जनसख्या 1 8 करोड और वार्षिक आय 2 करोड रुपये थी। सघ के राजप्रमुख महाराजा धौलपुर और उपराज्यप्रमुख महाराणा करौली बनाए गये। अलवर प्रजामण्डल के लोकप्रिय नेता शोभाराम कुमावत को मत्स्य सघ का प्रधान मन्त्री मनोनीत किया गया।

सयुक्त राजस्थान का निर्माण

36 महाराव कोटा ने कोटा, बू दी और झालावाड के विलय द्वारा हाडौती सघ और महारावल डू गरपुर ने डू गरपुर, बासवाडा एव प्रतापगढ के विलय द्वारा 'बागड सघ' बनाने के असफल प्रयत्न किए। इसी सन्दर्भ मे भारत सरकार के राज्य विभाग ने 3 मार्च, 1948 को कोटा, बू दी, झालावाड, टोंक, डू गरपुर, बासवाडा, प्रतापगढ, कुशलगढ, किशनगढ और शाहपुरा की रियासतो को मिलाकर सयुक्त राजस्थान के निर्माण का प्रस्ताव किया और औपचारिक स्वीकृति प्राप्त हो जाने के बाद सयुक्त राजस्थान का उद्घाटन 25 मार्च, 1948 को किया। महाराव कोटा को राजप्रमुख और प्रो गोकुललाल असावा को इस राज्य का प्रधानमन्त्री मनोनीत किया गया।

पुनर्गठित सयुक्त राजस्थान —

37 मार्च 1948 मे महाराणा मेवाड और प्रजामण्डल मे मतभेद होने के कारण मेवाड मे राजनीतिक गतिरोध उत्पन्न हो गया। मेवाड प्रजामण्डल पत्रिका ने 8 और 15 मार्च को सम्पादकीय लेखो मे लिखा है कि मेवाड एक पृथक इकाई के रुप मे विकास नही कर सकता। अत जन कल्याण को ध्यान मे रखते हुए उसे सयुक्त राजस्थान में मिल जाना चाहिए। समय की माग और मेवाड मे उत्तरदायी शासन की स्थापना हेतु आन्दोलन के दबाव के कारण उदयपुर ने सयुक्त राजस्थान मे विलीन होने का निणय किया। फलस्वरुप 18 अप्रेल, 1948 को उदयपुर का सयुक्त राजस्थान मे विलय हो गया। पुनर्गठित सयुक्त राजस्थान की राजधानी उदयपुर थी और महाराणा उदयपुर को राजप्रमुख एव माणिक्यलाल वर्मा को प्रधानमत्री मनोनीत किया गया।

वृहत् राजस्थान का इतिहास —

38 14 जनवरी 1949 को सरदार पटेल ने उदयपुर मे घोषणा की कि, जोधपुर जयपुर और बीकानेर ने सयुक्त राजस्थान मे शामिल होना स्वीकार कर लिया है। 30 मार्च को सरदार पटेल ने वृहत राजस्थान का उद्घाटन किया। जयपुर को वृहत राजस्थान की राजधानी बनाया गया तथा महाराणा उदयपुर को महाराज प्रमुख, जयपुर नरेश मानसिंह को राजप्रमुख एव हीरालाल शास्त्री को प्रधानमन्त्री मनोनीत किया गया।

39 मत्स्य सघ का विलय 15 मई 1949 को वृहत राजस्थान मे हुआ ।

40 जनवरी 1950 मे सरदार पटेल ने सिरोही राज्य का विभाजन करके माउन्ट आबू और आबू तहसील के दक्षिण भाग का बम्बई राज्य मे विलय कर दिया था और शेष सिरोही रियासत का राजस्थान मे विलय कर दिया। सिरोही की जनता ने इस निर्णय का विरोध करते हुए आन्दोलन प्रारम्भ किया। एक नवम्बर, 1956 को राज्य पुनगठन आयोग की सिफारिश पर भूतपूव सिरोही राज्य का माउन्ट आबू आदि इलाका एव अजमेर-मेरवाडा राजस्थान में शामिल कर दिए गए ।

इस प्रकार 6 चरणो मे आधुनिक राजस्थान का निर्माण हुआ ।

लोकतन्त्रीकरण

41 वी पी मेनन ने अपने राजनीतिक कौशल तथा राजनयिक चातुर्य से राजस्थान के द्वितीय सघ अर्थात पुनगठित सयुक्त राजस्थान के सविधान (दि कोवेनेन्ट) की धारा 8 मे यह प्रावधान कराया कि राजप्रमुख को एक नए अधिमिलन पत्र पर हस्ताक्षर करने थे जिसके अनुसार उसे यह स्वीकार करना होगा कि वह भारतीय सविधान सभा द्वारा लिए गए किसी भी निर्णय को स्वीकार करने के लिए बाध्य होगा जो 'सयुक्त राज्य राजस्थान' पर लागू किया जावे । इस प्रकार अगस्त 1947 तक तीन विषयो (वैदेशिक सम्बन्ध, प्रतिरक्षा एव सचार) को भारतीय सघ को सौपने की शत समाप्त हो गई ।

42 वृहत्तर राजस्थान के सविधान मे एक नया प्रावधान जोडा गया जिसके अनुसार राजप्रमुख को नए अधिमिलन पर हस्ताक्षर करने होगे जिसके अन्तर्गत भारत की सविधान सभा द्वारा सघीय और समवर्ती सूचियो को स्वीकार करना आवश्यक था ।

43 उपयु क्त दो प्रावधानो के अनुसार राजस्थान का भारतीय सघ मे न केवल पूण एकीकरण हो गया बल्कि राजस्थान की राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति का भी लोकतन्त्रीकरण हो गया ।

44 26 जनवरी 1950 को गणतन्त्रात्मक भारत के सविधान के क्रियान्वयन के साथ भूतपूव देशी राज्यो की जनता को वयस्क मताधिकार पर आधारित उत्तरदायी शासन की राजनीतिक व्यवस्था मे सहभागिता प्राप्त हो गई। सभी नागरिको को समान रूप से राजनीतिक, नागरिक एव मौलिक आधार प्राप्त हो गए तथा देशी राज्यो की वशगत सामन्तवादी निरकुश व्यवस्था का सदैव के लिए उन्मूलन हो गया ।

45 इस प्रकार राजस्थान के प्रजामण्डल के नेताओ – विशेषकर जय-

नारायण व्यास माणिक्यलाल वर्मा, हीरालाल शास्त्री और इतिहासकार जगदीश सिंह गहलोत के आधुनिक राजस्थान के निर्माण का राजनीतिक स्वप्न पूरा हुआ। देशी राज्यो के भारतीय सघ के अधिमिलन, एकीकरण और लोकतन्त्रीकरण के सन्दर्भ मे भारत के प्रथम उप प्रधानमन्त्री एव गृहमन्त्री सरदार वल्लभ भाई पटेल का सशक्त राजनीतिक नेतृत्व और प्रखर राष्ट्रभक्ति तथा राज्य विभाग मे उनके वी पी मेनन का राजनयिक कौशल सदव स्मरणीय रहेगा।

प्रिवीपर्स

46 भारत सरकार द्वारा राजस्थान की विभिन्न रियासतो को स्वीकृत किए गए प्रिवीपर्स की राशि का विवरण निम्नलिखित है

1	अलवर	5,20,000	2	भरतपुर	5,02,000
3	धौलपुर	2,64 000	4	करौली	1,05,000
5	बासवाडा	1,26,000	6	बूदी	2,81,000
7	डूगरपुर	1,98,000	8	झालावाड	1,36,000
9	किशनगढ	1,36,000	10	कोटा -	7,00,000
11	मेवाड	10,00,000	12	प्रतापगढ	1,02,000
13	शाहपुरा	90,000	14	टोंक	2,78,000
15	जयपुर	18,00,000	16	जैसलमेर	1,80,000
17	बीकानेर	17,00,000	18	जोधपुर	17,50,000
19	लावा	12,500	20	कुशलगढ	34,775
21	नीमराना	15,000	22	सिरोही	2,12,600

कुल योग 101,42,875